RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation USA

वर्ष : 3, अंक : 10

जुलाई-सितम्बर 2018

मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

विमर्श - नक़्क़ाशीदार केबिनेट
संपादक : पंकज सुबीर

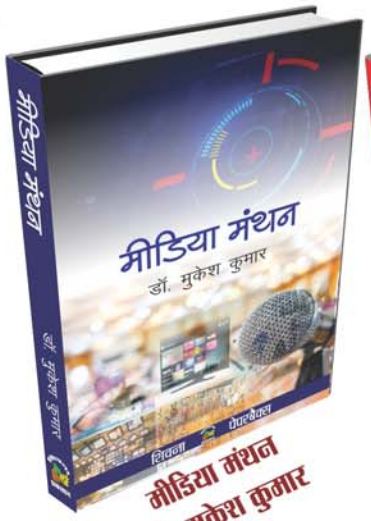

मीडिया मंथन
डॉ. मुकेश कुमार

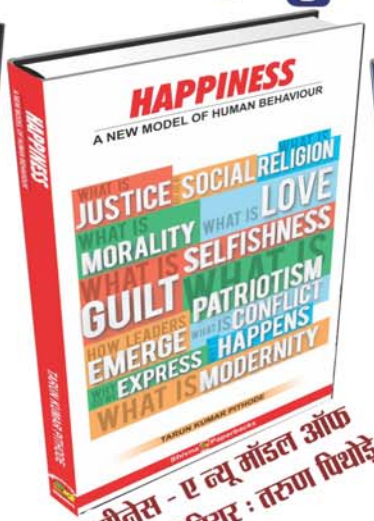

हैपीनेस - ए न्यू मॉडल ऑफ
ह्यूमन बिहेवियर : तरुण पिथोड़े

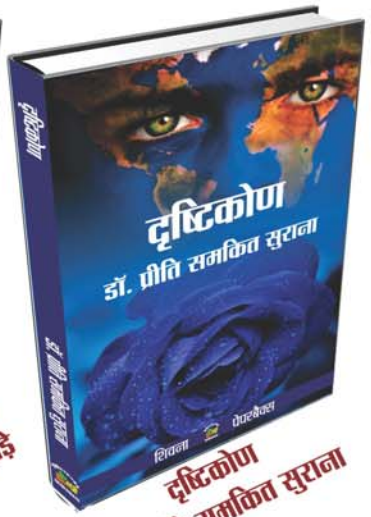

दृष्टिकोण
डॉ. प्रीति समकित सुराना

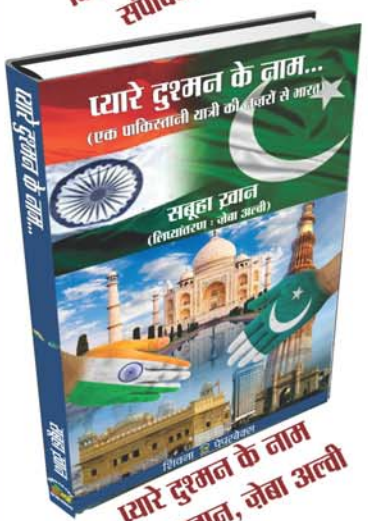

प्यारे दुश्मन के नाम
सबूहा ख़ान, ज़ेबा अली

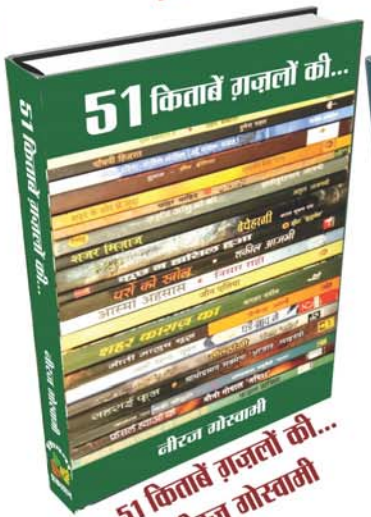

51 किताबें ग़ज़लों की...
नीरज गोस्वामी

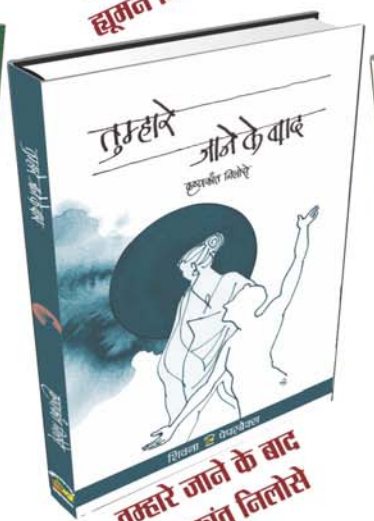

तुम्हारे जाने के बाद
कृष्णकांत निलोसे

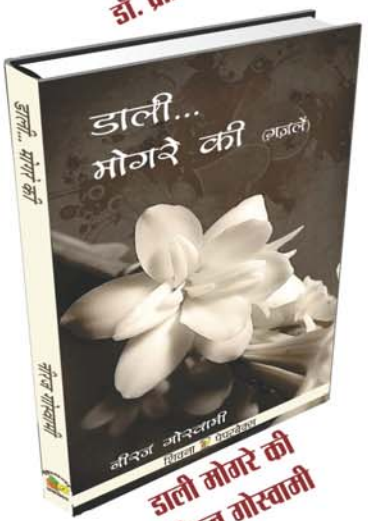

डाली मोगरे की
नीरज गोस्वामी

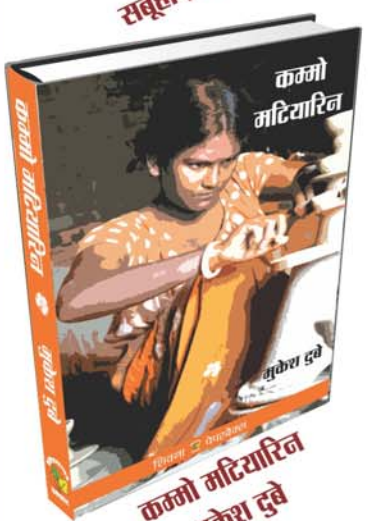

कम्मो मटियारिन
मुकेश दुबे

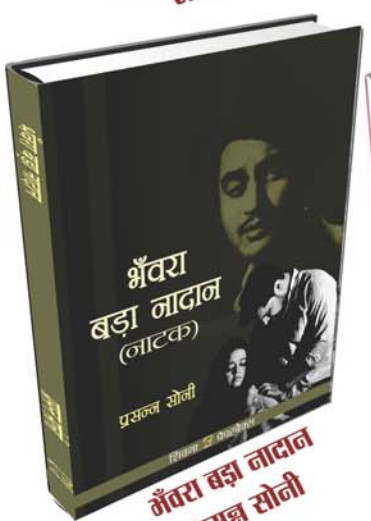

भँवरा बड़ा नादान
प्रसन्न सोनी

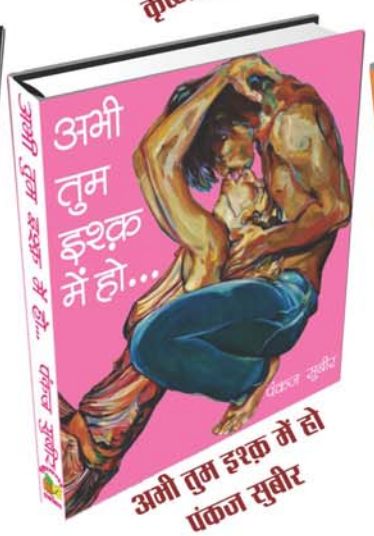

अभी तुम इश्क़ में हो
पंकज सुबीर

पार्थ! तुम्हें जीना होगा (पेपरबैक)
ज्योति जैन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंगकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 3, अंक : 10, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2018
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

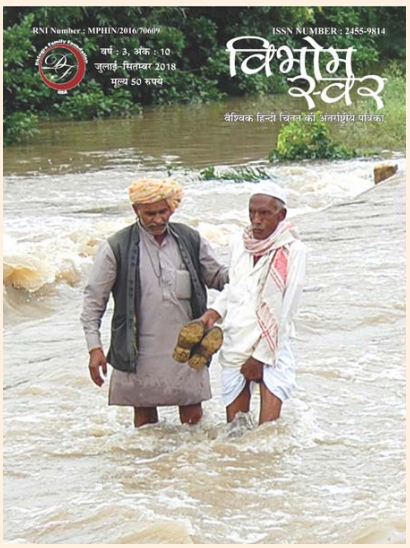

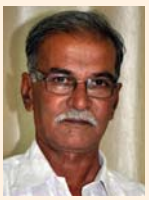

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

वर्ष : 3, अंक : 10
त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2018

संपादकीय 5
मित्रनामा 7
साक्षात्कार
सुमन घई के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 12
कथा कहानी
बत्तीस कलाओं के लीलाधारी
भरत प्रसाद 15
और कुलसूम मर गई...
ज़ेबा अलवी 19
मास्साब
डॉ. कविता विकास 22
गुलशन कौर
देवी नागरानी 24
तवे पर रखी रोटी
डॉ.विभा खरे 28
नम्बर प्लेट
राजेश झरपुरे 31
लघुकथाएँ
खिलौना
अमरेंद्र मिश्र 21
मूर्तिकार
सुरेश सौरभ 27
कट्टरपंथी
राहुल शिवाय 33
बिखरी पंखुड़ियाँ
ज्योत्सना सिंह 41
भैंस के आगे बीन बजाना
गोवर्धन यादव 43
एक लाश-एक चेहरा
अमरेंद्र मिश्र 54
भाषांतर
एक मुक़दमा और एक तलाक़
यीडिश कहानी
मूल कथा : आइज़ैक बैशेविस सिंगर
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय 34
व्यंग्य
टर गए हरीशचंद्र
प्रेम जनमेजय 38
दृष्टिकोण
सिविक सेन्स
कृष्ण कान्त पण्ड्या 42
व्यक्ति विशेष
सूर्य भानु गुप्त
वीरेंद्र जैन 44
शहरों की रूह
इण्डोनेशिया का रंगमंच / रामलीला
हिजाब वाली सीता
डॉ. अफ़रोज़ ताज 47
संस्मरण
सुधियों के पन्नों से- माश्की काका
शशि पाधा 51
स्मृति शेष
मास्टर ग़ज़लकार प्राण शर्मा को श्रद्धांजलि
उषा राजे सक्सेना 55
ग़ज़लें
विज्ञान व्रत 14
सुभाष पाठक 'ज़िया' 30
राज़िक़ अंसारी 37
ख़याल खन्ना 46
कविताएँ
अनिल प्रभा कुमार 57
डॉ. प्रदीप उपाध्याय 57
प्रगति गुप्ता 58
मालिनी गौतम 59
प्रतिभा चौहान 59
डॉ. संगीता गांधी 60
नीलिमा शर्मा निविया 61
परितोष कुमार 'पीयूष' 62
गौरव भारती 63
पूनम सिन्हा 'श्रेयसी' 64
नवगीत
जगदीश पंकज 65
समाचार सार
अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन 66
'मोगरी' का लोकार्पण 67
छोटे बच्चे गोल-मटोल का लोकार्पण 67
अरुण अर्णव खरे के संग्रह कालोकार्पण 68
रामदरश मिश्र का सम्मान 68
डॉ. कमलकिशोर गोयनका प्रज्ञा सम्मान 68
अभी तुम इश्क़ में हो का लोकार्पण 69
गोपालदास नीरज को सम्मानित किया 69
कथाकार अभिमन्यु अनत को श्रद्धांजलि 69
शैलेंद्र शरण के संग्रहों का लोकार्पण 70
डॉ. लालित्य ललित को सम्मान 70
डॉ. कर्नावट को राष्ट्रीय पुरस्कार 71
ध्रुपद कार्यशाला 71
चन्दन-माटी उपन्यास का विमोचन 72
पटना में लघुकथा विमर्श कार्यक्रम 72
साहित्य आयोजन पश्चिमी दिल्ली में 72
मोरिस्विल्ल में साहित्यिक गोष्ठी 73
गुफ़्तगू सम्मान समारोह 73
आख़िरी पन्ना 74

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)
सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम : _____ **डाक का पता :** _____

_____ **सदस्यता शुल्क :** _____ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :** _____

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र किया है) : _____ **दिनांक :** _____

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

पूरे विश्व की जनता महाभारत युग में पहुँच चुकी है

ऐसा लग रहा है पूरे विश्व की राजनीति पुराने समय और इतिहास को दोहराने जा रही है। शायद मानव जाति का स्मृति कोष और उसकी अवधि अधिक लम्बी नहीं होती। बहुत जल्दी अपनी गलतियाँ और उससे हुए परिणाम भूल जाते हैं। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध से हुए विनाश और उससे हुई क्षति को अभी तक कई पीढ़ियाँ भुगत रही हैं और बड़े दु:ख के साथ कहना पड़ रहा है कि वैश्विक राजनीति में फिर से निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता बढ़ रही है। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व तानाशाही और निरंकुशता का ही बोलबाला था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बहुत भारी क़ीमत चुका कर इससे कुछ देशों ने छुटकारा पाया था। ब्रिटेन से उसकी अधीनस्थ कॉलोनियाँ आज़ाद हो गईं। विश्व दो बड़ी ताक़तों में बँट गया। रूस और अमेरिका। रूस की तरफ़ पूर्वी यूरोप हो लिया और अमेरिका की तरफ़ पश्चिमी यूरोप, जापान और यूके से आज़ाद हुए कुछ देश। इसी समय रूस के साथ चीन और पूर्वी यूरोप के देशों ने कम्युनिज़्म अपनाया और अमेरिका ने लोकतंत्र प्रणाली। ब्रिटेन से आज़ाद हुए कुछ देशों जैसे भारत ने लोकतंत्र प्रणाली को सही समझा और खाड़ी देशों में तानाशाही आज तक भी है।

मित्रो, अतीत दोहराना ही सिर्फ मेरी मंशा नहीं है। निराश हो कर इतिहास के पृष्ठ पलट रही हूँ; क्योंकि वैश्विक राजनीति में सहिष्णुता, सद्भावना और मानवता समाप्त हो रही है। यह तीन मूल मन्त्र जब देश और समाज के व्यवहार से लुप्त होने शुरू हो जाएँ तो पतन का भय स्वाभाविक है। अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रम्प के आदेश पर इमिग्रेंट्स (आप्रवासियों) को देश से निकाला जा रहा है, और बच्चों को उनसे अलग कर दिया गया है। ऐसे में जो त्रासदी पैदा हुई, वह दिल दहला देने वाली है। मानती हूँ आप्रवासियों की समस्या बहुत बड़ी समस्या है पर क्या नेताओं ने यह सोचा है कि कल को जिन बच्चों को माँ-बाप से अलग करके फ़ॉस्टर होम्स (पालन घर) में पला जाएगा वे क्या बनकर निकलेंगे?

एक पार्टी कोई कानून बनाती है, दूसरी जब सत्ता में आती है उसे रद्द करके नया कानून बना देती है, नेता तो बस राजनीति की बिसात पर मोहरे पीटते हैं, देश और भावी पीढ़ी की किसी का फ़िक्र नहीं होती।

स्वदेश में भी यही हो रहा है, आए दिन नारी जाति असुरक्षित हो रही है। बलात्कार बढ़ रहे हैं। किसी एक वर्ग की कन्या के बलात्कार पर शोर मचता है, दूसरे वर्ग के लिए चुप्पी साध ली जाती है। ऐसे में दायित्व जनता के कन्धों पर आ जाता है। बड़े अफ़सोस के साथ कह रही हूँ कि पूरे विश्व की जनता महाभारत युग में पहुँच चुकी है। कुछ धृतराष्ट्र की तरह

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
फोन : +1-919-678-9056
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

पार्टी और विचारधारा के लिए अंधे हो चुके हैं, कुछ स्वार्थ सिद्धि के लिए द्रोणाचार्य और कुछ भीष्म पितामह बन मुँह फेरे हैं। देश के अधिकतर बुद्धिजीवी विदुर बन गए हैं। लोग समझ नहीं पा रहे कि इस अनिश्चित और असुरक्षित काल में उन्हें किसी नेता की ओर नहीं देखना चाहिए, स्वयं ही कमान सँभालनी चाहिए।

अपनी बहनों को तो मैं कई बार कह चुकी हूँ, मत इंतज़ार करें किसी भी कृष्ण का, जो आपकी अस्मिता की रक्षा करने आएगा , आपको स्वयं ही कृष्ण बनना है और अपने वर्ग की रक्षा करनी है। मेरी बहनों समझो, पुरुष वर्ग की दोहरी मानसिकता को पहचानों। वह मंदिरों में तो देवी रूप की पूजा करता है, कन्या को पूजन योग्य समझता है पर उन्हीं रूपों का शोषण करता है। उसके भीतर ही कौरव बैठे हैं और पाण्डव भी तो ऐसी सोच से मुकाबला करने के लिए आपको स्वयं ही अपने रास्ते ढूँढ़ने पड़ेंगे, चाहे चण्डी का रूप क्यों न धरना पड़े।

राजनीति हमेशा ही बेचैन करती है। साहित्य सुकून देता है। चलिए अब उसी की बात करते हैं। पत्रिका के कहानी विशेषांक को आप सबने तहे दिल से स्वीकार किया, विभोम-स्वर की टीम आपकी आभारी है। आप लोगों ने पत्रों से और फ़ोन करके सूचित किया। आप सबका हार्दिक धन्यवाद। आगे के अंकों पर भी अपनी प्रतिक्रियाएँ देते रहें। इंतज़ार रहेगा.....

गत दिनों विदेशों के दो वरिष्ठ लेखक हिन्दी साहित्य को सूना कर गए। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत और यूके के प्राण शर्मा। विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी टीम की ओर से दोनों लेखकों को विनम्र श्रद्धांजलि....

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

वर्षा.... जिसके आगमन की प्रतीक्षा हम पूरी ग्रीष्म ऋतु में करते हैं, वही वर्षा जब अति वृष्टि के रूप में आती है तो हमारा जीवन अस्त-व्यस्त कर देती है। वही हम जो वर्षा हेतु प्रार्थना कर रहे थे, अब उसके थमने हेतु प्रार्थना करने लगते हैं। जीवन भी ऐसा ही है, यहाँ किसी भी चीज़ की अति, मतलब परेशानी...।

मित्रनामा

पत्रिका संग्रहणीय

आज 'विभोम-स्वर' का अंक प्राप्त हुआ। अत्यन्त प्रसन्नता हुई। धन्यवाद। संपदाकीय दिल को छू गया, जिसमें नारी जागृति का संदेश है। ज़ोहेब युसुफ़ज़ई की लघुकथा 'कसाईख़ाना' आज के चिकित्सीय व्यवस्था एवं भ्रष्टाचार को दर्शाती है। स्व. डॉली तालुकदार की असमिया कहानी 'पांचाली' अत्यन्त मार्मिक है जो शोषित नारी की संवदेना को उजागर करती है। शशि पाधा जी का संस्मरण 'चिट्ठियों का महत्त्व' बीते समय की यादें ताज़ा करता है। कुल मिलाकर कथा-कहानी, संस्मरण, कविताएँ, व्यंग्य, लघुकथाएँ आदि पत्रिका को रोचक बनाते हैं। पत्रिका संग्रहणीय है। मेरी लघुकथा को पत्रिका में स्थान देने के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद। अशोक अंजुम जी भी इस अंक के लिए आपको बधाई दे रहे हैं।

-भारती शर्मा, स्ट्रीट-2, चन्द्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद), क्वार्सी बायपास, अलीगढ-202001

मोबाइल : 08630176757

***

पठनीय अंक

'विभोम-स्वर' का अप्रैल-जून अंक मिला। सुधा ओम ढींगरा जी ने इस अंक के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण घटना की ओर चिंता व्यक्त की है और वह यह कि हर बात पर तोड़-फोड़, सरकारी संपत्ति की क्षति, आगजनी, दुकानें बंद करना-ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं को वे दिनचर्या में शामिल मानकर चिंता जताती हैं-उनका यह दु:ख 'हिंदुस्तान' में हो रही 'रेप' जैसी अमानवीय घटना को देखते हुए भी है जो सहज स्वाभाविक है।ये घटनाएँ जितनी अमानवीय हैं, उतनी ही वीभत्स भी हैं और अगर आप हिंदुस्तान के बाहर-सुदूर देश से इन घटनाओं पर सोचें तो बड़ा ख़राब लगता है। यथास्थिति में वे बदलाव की पक्षधर तो हैं लेकिन सरकारी संपत्ति के नुकसान के तहत नहीं। उनकी चिंता वर्तमान समय में बहुत वाजिब है-उतनी ही वाजिब जितनी हमारी प्रतिबद्धता हमारी ज़िंदगी की खातिर होती है।

इस अंक में ग्यारह कहानियाँ हैं और कहना होगा कि यह अंक कहानी को पूरी तरह फ़ोकस करता है। 'आख़िरी पन्ने' पर संपादक पंकज सुबीर का लिखा 'मूसलचंदों का समय' गज़ब का आलेख है। वास्तव में यह समय मूसलचंदों का ही है। यह व्यंग्यपरक आलेख है-यह तथाकथित नए और अतिमहत्त्वाकांक्षी पुरस्कार प्रिय लेखकों पर है। जो लेखक हिंदी साहित्य के स्थापित लेखक हैं, उन्होंने ने तो अपना समय जी लिया। उन्होंने अपनी ख्याति, प्रसिद्धि अपनी सशक्त कृतियों के बल पर प्राप्त कर ली और आज भी वे अपनी कृतियों के कारण ही याद किए जाते हैं। लेकिन आज का लेखन मूसलचंदों के एकछत्र राज्य से चल रहा है। फेसबुक पर वे अपना आत्म प्रचार करते हं और न सिर्फ़ फेसबुक, ईमेल, ह्वाट्सेप से लेकर कई तरह के ग्रुप और गुट से जुड़ते हैं, बल्कि आपको मोबाइल के इनबाक्स में भी घेरते हैं।

यही सच है और यही आज का वास्तव भी है जिसे पंकज सुबीर साहित्य के पटल पर प्रस्तुत कर पाठकों के सामने रखकर सोचने को मजबूर करते हैं।अंक में अनीता यादव का 'चम्मच चुराण' महापुराण भी प्रभावित करता है। कहानियाँ अच्छी हैं और कविताएँ उम्दा !

-अमरेंद्र मिश्र, संपादक 'समहुत', 4/516 पार्क एवेन्यू, वैशाली, गाजियाबाद -201010

***

कहानी विशेषांक आशातीत उपहार

विभोम-स्वर और शिवना सहित्यिकी का नया अंक मेल से मिला। आशातीत उपहार पाकर मन प्रफुल्लित हो गया। यह विभोम-स्वर का कहानी विशेषांक है, देख कर और भी अच्छा लगा। मैं तुरन्त पत्रिका के रसास्वदन में तल्लीन हो गई। हंसा दीप की 'वह सुबह कुछ और थी', यह हंसा जी की मंजी लेखनी का कमाल है कि एक साधारण से तथ्य को ले कर इतनी रुचिकर कहानी गढ़ डाली। लाख चाहने पर भी मनुष्य का स्वाभाव नहीं बदलता, मात्र इतना ही कहना था उन्हें ! घटना और चरित्र चित्रण स्वाभाविक और विश्वसनीय है।

'बट ज्वाइंट' बलात्कार के अघन्य अपराध की पीड़ा को मौन सहती अबला नारी की, संवेदना और अनंत स्नेह की सुखांत कथा है।

कहानी 'शुवे' व्यापारिक दृष्टि से सफल किन्तु रोमांस में हारी, झुठलाई, बिखरे सपनों की दास्ताँ है। स्वप्नभंग के बाद शुवे की व्यावसायिक समझ और आत्म सम्मान की जीत होती है। इस सफलता में सहेली ली का सहयोग महत्त्वपूर्ण था।

'एक और इबारत' में विकेश निझावन जी ने दो घनिष्ट मित्रों की वार्तालाप के माध्यम से जीवन की सफलता और सार्थकता के प्रश्न पर विचार प्रस्तुत किया है। प्रफुल्ल फिल्म के लिए स्क्रिप्ट लिख कर धन और शौहरत तो कमाता है, जिसका नाम समाज 'सफलता' देता है, पर वह संतुष्ट नहीं है। अपने को खोखला महसूस करता है। उसका मानना है कि जीवन गणित नहीं, कला है। सफलता का मैप ले कर उसके सहारे चलते जाना और शिखर तक पहुँचने में भी आनंद नहीं है, क्योंकि उस दौड़ में अनजाना कुछ भी नहीं है। एडवेंचर जो जीवन की उर्जा है, उसकी कमी है।

'कटही' कहानी में गोविन्द उपाध्याय ने पैरानौइड स्त्री का सटीक चित्रण किया है। समाज की व्यवस्था से पीड़ित युवा विधवा को जीवित रहने के लिए एक असाधारण रास्ता अपनाना पड़ा। डरने वाले को प्राय: लोग डराते हैं, शोषित करते है। औफेंस इज द बेस्ट डिफेंस ! जयन्ती अरोड़ा ने जो रास्ता अपनाया उससे डराने वाले उससे डर कर रहने लगे। मधुर तो नहीं, पर अंतत: जीत जयन्ती की हुई।

'ब्लैक एंड वाइट' नकुल गौतम की अनोखी कल्पनाशीलता की स्वर्णिम बानगी है, जिसमें नायक अजय सारी वार्ता ब्लैक एंड वाहईट टी वी से करता है।

'नए गीत का मुखड़ा' में लेखक ने बड़ी सफलता से पूरब पश्चिम की सभ्यता, व्यवहार, प्राइवेसी की महत्ता आदि मुद्दों और अन्य मान्यताओं पर प्रकाश डाला है।

उमेश पन्त का यात्रा वृत्तान्त बहुत रुचिकर है। यह अंश उनकी पुस्तक 'इनरलाइन पास' को पढ़ने का न्योता देता है।

सुपरिचित लेखिका शशि पाधा का

संस्मरण 'जा कबूतर जा' आज की पीढ़ी के लिए विस्मयकारी हो सकता है, पर हम पुराने लोग चिट्ठियों के इंतज़ार को खूब समझते हैं। शशि जी ने अपने नव विवाहित जीवन की मधुर स्मृतिओं को, पात्रों के आवाजाही सिलसिलों को बड़े आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

लघुकथाएँ अपनी लघुता में विशालता लिए हुए हैं। 'मौका परस्त' में सुभाष चन्द्र लखेड़ा जी ने स्पष्ट शब्दों में 'मतलब के यार' को परिभाषित किया है, जिनका कोई नैतिक सिद्धांत नहीं होता।

लघुकथा 'कस्साईख़ाना' आज की सामाजिक व्यवस्था का एक भयंकर सत्य है, जहाँ कुछ अस्पताल और मैनेजमेन्ट मात्र व्यवसायी बन गए हैं, जिसमे प्रॉफिट ही उनका प्रमुख लक्ष है।

चंदेश कुमार ने 'मेरी याद' में एकाकी, भुलाए हुए वृद्ध की पीड़ा गाथा को उजागर किया है।

'कमर के नीचे का यथार्थ', लघुकथा का सहारा ले कर पूरन सिंह ने स्त्री जीवन के यथार्थ को छुआ है। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की सफलता का मार्ग विभिन्न रोड़ो से अटा पड़ा है।

यह संपादन की विशेषता है कि इस संग्रह में प्रत्येक कहानी की अपनी अलग दिशा और अलग गणतव्य है। कुछ कविताओं का समन्वय इस पत्रिका को पूर्णता और बहुमुखी रुचि प्रदान करता है।

बधाई व शुभ कामनाओं सहित,

-मीरा गोयल, डरहम, नॉर्थ कैरोलाइना, यूएस

***

अभिभूत करने वाला मुखपृष्ठ

'विभोम-स्वर' का अप्रैल-जून,2018 अंक कहानी विशेषांक के रूप में प्राप्त हुआ।

अनुगृहीत हूँ, अभिभूत भी। मुखपृष्ठ पर ही अरहर की फली और उसे उपजाकर खुशी से फूली ना समा रही किसान की बेटी के चेहरे की दमक थोड़ी देर के लिए बिलमा देती है।

सम्पादकीय में देश को मायका समझने की भावना पाठकों को 'परदेसनों' के मन के भीतर तक खींच ले जाती है। सच ही कहा है कि 'साहित्य में स्त्री-विमर्श का कोई महत्त्व नहीं रह जाएगा, अगर हम उससे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं ला सकती।' हमारे देश के लोकतंत्र की यही विफलता है कि वह अपनी जनता को यह नहीं समझा पाया कि यह देश तुम्हारा है; तुम इसके स्वामी हो। आज भी आम जनता मंत्री-सांसद -अधिकारी -विधायक को ही शासक मानती है। मोदीजी ने एक बार मुहीम छेड़ी थी कि अफसर लोग अपनी कार पर 'सेवक' लिखवाएँ, मगर वह चला नहीं। भला डीएम या एसपी ब्रिटिश हुकूमत के दी हुई ताकत को कैसे छोड़ दे !

इस अंक की कहानियाँ एक से एक लाजवाब हैं। प्राय: नए कहानीकारों की कलम से लिखी गईं इन कहानियों में आज की दुनिया है, उस दुनिया की उलझी हुई ज़िंदगी है, उस ज़िंदगी को जीनेवाले पात्र अपने दौर की तेज़ गति से परेशान हैं। अच्छा लगा इन्हें पढ़कर। अन्य भाषाओँ की अनूदित कहानियाँ भी ठीक ठाक हैं, मगर हिंदी कहानियाँ कई अर्थों में उनसे अधिक सामायिक और प्रासंगिक हैं। मुझे यह भी देखकर अच्छा लगा कि कविताओं में आपने गीत को अधिक महत्त्व दिया है। भाई शिव कुमार अर्चन के गीत अपनी बात बड़ी बेबाकी से कहते हैं। सुनीता कम्बोज के गीत की पंक्ति लाजवाब है -

बैठूँगी नज़दीक तुम्हारे
और तुम्हारा मौन सुनूँगी।
क्या बात है !

अंत में साहित्यिक समाचारों की भरमार है। अच्छी बात है। पूरे वैश्विक परिदृश्य में हिंदी की प्रगति का जायज़ा इन समाचारों से लिया जा सकता है। पंकज जी का 'आत्मप्रचार में लगे मूसलचंदों' पर प्रहार ज़बरदस्त है।

-डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, देवधा हाउस, 5/2 वसंत विहार एन्क्लेव, देहरादून-248006, buddhinathji@gmail.com

***

आँखों की कोरें नम हो गई हैं

विभोर-स्वर का जनवरी-मार्च 2018 के अंक में शशि पाधा की लिखी एक अंतहीन प्रेम कथा पढ़ी। सच कहूँ...मेरी आँखों की कोरें नम हो गई हैं, संस्मरण पूरा पढ़ने से पहले ही आपको लिखने बैठ गया हूँ। गला अवरुद्ध है। सैनिक के पत्नी की स्थिति का वर्णन अंदर तक छू गया है।

-उमेश कुमार यादव, नई दिल्ली

***

सार्थक अंक

विभोम-स्वर का ताज़ा अप्रैल-जून 2018 अंक प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह आपका सम्पादकीय ''जिसे अपना देश...'' समसामयिक और विचारोत्तेजक है। एक सार्थक अंक लिए बधाई एवम् साधुवाद।

-आत्माराम शर्मा, गर्भनाल पत्रिका, भोपाल, म.प्र.

***

एक से बढ़कर एक

आपकी दोनों पत्रिकाओं 'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' के अप्रैल - जून 2018 अंक प्राप्त हुए। आपका संपादकीय 'जिसे अपना देश कहा जाता है, उसका नुकसान क्यों ?' सामयिक मुद्दों पर है। आशा है इसमें कही बातों को लोगों तक पहुँचाने के लिए हम सभी प्रयास करेंगे। अपने देश में कोई भी मुद्दा हो, सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना वर्षों से उसका एक चिंताजनक पहलू रहा है। अपने संपादकीय के अंत में सुधा जी ने स्वर्गीय श्री सुशील सिद्धार्थ जी और स्वर्गीय श्री केदारनाथ सिंह को जो श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं, विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी से जुड़े हम सभी पाठक भी उनके द्वारा व्यक्त संवेदनाओं से खुद को जुड़ा हुआ महसूस करते हैं।

बहरहाल, 'विभोम-स्वर' के इस अंक में प्रकाशित सभी कहानियों को पत्रिका मिलते ही पढ़ना शुरू किया तो लगभग डेढ़ दिन में यह सिलसिला समाप्त हुआ। सबसे पहले अनीता शर्मा जी की कहानी 'शुवे' पढ़ी। बहुत दिनों बाद मुझे लगा कि मैंने कुछ नया पढ़ा है। शुवे का यह कहना कि 'मल्टीनेशनल कम्पनी में मैनेजर हूँ, अब इतना तो मैनेज कर ही सकती हूँ' पढ़कर इस कहानी से युवतियों को जो संदेश देने का प्रयास किया गया है, उसके लिए लेखिका को तहेदिल से साधुवाद। श्री हरजीत अटवाल की कहानी 'नए गीत का मुखड़ा' अपने सहज प्रवाह से आगे बढ़ती

है और अंत में इस आशय के साथ समाप्त होती है कि किसी दूसरे के अनुभव से भी हम ज़िंदगी में बहुत कुछ सीख सकते हैं। सुश्री रोचिका शर्मा की कहानी 'बट जॉइंट' समाज को राह दिखाने वाली एक उद्देश्यपरक कथा है किंतु लगता है जैसे सुलभा, सौम्या, अमित और यहाँ तक कि काउंसलर कोई सतयुगी पात्र है। डॉ. हंसा दीप की कहानी 'वह सुबह कुछ और थी'; श्री अमरेन्द्र कुमार की कहानी 'एक अरसे के बाद'; और डॉली तालुकदार जी की कहानी 'पांचाली' भी जीवन की कुछ सच्चाइयों से रूबरू कराती हैं। शेष सभी कहानियाँ और पत्रिका के इस अंक में प्रकाशित लघुकथाएँ एवं अन्य रचनाएँ भी पाठकों को जीवन के विभिन्न आयामों से परिचित कराती हैं।

'शिवना साहित्यिकी' सदैव की तरह पाठकों को नए साहित्य से परिचित कराती है। शहरयार का संपादकीय 'रचना लेखक की नहीं पाठक की होती है' लेखकों को सहिष्णुता बनाए रखने की सलाह देता है। स्मरण के अंतर्गत 'बहुत याद आएँगे जीनियस सुशील सिद्धार्थ' शीर्षक से लिखा आलेख पाठकों को सुशील जी के विषय में सारगर्भित जानकारी देता है। श्री अशोक मिश्र को बधाई। मैं 'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' के प्रकाशन, प्रबंधन और संपादन से जुड़े सभी सदस्यों का साहित्य की इस धारा को अविरल, अर्थवान एवं सुरुचिपूर्ण बनाए रखने के लिए तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ।

-सुभाष चंद्र लखेड़ा, सी - 180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर - 7, प्लाट नंबर - 17, द्वारका, नई दिल्ली - 110075

***

कहानियों में विषय की विविधता

विभोम-स्वर के कहानी विशेषांक के लिए काफी दिनों से प्रतीक्षा थी क्यूँकि पिछले अंकों की कहानियों ने अभी तक बाँध के रखा हुआ था। इस विशेषांक के लिए सब से पहले अनंत बधाईयाँ स्वीकारें।

आपने विधा केन्द्रित विशेषांक, विशेषतया कथा- कहानी विशेषांक निकाल कर पाठक के ध्यान को एक बिंदु पर केन्द्रित किया है। विधा केन्द्रित विशेषांक के माध्यम से चुनी हुई विधा के उत्तरोतर विकास और विस्तार का पता चलता है। इस विशेषांक का महत्त्व मैं इसलिए भी मानती हूँ कि इसमें देश-विदेश के कथाकारों की रचनाओं को स्थान देने के साथ ही स्थापित एवं नए लेखकों के लिए अपनी-अपनी जगह भी है।

कहानियों में विषय की विविधता को देखते हुए लगता है सम्पादक मंडल ने सामग्री के चुनाव में बहुत मेहनत की है। कोई भी एक कहानी दूसरी से मिलती जुलती नहीं। चार कहानियाँ जो अधिक प्रभावित कर गईं - वे हैं 'कटही', 'पांचाली',' नए गीत का मुखड़ा' एवं 'शुवे'। इन सबमें से भी 'कटही को पढ़ते-पढ़ते मन में कितने उतार चढ़ाव आए। आदि से अंत तक एक कामकाजी महिला के अंतर्द्वंद्व को बहुत सशक्त तानों-बानों में बुना गया है। पांचाली का किरदार तो अंत तक आते-आते पूरी तरह भिगो देता है। 'एक नए गीत का मुखड़ा' एक ऐसा कटु सत्य है जो अमूमन विदेश में रहने वाले लोगों को झेलना पड़ता है। उनसे बहुत उम्मीदें होती हैं किन्तु जब वो पूरी नहीं होती तो रिश्तों में दरार आ जाती है। सभी लघुकथाएँ प्रभाव छोडती है किन्तु जिसे मैं छोटे कलेवर में एक मुकम्मल कहानी कहना चाहूँगी, वो है 'मेरी याद'। अंतिम पंक्ति तक लघुकथा के अंत का अनुमान नहीं हो सका और जब वहाँ पहुँचे तो एक कंपकपी सी महसूस हुई और आँखें सीली हो गईं। ऐसी रचना लघु फ़िल्म की पटकथा सी सुंदर कहानी बन सकती है। 'कसाईख़ाना' एक ऐसा यथार्थ है जो घुन की तरह हमारी सरकारी व्यवस्था को खा रहा है। लेखक ने इस मुद्दे पर कहानी लिख कर पाठक को सजग किया है और उद्बोधन का संदेश दिया है। बाकी सभी रचनाएँ भी उच्च कोटि की हैं किन्तु हरेक के विषय में एक पत्र में लिख पाना संभव नहीं है। सभी कथाकारों को बधाई। गीत- कविताएँ भी अपनी विषय विविधता के होते हुए छाप छोडती हैं।

सुधा जी का संपादकीय सदा ही स्वतन्त्रता सैनानियों के उद्बोधन के स्वरों के समान हर बार एक नए नारे का उद्घोष करता है। इस बार तो उन्होंने स्त्रियों को ललकार ही दिया है --- 'बहनों! जरा सोचें, क्या हम अपने लिए भी खड़ी नहीं हो सकती। साहित्य में स्त्री विमर्श का कोई महत्त्व नहीं रह जाएगा अगर हम उससे जीवन में कोई परिवर्तन न ला सकें।' आशा है इन शब्दों की ललकार देश विदेश में गूँजेगी और फिर कोई दामिनी घुट-घुट के नहीं मरेगी। स्कूलों में निरीह बच्चों की हत्या आज के सभ्य समाज के लिए एक कलंक के समान है और इसे धोने के लिए एक जुट होना ही पड़ेगा।

विभोम-स्वर की योग्य एवं कुशल टीम को बधाई एवं आगामी अंकों के लिए शुभकामनाएँ।

-शशि पाधा, 10804, Sunset Hills Rd, Reston, VA, 20190
shashipadha@gmail.com

***

आवरण देख मन और आँखें जुड़ा गईं

पत्रिका का अप्रैल - जून अंक सहेजने योग्य है। राजेन्द्र शर्मा उर्फ बब्बल गुरु के आवरण को देखकर मन और आँखें जुड़ा गईं। अरहर की पकी फलियों के बीच हँसती हुई लड़की की निर्दोष हँसी अद्भुत है। इतने सुन्दर और मनहरण आवरण - परिकल्पना की भूरि - भूरि प्रशंसा करते हुए जब आगे बढ़ा, तो संपादकीय लेख 'जिसे अपना देश कहा जाता है, उसका नुकसान क्यों' पर मेरी नज़रें अँटक गईं, तो मैं संपादकीय को नज़रअंदाज़ नहीं कर सका। बात बुनने में महारत हासिल है सुधा जी को और उनकी बातें कहीं से भी शुरू हों, पर मुद्दे पर आ ही जाती हैं। अब इस संपादकीय में ही देखिए कि बात शुरू हुई मायके (इण्डिया) से ससुराल (अमेरिका) पहुँचने की और मायके की खट्टी मीठी स्मृतियों की पोटली ही परदेसनों का नितान्त निजी कोना होता है, जिसमें बारबार झाँक कर सुकून से भर जाती हैं परदेसनें। मयका में सब कुशल क्षेम से हों तो ही ससुराल में चैन से सोती हैं परदेसनें। लेकिन जब मायका में कोई अनहोनी घट जाए तो यह परदेस जा बसी हमारी बहनें किस कदर बेचैन और पीड़ित हो उठती हैं, यह इस संपादकीय में साफ दृष्टिगोचर हुआ है। गैंगरेप सुनने में ही कितना घिनौना लगता है, फिर चाहे वह आठ साल की बच्ची हो या कोई प्रौढ़ा बलात्कार करने वाले की नज़र में सिर्फ एक

जिस्म होती है, जिसे मसलने, कुचलने और बर्बरता पूर्वक नष्ट करने का जन्मसिद्ध अधिकार न जाने पुरुष को कब, कैसे और क्यों मिल गए ? ये चिंताजनक बात है कि दिनों दिन बलात्कार के काण्ड बढ़ते ही जा रहे हैं। दरअसल हमें पुरुष सत्ता की विगलित मानसिकता के सूत्र संस्कृति में ही तलाशने होंगे और उनका परिष्कार करना पड़ेगा और पुरुष सत्ता की अमानवीयता से उसे समूल मुक्त करना होगा। धर्मनिरपेक्ष, प्रगतिशील और लोकतान्त्रिक समाज का सपना अब तक एक सपना ही है, क्योंकि हमारी आधी आबादी को हम आज तक समान मनुष्य का दर्जा नहीं दे सके हैं। देश में भ्रष्टाचार तथा किसी मूवी के आपत्तिजनक दृश्य पर समाज और संस्कृति के दूषित होने के नाम पर आसमान सिर पर उठा लेने वाली स्त्रियाँ भी बलात्कार के विरोध में संगठित नहीं हो पाती हैं, तो आख़िर क्यों ? स्त्री के ऊपर तब तक अत्याचार होते ही रहेंगे जब तक कि स्त्रियाँ ही संगठित होकर बलात्कार जैसे घृणित अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत नहीं करेंगी। आरक्षण के लिए आए दिन भारत बन्द हुआ, जुलूस निकाले गए और तोड़-फोड़ तथा आगजनी की घटनाऐं हुईं, पर बलात्कार के नाम पर सोशल साइट्स पर सहानुभूति के कुछ घड़ियाली विलाप... । जिस नारी की परिकल्पना शक्ति और महाशक्ति के रूप में की गई है वो स्त्री - शक्ति धरातल पर कहाँ दिखती है ? क्या जो भी क्रांति हम करेंगे वो बस शाब्दिक ही रहेगा ? क्या 'यत्र नार्यस्तु पुज्यंते' सिर्फ एक नारा (slogan) भर रहेगा ? देश में परिवर्तन आया नहीं है क्योंकि सदियों से जो स्त्री के सरोकारों का हनन हो रहा था वो पूरे देश में यथावत् प्रचलित है। जिस प्रकार से यूरोप और अमेरिका वगैरह में शान्ति पूर्वक विरोध किया जाता है और स्त्री शोषण के खिलाफ मुहिम चलाई जाती है वैसा ऐशियाई और अफ्रीकी देशों में नहीं होता, खासकर कर विरोध के नाम पर जो तोड़-फोड़ और आगजनी मचती है उसमें राष्ट्रीय स्तर पर बहुत क्षति होती है और इसकी जितनी भर्त्सना की जाए कम है। आपने देशवासियों को आत्ममंथन के लिए एक बेहद महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है - ''क्या आप अपने देश से प्रेम करते हैं ?'' कहानी विशेषांक की विशिष्टताओं से रूबरू होने के लिए इस अंक की कहानियों की तरफ उन्मुख हुआ पर संपादकीय विचार रह - रह कर भीतर प्रतिध्वनित होते रहे।!

विकेश निझावन की 'एक और इबारत' को पढ़ना शुरू किया और शब्दों में मन रमने लगा। मुझे कहानी में गहराई नज़र आती है तो मैं एक सजग पाठक के रूप में अपनी ज़िम्मेदारीसमझता हूँ और बेहद संजीदगी से गहराई में उतर जाता हूँ। निस्संदेह यह कहानी एक गम्भीर कहानी है, क्योंकि देश की एक सबसे गंभीर समस्या को इसमें उजागर किया गया है। बेरोज़गारी की समस्या एक गंभीर समस्या है और पढ़े-लिखे युवा मारे-मारे फिर रहे हैं और काम नहीं मिल रहा है। काम की तलाश में लोग शहर दर शहर खाक छानते देखे जा सकते हैं। लेकिन वास्तविकता का जायज़ा लेते हुए कथाकार ने अपने पात्र से कहलवाया है, ''पैसा आज की बहुत बडी ताकत है।'' लेकिन कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो पैसे से नहीं मिलतीं और ऐसी ही एक चीज़ है - सुकून। जीवन में खुशी नहीं है तो फिर कितना भी पैसा हो व्यर्थ है। आज आदमी बाज़ारीकरण की चपेट में संवेदना के लिए छटपटा रहा है, क्योंकि आज उसकी भावनात्मक ज़रूरतें अपूर्ण रह जाती हैं, क्योंकि जीवन फॉर्मूला बद्ध हो गया है, जिसमें भावनाओं की जगह व्यावसायिकता ने ले ली है। विकेश निझावन ने वर्तमान जीवन की विसंगतियों को उजागर किया है।

खुशनुमा सुबह किसे अच्छी न लगेगी सो डॉ. हंसा दीप की कहानी के शीर्षक ने जब कहा कि 'वो सुबह कुछ और थी' तो फिर ज़्यादा देर किए बिना मैं शब्दों में सौन्दर्य खोजने लगा। आरम्भिक कुछ पंक्तियों के बाद मुझे जैसे कहानी मंत्रमुग्ध सा करने लगी, क्योंकि कहानी कहने की शैली लीक से हटकर लगी। वैसे मुझे दिल्ली में कई बार ऐसा करना पड़ा है, कि कहीं से लौट रहा हूँ और अचानक खराब मौसम के कारण टैक्सी करनी पड़ गई है, और ड्राइवर अनजान समझ कर ज़्यादा पैसे ऐंठने के चक्कर में है, सो खन्ना साहब की टैक्सी ने अपने पुराने दिनों की यादें ताज़ा कर दी और मैंने भी सोचा कि वाकई उस आपातकाल में पैसे से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण सही सलामत और बिना कहीं अँटके गंतव्य तक पहुँच जाना ज़्यादा मुनासिब लगता है। मैं समझ रहा था कि खन्ना साहब नील से दुगना किराए की माँग करेंगे पर जब उन्होंने कहा कि, ''घर वालों से पैसे नहीं लेता जी मैं'' तो मैंने सोचा कि वाह क्या आदमी हैं खन्ना भी। इस तरह से आत्मीयता जताने वालों की संख्या दिन ब दिन घटती जा रही है। आगे की कहानी काफी लज़ीज हो गई क्योंकि इसमें हास्य व्यंग्य का सा मज़ा आने लगा और लज़ीज व्यंजनों की फेहरिस्त भी पकड़ा दी गई, तो शब्दों के प्रति मेरी आदिम और नैसर्गिक भूख जागृत हो गई। आश्चर्य हुआ कि कनाडा में अपने व्यस्त दिनचर्या में भी हिन्दी के लिए समय निकाल कर ऐसी बेहतरीन कहानी लिखती हैं हंसा दीप जी। मेरी शुभकामना कि उनकी लेखनी से एक से बढ़कर एक कहानियों का सृजन होता रहे।

रोचिका शर्मा की 'बट जॉइंट' में सुन्दर सी सौम्या जब अमित की दुल्हन बनकर सुलभा के घर आई तो मुझे बहुत खुशी हुई कि चलो इस पारिवारिक जीवन का चित्रण करती कहानी का भरपूर आनन्द लिया जाए, पर जब दोनों के वैवाहिक जीवन में सामंजस्य और प्रेम नहीं दिखा जो कि नवदंपतियों के मध्य होता है, तो आश्चर्य हुआ कि आख़िर हनीमून पर ऐसा क्या हुआ कि अमित सौम्या को तलाक़ देने की सोचने लगा। वैसे आजकल ऐसा खूब हो रहा है कि आज धूमधाम से शादी हुई और कुछ दिनों में ही तलाक़ हो गया। वैसे यह ठीक भी है किसी को जीवन भर झेलने से अच्छा अलग हो जाना। लेकिन जब पता चला कि सौम्या को सास, पति और परिवार पसंद था तो बड़ी चिंता होने लगी कि आख़िर समस्या क्या है ? आख़िर कौन सा राज़ है जो सौम्या के मन में दफ़न है और उसे दुख दे रहा है ? लेकिन जब राज़ खुला तो मैं स्तब्ध रह गया कि जिस अपराध के लिए स्त्री दोषी नहीं है उसकी कुंठा से वह ग्रस्त और त्रस्त है। समाज का घिनौना चेहरा उजागर करते हुए यह कहानी दिखाती है कि किस तरह से न्यायिक प्रक्रिया को तोड़ मरोड़ कर झूठी रिपोर्ट पेश करके बलात्कारी बाइज़्ज़त बच जाता है और बलत्कृत लड़की तिल - तिल कर मानसिक संताप की अग्नि

में जलती हुई जीती है। न्यायिक सिस्टम ही नहीं भारत में हर सिस्टम भ्रष्ट है। बलात्कार को महज एक हादसा मानकर भूल जाना ही बेहतर है, नहीं तो जीवन विषाक्त और विषादग्रस्त हो जाता है। बेहतरीन कहानी के लिए लेखिका को धन्यवाद।

-नवनीत कुमार झा, द्वारा श्री प्रदीप पुर्वे, सुंदरपुर, दरभंगा

***

एक सफल अंक

दिल्ली में एक मित्र के यहाँ अप्रैल-जून 2018 की विभोम-स्वर पत्रिका देखी। कुछ पन्ने पलटे तो पढ़ने की उत्सुकता जागी। पत्रिका उनसे पढ़ने के लिए माँग लाई। एक सार्थक पत्रिका पढ़कर गद्‌गद् हो गई। कवर पृष्ठ पर खेत में मुस्कराती लड़की पत्रिका पढ़ने के लिए आकर्षित करती है। और संपादकीय बेहद सरल शब्दों में मज़बूत इरादे व्यक्त करता हुआ पाठक को सोचने पर विवश करता है। संपादकीय से मैं इतना प्रभावित हुई, मैंने विभोम-स्वर की वेबसाइट पर जाकर सारे संपादकीय पढ़ डाले। संपादकीय ही किसी पत्रिका की पहचान होते हैं। संपादक की दृष्टि स्पष्ट है और विचारों पर गहरी पकड़ है। यह पत्र लिखते हुए भी संपादकीय का मंथन दिमाग में चल रहा है। संपादक का कहा पाठक को चैन न लेने दे, यही उसकी सफलता है।

अंक कहानी विशेषांक है, यह जानकार और भी ख़ुशी हुई। सभी कहानियाँ पढ़ीं। बेहद रोचक कहानियाँ हैं। विकेश निझावन बहुत सुलझे हुए लेखक हैं, उनकी कहानियाँ सारिका के दिनों से पढ़ रही हूँ। एक और इबारत संवेदनशील और आज की व्यवस्था का दर्द उड़ेलती कहानी है। इबारत के बहाने स्वयं को खोजने की कहानी है। बाकी तकरीबन नए लेखक लगे, पर कहानियाँ सभी स्तरीय और पठनीय हैं।

शुवे और कटही अलग-अलग रूपों और परिस्थितियों में स्त्री के सशक्त रूप को दर्शाती हैं। ब्लैक एंड व्हाइट एक नया प्रयोग है। ब्लैक एंड व्हाइट टीवी के माध्यम से बहुत कुछ कह दिया गया। यह प्रयोग बेहद मनोरंजक लगा।

मेरी याद लघुकथा ने आँखें नम कर दीं। कसाईख़ाना आज का यथार्थ है और बाजरे की रोटी एक कड़वा सच। कमर के नीचे का यर्थाथ ने बदन में झुरझुरी ला दी, स्त्री की नियति बस कमर के नीचे बाँध दी जाती है। पुरुष सत्ता उसकी बुद्धि को तो पहचानना ही नहीं चाहती। पुरुष सोच कब बदलेगी? यह इंतज़ार है।

कविताएँ अच्छी लगीं हैं। चिट्ठियों का महत्त्व संस्मरण ने चिट्ठियों का समय याद दिला दिया।

अंत तक आते-आते मूसलचंदों का समय आख़िरी पन्ने ने तो कमाल ही कर दिया। इस आत्मप्रचार ने तो जीवन दूभर कर दिया है। पंकज सुबीर की मैंने कई कहानियाँ पढ़ी हैं, चौपड़े की चुड़ैलें और शीला की जवानी.....भूल नहीं सकती। बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते हैं।

एक सफल अंक के लिए विभोम-स्वर की टीम को बधाई देते हुए इतना ज़रूर कहना चाहती हूँ कि इसकी खूब पब्लिसिटी करें, नेट से इसे घर-घर पहुँचाएँ, ऐसी पत्रिकाओं की इस समय बहुत ज़रूरत है।

-कमला बाजपेयी, 115 बी, विकासपुरी, नई दिल्ली

***

आवरण पृष्ठ बहुत कमाल के हैं

दोनो पत्रिकाओं 'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' के अप्रैल - जून 2018 अंक प्राप्त हुए। पत्रिकाओं को खोलने के पूर्व दोनों आवरण पृष्ठों में मन उलझ कर रह गया। समाज का वह वंचित तबका जिसे पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठों पर स्थान मिलना बंद हो चुका है, उसे आपने दोनों पत्रिकाओं के आवरण पर स्थान देकर बहुत बड़ा काम किया है। इसके लिए छायाकार श्री राजेंद्र शर्मा तथा आवरण हेतु चित्र का चयन करने वाले संपादक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। इस प्रकार के आवरण मन को बहुत सुकून देते हैं। दोनों पत्रिकाओं ने अपने अलग तरह के आवरण पृष्ठों के कारण अपना अलग स्थान बना लिया है। अब सबसे पहले यही उत्सुकता रहती है कि इस बार दोनों पत्रिकाओं के आवरण पर कौन सा चित्र होने वाला है। आगामी अंक हेतु बधाई एवं शुभकामनाएँ।

-राकेश सक्सेना, नंदा नगर, इन्दौर

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

गुटबंदी साहित्य के लिए अहितकारी है

(सुमन घई से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

संप्रति: स्वतंत्र लेखन।
शिक्षा: बी.एससी. (पंजाब यूनिवर्सिटी), कंप्यूटर टेक्नॉलोजी (कैनेडा)।
विधाएँ : कहानी, लघुकथा, कविता, समीक्षा, आलेख इत्यादि।
प्रकाशित कृतियाँ:
लाश व अन्य कहानियाँ-ई-पुस्तक
संपादन:
साहित्य कुंज.नेट
हिन्दी टाईम्स साप्ताहिक समाचार पत्र
हिन्दी चेतना त्रैमासिक साप्ताहिक पत्रिका-सह संपादन
उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियाँ/ प्रतिभागिता:
आपने अनेकानेक सम्मेलनों/कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है।
pustakbazaar.com-निदेशक, संपादक, प्रकाशक
हिन्दी राइटर्स गिल्ड -संस्थापक, निदेशक
हिन्दी साहित्य सभा-भूतपूर्व सचिव एवं आजीवन सदस्य
विभिन्न भारतीय और अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं, संकलनों और अंतरजाल पर निरन्तर प्रकाशन।
संपर्क: sumankghai@gmail.com

कैनेडा के सुमन घई से मेरी जान-पहचान हिन्दी चेतना, कैनेडा की पत्रिका के माध्यम से हुई। वे हिन्दी चेतना में पहले से थे; जब मैं इस पत्रिका से जुड़ी। कुछ वर्ष हमने साथ काम किया। सुमन जी प्रतिष्ठित कहानीकार हैं, हिन्दी वेब पत्रिका साहित्य कुंज के संपादक और कैनेडा के लोकप्रिय पत्रकार हैं। कविता, आलेख, निबंध पर भी खासी पकड़ है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी सुमन घई से हुई मेरी बातचीत-

प्रश्न: सुमन जी, आप अंतरजाल से उस समय से जुड़े हुए हैं, जब अभी इसका प्रचलन शुरू ही हुआ था। अनुभूति-अभिव्यक्ति हिन्दी वेब पत्रिकाओं के शुरू के दिनों में आप इनके साथ थे। फिर आपने साहित्य-कुंज वेब पत्रिका को आरंभ किया। आपने इसे कभी मुद्रित रूप प्रदान नहीं किया। अब तो हिन्दी वेब पत्रिकाओं का जाल सा बिछ गया है। आपसे जानना चाहती हूँ कि क्या भविष्य में मुद्रित पत्रिकाएँ बंद हो जाएँगी? सिर्फ़ अंतरजाल पत्रिकाएँ ही रहेंगी।

उत्तर : सुधा जी, आपने ठीक कहा कि मैं अंतरजाल की हिन्दी पत्रिकाओं के आरंभिक दिनों से ही जुड़ा हुआ हूँ। वास्तव में पूर्णिमा वर्मन अनुभूति-अभिव्यक्ति आरंभ करने से पहले 'बोलोजी.कॉम' साहित्यिक ई-पत्रिका का संपादन कर रहीं थीं। इन दिनों 'बोलोजी.कॉम' को पाठक 'हिन्दी नेस्ट.कॉम' के नाम से जानते हैं। इसी वेब-साईट पर मेरी पहली कविता प्रकाशित हुई थी और मुझे और लिखने का प्रोत्साहन भी मिला था। बाद में अनुभूति-अभिव्यक्ति में मेरी कविताएँ और कहानियाँ भी प्रकाशित हुईं। हिन्दी साहित्य का पटल इतना विस्तृत है कि कोई एक वेबसाईट इसके साथ पूर्ण न्याय नहीं कर सकती; इसीलिए 'साहित्य कुंज' का प्रकाशन आरम्भ किया। इसे मुद्रित रूप देने का कभी सोचा ही नहीं। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि साहित्य कुंज को वेब पर लाने से पहले ही मैं कैनेडा से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' के संपादक और प्रकाशक श्याम त्रिपाठी जी की सहायता करने लगा था, जो कि लगभग चार वर्ष तक की। इसलिए साहित्य कुंज को मुद्रति रूप में प्रकाशित करने की कोई कमी मुझे अनुभव नहीं हुई। आपके प्रश्न के अंतिम भाग का उत्तर भी इसी अनुभव के आधार पर दे रहा हूँ- आप भी 'हिन्दी चेतना' से जुड़ी रहीं और उसे पीडीऍफ़ रूप में इंटरनेट पर उपलब्ध करवाने का क़दम भी आपने ही उठाया। अंतरजाल कहें या इंटरनेट - यह बहुत शक्तिशाली माध्यम है। साहित्य को वैश्विक स्तर पर उपलब्ध करवाने का इससे अधिक कारगर और सस्ता माध्यम कोई और नहीं है। इस कारण से मुद्रित पत्रिकाएँ सिमट तो जाएँगी परन्तु बंद नहीं होंगी क्योंकि अतीत से जुड़े रहने का रोमांस भी एक शक्तिशाली अनुभूति है। मुद्रित पत्रिकाएँ इसी रोमांस का भाग बनी रहेंगी। पश्चिमी देशों में पत्रिकाओं के प्रकाशन की अवस्था और

परिस्थितियों को देखते हुए ही यह कह रहा हूँ। ई-रीडर या टैबलेट्स पर इन पत्रिकाओं के संस्करण मुद्रित संस्करणों के समानन्तर प्रकाशित होते हैं और बिकते हैं।

प्रश्न: आपको लेखन के कीड़े ने कब काटा और विदेश प्रवास का संयोग कैसे हुआ?

उत्तर : सुधा जी, यह कहना तो बहुत कठिन है कि यह बीमारी कब शुरू हुई। बचपन में जालंधर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी मिलाप' के बच्चों के कोने में प्रकाशित पहली कविता से या उससे पहले ही तीन-चार साल की उम्र में सुबह उठ कर दूध पीते हुए माँ को रात का सपना सुनाते हुए। हिन्दी राइटर्स गिल्ड की एक सदस्या डॉ. इन्दु रायज़ादा से बात हो रही थी तो उन्होंने कहा कि लेखक को सरस्वती का वरदान होता है। मैंने हँसते हुए कहा कि यह तो वह ही जानें कि वरदान दिया है या श्राप? क्योंकि समय की इतनी कमी महसूस होने लगी है कि सुबह साढ़े तीन बजे जाग कर चार बजे तक कंप्यूटर पर बैठ जाता हूँ। शायद यह मानसिक विवशता है या बीमारी पर सच्चाई तो है ही। बाक़ी रही विदेश प्रवास की बात - हम चार भाई हैं, मैं सबसे छोटा हूँ। बड़े तीनों भाई कैनेडा में आ चुके थे इसलिए मेरा इस देश में आना भी तय हो चुका था ताकि परिवार बिखरे नहीं। अब तो सारी उम्र यहीं बीत गई है। जब कैनेडा आया तो बीस वर्ष का था और अब चौंसठ का हो चुका हूँ।

प्रश्न: सुमन जी, आपने अभी बताया कि आप वर्षों से कैनेडा में हैं। प्रवासवास ने आपकी रचनाशीलता को ज़रूर प्रभावित किया होगा। कुछ बताएँगे इसके बारे में।

उत्तर : इस प्रश्न का उत्तर मेरे दिल के बहुत क़रीब है। कई बार कुछ ऐसा भी कह देता हूँ जो विवादस्पद भी हो जाता है - परन्तु ख़ुद के साथ ईमानदार रहना भी आवश्यक है। कम उम्र में मैं कैनेडा पहुँचा और तब हिन्दी की पत्रिकाएँ और उपन्यास आदि कुछ भी यहाँ मिल पाना लगभग असंभव ही था। दूसरा नए देश-परिवेश में पाँव जमाने का संघर्ष भी था। इन्हीं कारणों से धीरे-धीरे भाषा और साहित्य से नाता टूट गया। कब भाषा को खो दिया यह पता ही नहीं चला। जब बोलोजी.कॉम से परिचित हुआ तो भाषा और साहित्य से संबंध पुनर्जीवित हो उठा। भाषा को पुन: प्राप्त करने के लिए परिश्रम भी करना पड़ा। जिस आयु में इस देश में पहुँचा उस आयु से जीवन के अनुभव व्यक्ति को प्रभावित करना आरम्भ करते हैं। इसीलिए मेरे लेखन की पृष्ठभूमि, संदर्भ और परिप्रेक्ष्य इसी समाज के रहते हैं - यह सायास नहीं बल्कि स्वाभाविक है। हिन्दी राइटर्स गिल्ड की स्थापना करते हुए भी यही विचार था कि भारत के बारे में तो हज़ारों लेखक लिख रहे हैं, परन्तु हमारी समस्याओं, उपलब्धियों, समाधानों की बात कौन कर सकता है? हमें ही इन्हें लिखना होगा - दूसरा इस देश में रहते हुए हम भारत के गाँवों की बात केवल अपनी स्मृतियों के आधार पर करते रहें - यह तो बेमानी है। अगर रचना भोगा हुआ यथार्थ है तो फिर उसे वैसा ही रहने दो न। चाहे महानगरीय अनुभव और संस्कृति इन दिनों वैश्विक होती जा रही है परन्तु दैनिक जीवन के अनुभवों की सूक्ष्मताएँ तो अलग हैं और उन्हें वही अभिव्यक्त कर सकते हैं जो उन्हें जीते हैं। यही सब भाव मेरे लेखन में स्वत: उतर आते हैं।

प्रश्न: आप कहानीकार हैं, कहानी लिखने की आपकी प्रक्रिया क्या है?

उत्तर : आपने ठीक कहा कि मैं कहानीकार हूँ - यह बात अब मुझे समझ आने लगी है। हालाँकि साहित्य की लगभग प्रत्येक विधा में लिखता हूँ परन्तु कहानी लिखने के लिये मुझे परिश्रम नहीं करना पड़ता। कुछ अनुभव, दृश्य या सुनी हुई बात जो मन को छू जाती है, मन के किसी कोने में बैठ कर विश्लेषण-संश्लेषण करती रहती है। कब वह अनुभव पन्नों पर उतर आएगा यह मेरे बस में नहीं है। एक समय आता है कि मन कचोटने लगता है कि बस अब लिख भी डालो - सो लिखने बैठ जाता हूँ। कहानी का आरंभ और अंत भी तय रहता है और मुख्य पात्र भी। उसके बाद लिखते हुए अन्य पात्र स्वयं उभरते हैं और कहानी को आगे बढ़ा कर आलोप हो जाते हैं। पूरी कहानी सदा एक ही बैठक में लिखता हूँ। उसे कुछ दिन के बाद एक बार फिर पढ़ता हूँ। कहानी में केवल कुछ शब्दों को आगे-पीछे करने के अलावा कोई और परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं लगती। कथानक वही रहता है जो मन से उभरता है। अगर मुझे कोई कहे कि अमुक विषय पर कहानी लिख दो - वह मेरे सामर्थ्य से बाहर है।

प्रश्न: आपकी कहानियाँ उद्‌भव से विकास तक, कितना समय तय करती हैं?

उत्तर : 'असली-नक़ली' कहानी रेस्त्राँ के अनुभव के बाद अगले दिन ही लिख दी थी - दूसरी ओर 'उसने सच कहा था' को लिख पाना एक दृशांत के लगभग बीस साल बाद संभव हुआ। मैं प्राय: कहता हूँ कि कहानी वास्तविकता की काल्पनिक संभावनाएँ होती है। जब तक मेरा मन इन काल्पनिक संभावनाओं को संश्लिष्ट नहीं कर पाता, मुझे कहानी लिखने की विवशता अनुभव नहीं होती। तेजेन्द्र शर्मा जी की शब्दों में जब कहानी 'पक' चुकी होती है तो लिखने बैठता हूँ।

प्रश्न: सुमन जी, आपने देखा होगा कि जब भी सदी की कहानियों का संकलन निकाला जाता है, वैश्विक रचनाकारों की रचनाएँ आलोचकों की दृष्टि से ओझल हो जाती हैं, क्या महसूस करते हैं आप?

उत्तर : यह बहुत ही संवेदनशील विषय है। क्योंकि आजकल देखने में आ रहा है कि आलोचना विज्ञापन का हिस्सा बनती जा रही है। वैसे तो आलोचना पाठक को रचना पढ़ने के लिए उकसाती है - परन्तु अगर आलोचना रचना के स्तर, साहित्यिक मूल्य की बजाय उसे केवल बेचने के आशय से लिखी जाए तो वह निरर्थक हो जाती है। ऐसी आलोचनाओं का प्रचलन बहुत बढ़ता जा रहा है।

दूसरी बात जो मैं कहने जा रहा हूँ, हो सकता है आप उससे सहमत न हों। परन्तु यह मेरे अपने विचार हैं। क्योंकि मेरी उम्र का अधिकांश कैनेडा में बीता है; इसलिए मेरे लेखन में मेरे अनुभवों का उतर आना स्वाभाविक ही है। प्रश्न यह उठता है कि दैनिक जीवन की इन सूक्ष्मताओं या अनुभवों को क्या भारतीय आलोचक समझ पाएगा या महसूस कर पाएगा? यह किनारे पर बैठ कर तैराकी सीखने वाली बात है। आज हिन्दी साहित्य की रचना वैश्विक है। हमें हिन्दी साहित्य को अंग्रेज़ी साहित्य के बराबर रख कर देखना होगा। जब आप उत्तरी अमेरिका के साहित्य को इंग्लैंड या ऑस्ट्रेलिया के साहित्य के समकक्ष रखते हुए आलोचना

करते हैं तो आप कला पक्ष की तुलना तो कर पाएँगे परन्तु कथानक के भावपक्ष में कठिनाई महसूस कर सकते हैं। क्योंकि भाषा एक हो जाने से संस्कृति एक नहीं हो जाती। हम लोगों को विदेश में बसे कई दशक बीत चुके हैं – हमारी संस्कृति में अंतर आ चुका है। हमारे जीने के मूल्य भी एक सीमा तक बदल चुके हैं। हमारे लिए जो सामान्य है वह भारतीय आलोचकों के लिए विषमता पैदा कर सकता है। शायद मैं प्रश्न से थोड़ा भटक गया – अब रही आलोचकों की दृष्टि से वैश्विक रचनाकारों की रचनाओं का ओझल हो जाना – क्योंकि अधिकतर आलोचनाएँ प्रकाशक अनुबंध के पालन के लिए पैसे देकर करवाता है तो उसे आलोचना कहने का मन नहीं करता। विदेशी साहित्यकारों की पुस्तकों का प्रकाशन भारत में होता ही कितना है – तो आलोचना की आशा रखी ही कैसे जा सकती है? आलोचक लेखक, प्रकाशक की गुटबंदी का सदस्य हो चुका है। अगर आप उस गुटबंदी का भाग नहीं है तो आप हैं ही नहीं – आपकी रचनाओं की बात ही अलग है।

प्रश्न: गुटबंदी के साथ-साथ आज साहित्य में बाज़ारवाद भी बहुत बढ़ गया है ...आप की क्या राय है?

उत्तर : गुटबंदी और बाज़ारवाद दो अलग-अलग विषय हैं। गुटबंदी साहित्य के लिए अहितकारी है परन्तु बाज़ारवाद हितकारी हो सकता है। भारत के साहित्य में समय-समय पर कुछ नारे उठते रहते हैं; जो कि कुछ प्रसिद्ध लेखकों के व्यक्तिगत राजनैतिक विचारों से उपजते हैं। मैं बाज़ारवाद को भी एक ऐसा ही नारा मानता हूँ। एक ओर तो हम चाहते हैं कि साहित्य, लेखक के लिए धनोपार्जन का साधन हो – दूसरी ओर जो बाज़ारवाद यह संभव कर सकता है – बुरा है। इन विचारों में समन्वय कहाँ है? सुधा जी आप यू.एस. में रहती हैं, आपने भी देखा होगा कि इन देशों में अंग्रेज़ी साहित्य की किताबें या ई-बुक्स कितनी बिकती हैं। यह बाज़ारबाद का हितकारी पक्ष है। लेखक पुस्तक प्रकाशन के लिए बाज़ारवाद का हिस्सा बनता है जो कि कोई भ्रष्ट प्रक्रिया नहीं बल्कि एक सुलझी हुई व्यवसायिक प्रक्रिया है। लेखक का एजेंट, वकील और प्रकाशक होता है। प्रकाशक लेखक के लिए संपादक नियुक्त करता है, उसकी पुस्तक के विज्ञापन के लिए 'बुक साईनिंग' आयोजित करता है, रेडियो और टीवी पर 'टाक शो' पर भेजने का प्रयास करता है। यह है साहित्य का बाज़ारवाद। इसी तरह सामाजिक बाज़ारवाद भी इतना बुरा नहीं है जितना कहा जाता है। जीवन मूल्य बाज़ारवाद से प्रभावित नहीं होते नैतिक पतन से होते हैं। नैतिक पतन इस बात पर निर्भर नहीं करता कि कोई कितना अमीर है या ग़रीब। अब देखिए गुटबंदी साहित्य का गला घोंटती है और बाज़ारवाद उसे एक विस्तृत पटल देता है।

प्रश्न: कहानीकार और कवि होने के साथ-साथ आप पत्रकार और संपादक भी है आपकी राय बहुत महत्त्वपूर्ण है; विदेशों में कौन से रचनाकार बहुत अच्छा लिख रहे हैं?

उत्तर : सुधा जी, यह बहुत व्यक्तिगत प्रश्न है। दूसरा मैं आलोचक तो हूँ नहीं इसलिए यह अनुत्तरित ही रहे तो अच्छा है।

प्रश्न: बहुत-सी पत्रिकाएँ प्रवासी विशेषांक निकालती दिखाई देती हैं। प्रवासी दिवस, प्रवासी साहित्य सम्मेलन, प्रवासी सम्मान ..आप प्रवासी साहित्य को किस तरह देखते हैं?

उत्तर : जिन आयोजनों और प्रकाशनों के आगे प्रवासी लिखा रहता है – वह सभी विदेशों में बसे भारतीय साहित्यकारों के लिए अच्छे ही हैं। हालाँकि कई बार इस चिपकी को लगा देख कर मन में कुंठा होती है कि क्या हम हमेशा हाशिये पर या उससे बाहर ही रहेंगे? परन्तु दूसरी ओर निश्चय में दृढ़ता भी आती है कि हमें अपना हिन्दी साहित्य स्वयं विकसित करना है ताकि विश्व पटल पर कैनेडा से उपजा साहित्य ठीक उसी तरह से कैनेडियन-हिन्दी साहित्य कहलाए जैसे कि इंग्लिश कैनेडियन साहित्य 'कैनेडियाना' कहलाता है।

'साहित्य कुंज' के अतिरिक्त सुमन घई 'हिन्दी राइटर्स गिल्ड' द्वारा कैनेडा में हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ नव लेखकों की एक पीढ़ी भी तैयार कर रहे हैं। विदेशों में यह कार्य कठिन है पर वे संकल्पकृत हैं और हमारी शुभकामनाएँ सुमन जी के साथ हैं।

****

ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

हैं वीराने मेरे बाद
सब मैख़ाने मेरे बाद
मुझ में और ज़माने थे
देख ज़माने मेरे बाद
आए मुझ को समझाने
कुछ फ़रज़ाने मेरे बाद
मुझ को माप न पाएँगे
ये पैमाने मेरे बाद
तरसेंगे सब जीने को
दौर पुराने मेरे बाद

आप से रिश्ता रहा
और मैं ज़िन्दा रहा
था नहीं मैं उस जगह
बस वहाँ दिखता रहा
ख़त कभी भेजा नहीं
पर उन्हें लिखता रहा
वो न थे मंज़िल मेरी
जिनका मैं रस्ता रहा
मैं कहीं पहुँचा नहीं
यूँ सदा चलता रहा

सामने बैठे रहे तुम
हौसला देते रहे तुम
घूरते थे लोग तुमको
क्यूँ मुझे पहने रहे तुम
यूँ रहे ओझल सभी से
बस मुझे दिखते रहे तुम
मैं ग़ज़ल पढ़ता गया बस
अर्थ-से खुलते रहे तुम
जब तुम्हें सब सुन रहे थे
क्यूँ मुझे सुनते रहे तुम

एन-138, सेक्टर-25,
नोएडा-201301 (भारत)
मो. : 09810224571
ईमेल : vigyanvrat@gmail.com

बत्तीस कलाओं के लीलाधारी

भरत प्रसाद

तो फिर इस पहेली का उत्तर निकालिए- पत्थर मुर्दा होता है या इंसान ? जानवर की सींग बड़ी होती है या आदमी की ? आला दर्जे की दुम कुत्ता हिलाता है या मनुष्य ? साँप और व्यक्ति में कौन अधिक विषैला है ? प्रश्न तो फिर प्रश्न है, जिसमें उत्तर पाने के बावजूद सवालों की शाखाएँ फूटती ही रहती हैं। अधिकांश उत्तर प्रश्न का मुँह बंद करने के लिए होते हैं, और लगभग सभी प्रश्न उत्तर पर भारी पड़ने के लिए। अब कौन कहे कि यह साढ़े तीन फुटाधारी शरीर भी एक प्रश्न है, एक पहेली जादू, रहस्य, उलझन और..... है। काया चाहे मंत्री की हो, अधिकारी की हो, व्यापारी की हो, शिक्षक की हो, या पुलिस अधिकारी की, सभी के लिए सबसे बड़ा सवाल है, बवाल है शरीर महाकाल है शरीर। मंत्री हज़ार गुना दास है अपने मनमाने शरीर का, अधिकारी बेचारा है - अपने शरीर के आगे। व्यापारी के लिए शरीर चलती-फिरती दुकान है और शिक्षक के लिए ? अरे, अरे ! आजकल मत पूछिए यह सवाल।

बत्तीस कलाओं के लीलाधारी:

वैसे तो धरती मईया की चारों दिशाओं में शिक्षक देवता का अस्तित्व है, मगर आजकल वे किनारा छोड़कर केन्द्र की ओर गर्दन घुमा लिए हैं। कहते हैं एक मनुष्य में अधिकतम कलाएँ होती हैं। फिर तो इस सूत्र के निष्कर्ष निकला कि आजकल शिक्षक में बत्तीस कलाएँ होती हैं। आठ पुरुष होने के कारण, आठ स्त्री होने के कारण। आठ ज्ञानी होने की वजह से और आठ घमण्डीराम होने के कारण। गुरुओं, आचार्यों, बाबाओं, स्वामियों के आशीर्वाद, प्रसाद और परम कृपा की छाँव तले जीता हिन्दुस्तानी रोम-रोम से कृतज्ञ है इनका। खास करके भारतवर्ष में गुरुओं की बल्ले-बल्ले। गुरु का भेष किसी भी फिल्ड में धारण कर लो, फिर चाँदी कूटना पक्का। दर्जनों तरह के परमानन्द की बारिश। सलाम, चरण स्पर्श, करबद्ध प्रणाम की पुष्पवर्षा सुनिश्चित, धनसुख, तनसुख और फनसुख अलग से।

जिस तरह ग्रीक देवताओं के माफिक कद-काठी वालों लाखों शिक्षक विभाग और विश्वविद्यालय का नाम रौशन कर रहे हैं वैसे ये भी। जिस तरह हज़ारों शिक्षक आला दर्जे की सिद्धियाँ हासिल करने के लिए गुह्य, प्रमाणातीत, अदृश्य साधनाएँ करते हैं वैसे ही ये भी। जिस तरह सैकड़ों शिक्षकों ने झुक कर चलने में चार पायों को, मोटी खाल में गैड़ों को, रंग बदलने में गिरगिट को और रीढ़ झुका लेने में बंदर को पीछे छोड़ दिया है वैसे ये भी। सिर से पाँव तक अकड़े हुए पत्थर के सगे भाई थे महोदय। थे तो शिक्षक ही-मगर ज्ञान को तराजू पर तौलने से ज़्यादा की चीज़ समझते ही न थे। ढब-ढाँचा भी अध्यापक का बहुत कम, पेशेवर बिजनेस मैन का अधिक लगता था। क्या मजाल कि कोई उन्हें अप-टू-डेटेड से रत्ती भर भी पीछे देख ले। चेहरे से सदैव अपने पद, कद, नाम और पहुँच का नशा चूता रहता था। महोदय की अपने विभाग के शिक्षकों से कम, शेष विभागों के ज्ञानदेवों से अधिक छनती थी। इसे यूँ कहें कि नौकरी का बस धर्म निभा रहे थे, बल्कि ढो रहे थे विभाग के साथ, वरना उनका चित्त, उनकी बुद्धि, उनका पावन हृदय, उनकी चैतन्य आत्मा कहीं और रमी रहती थी।

बाइस-तेइस साल की उम्र भला कोई ड्यूटी बजाने की उम्र है ? मगर महोदय ने आते-आते मैदान मार लिया इस मोर्चे पर। इस दुर्लभ सफलता का रहस्य था चेहरा। उनका चेहरा मलंगों की, सोखा-ओझा की नाई लगता था। घर के अंदर चेहरे के असली पन्ने खुलते और घर के बाहर ? वे अपने हाथों में मुखौटे लिए-दिए चलते थे। न जाने कब किस वक्त किस

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के हिन्दी विभाग के एसोसिएट प्रोफ़ेसर भरत प्रसाद की और फिर एक दिन, चौबीस किलो का भूत (कहानी संग्रह), देसी पहाड़ परदेसी लोग, सृजन की इक्कीसवीं सदी, बीच बाज़ार में साहित्य, प्रतिबद्धता की नई ज़मीन (लेख संग्रह), एक पेड़ की आत्मकथा (काव्य संग्रह), नई कलम- इतिहास रचने की चुनौती, कविता की समकालीन संस्कृति (आलोचना), कहना ज़रूरी है (विचार), बीहड़ चेतना का पथिक - मुक्तिबोध (आलोचना), बूँद बूँद रोती नदी (काव्यसंग्रह) प्रकाशित पुस्तकें हैं और कई सम्मानों से सम्मानित भरत प्रसाद की कविताओं, कहानियों एवं लेखों का हिन्दी साहित्य की लगभग सभी महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशन। 'जनपथ' पत्रिका के युवा कविता विशेषांक - 'सदी के शब्द प्रमाण' का संपादन किया है। परिकथा' पत्रिका के लिए 'ताना-बाना' शीर्षक से स्तम्भ-लेखन, 'लोकोदय' पत्रिका के लिए 'गहरे पानी पैठि' शीर्षक से स्तम्भ लेखन।
संपर्क: एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलाँग - 793022 (मेघालय)
ईमेल:deshdhar@gmail.com
मोबाइल: 9774125265

शेप- साइज़ का मुखौटा लगाना पड़ जाए। छात्रों के आगे वेदव्यासी मुखौटा और अधिकारी, बास या सुप्रिमों के आगे फ्यूज़ बल्ब के साथ खड़े खम्भे का मुखौटा। महोदय केवल रात में सोते समय मुखौटा फेंक देते थे, अपने असल रूप में आ जाते थे। नीले आसमान से सीधे पृथ्वी पर अवतार लिए हुए इस युग पुरुष का नाम था - प्रो. चन्द्र कुमार प्रधान। कहना चाहें तो बेहिचक कह लीजिए कि घास, भूसा, गोबर ने मिल जुलकर माथा का रूप घर कर लिया था। आपको पूरी छूट दी जाती है उन्हें विलुप्त प्रजाति का जीव कहने की, किन्तु कुछ मामलों में उनकी क्षमता का उनके सिवाय कोई अनुमान नहीं लगा सकता था। उनकी कल्पना की उड़ान हवा को भी मात देती थीं। भिन्न-भिन्न शक्ति वाले स्वार्थ के सात घोड़े जुते रहते उनकी कल्पना के रथ में। सुबह-दोपहर-शाम से लेकर देर रात तक टपाटप, टपाटप ये घोड़े दसों दिशाओं में उड़ते रहते। गुरुवर सो जाते तो भी घोड़े विश्राम नहीं लेते थे- स्वप्न में भी उनकी अनन्त यात्रा.....।

महोदय को नींद से दुश्मनी थी, बेवक्त कभी टपक गई तो छपाछप पानी मारकर भाग देते थे। उनका शगल था कल्पना के घोड़े पर सवार होकर पता लगाना कि किससे होठों की जटिल और कुटिल मुस्कान उनकी मुस्कान के साथ 2000 प्रतिशत फिट बैठ जाती है। कौन-कौन चेहरे उन्हें अपना मुखौटा लगते हैं, किन-किन जुबानों की भाषा उनकी वाणी के पदचिह्नों का अनुसरण करती है। कल्पना की काबिलियत इस हद तक थी कि वे सूई की नोंक के बराबर भी अपने खिलाफ जाने वाले कद्दावर आदमी को आइने में उतारना जानते थे। साम-दाम-दंड-भेद ? अरे नहीं, नहीं। काम-दाम-जाम-चाम के बदौलत। 'सेवक हाज़िर है आपके लिए' यह महोदय का मूल मंत्र था। हैसियत वाले, मायावी और बड़े ओहदे वाले सूँघते फिरते थे महोदय को। जो अपने कब्ज़े में प्रेमकला से न आए, उस पर धन-दौलत का जादू फेंकते थे। अंदाज़ कुछ इस तरह- 'सर जी कोई ज़रूरत पड़े तो ज़रूर याद कीजिएगा, मेहरबानी होगी।' यदि इस पर भी कोई निशाने पर न बैठा तो तीसरा अचूक शस्त्र था-जाम। आज कौन अधिकारी है जो जामभक्त न हो ? महोदय को आदमी की इस कमज़ोरी पर घनघोर विश्वास था। इसी के बदौलत उन्होंने एक्सपर्ट पटाए, मैनेजर पटाए, चयन समितियों में नाम डलवाए, यहाँ तक कि चार-छः जिलाधिकारियों के ड्राइंग रूम की कुर्सी बन गए।

दर्शन, मनोविज्ञान या योगशास्त्र पढ़ाते होंगे पाठ शरीर के सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म या शून्यवत् रूप का। यहाँ गुरुवर ने सदियों पुरानी इस धारणा को ही चुनौती दे दी। उनके दिखते शरीर के तीन भेद थे और भीतरी शरीर के रूपों की कोई गिनती ही नहीं। व्यवहार करने वाला शरीर एक, अंग-अंग से बोलते रहने वाला शरीर दो और चेहरे के मौन से प्रकट होने वाला शरीर तीन। मंच पर अभिनय प्रस्तुत करना आसान है, मगर असल जीवन में नाटक खेलना बड़ा ही पेंचीदा। कचखर नौटंकीबाज है तो नंगा हो जाएगा। बनावटीपन को भी असल की तरह पेश करने के लिए हद दर्जे की थेथरई आनी चाहिए। सफेद झूठ को अव्वल सच की तरह पेश करने के लिए जिगर अव्वल बेहया होना चाहिए। इतना ही नहीं बुद्धि की जगह लंठई और दिल की जगह निर्लज्जता का वास होना चाहिए। गुरुदेव में ये सारी सिद्धियाँ मानो जन्मजात भरी हुई थीं।

साहित्य के इतिहास के विचित्र आश्चर्यों में से एक यह भी माना जाएगा कि आलराउण्ड सेकेंड डिविज़नर महोदय किस बूते कॉलेज और फिर विश्वविद्यालय पहुँच गए। दर्जनों अटकलें फिज़ाओं में उड़ती रहती थीं, मगर शिक्षक देवता को बाल की नोंक के बराबर भी असर नहीं पड़ता था। गुरुवर ने और कुछ सीखा हो या नहीं, मगर अपने मकसद में कैसे कामयाब हुआ जाता है इसकी अचूक कला उन्हें जन्मजात हासिल थी। ज़रुरत के अनुसार, परिस्थिति ताड़ते हुए, मन-मिजाज तौलते हुए वे नपे-तुले तराशे, चमकाए और चाशनी में डुबोए हुए शब्दों की छींट मारते थे। इनकी प्रभुता का मायाजाल व्यापारी से लेकर एजेंट, डायरेक्टर से लेकर दलाल, चपरासी से लेकर अधिकारी, गऊ आदमी से लेकर परम मक्कार, शिक्षक से लेकर ज्ञानविरोधी और गतयौवना से लेकर नवयौवना तक फैला हुआ था। गुरुवर की प्रोफ़ेसरी हाथी का दाँत दिखाने की तरह थी, वरना उनकी असल प्रतिभा बड़े-बड़े शहरी प्लाट हथियाने में, आधा दर्जन स्रोतों से नकद नरायन आने में, समतियों- योजनाओं और चयन मंडलियों में अपनी अनिवार्य उपस्थिति दर्ज कराने में देखते ही बनती थी। वैसे तो किसी को साधने में पारंगत गुरुवर के तरकश में हज़ारों दिव्यास्त्र थे, मगर कुछ अस्त्र, ब्रह्मास्त्र से भी शक्तिशाली थे। यदि असर देखना हो तो ये लीजिए नमूना-

'सर जी ! आप तो गजब हो जी। कब जाना है कैलिफोर्नियाँ ?

डेट और टाइम बता देना, मैं फ्लाइट की टिकट निकलवा लूँगा'

'अरे नहीं डाक्साब ! आप नाहक परेशान हो रहे हैं। (रजिस्ट्रार)

'आप भी कैसी बात करते हैं ? आप तो मेरे ऊपर ज़िम्मेदारी छोड़ दो। यह भी कोई काम है जी ? एक बार अपने सेवक पर भरोसा करके तो देखिए जी।'

'फिर तो लो जी, किया आप पर विश्वास।' (रजिस्ट्रार)

'और किसी चीज़-वीज़ की इच्छा हो तो बस हिंट कर देना मुझे, मैं सब इंतज़ाम कर दूँगा।'

'ओ हो, तो ऐसी बात है ? फिर करो न 'वह'। आप भी बैठना साथ में, मज़ा आ जाएगा।' (रजिस्ट्रार)

'रजिस्ट्रार साहब, आप भी न ! अरे कोई ब्रांड-स्त्रांड भी है कि -।'

'तो बात पक्की जी ! तुमको ऐसे ब्रांड की पिलाऊँगा कि तुम भी क्या याद करोगे।'

'आप' से चलकर 'तुम' तक आने में महोदय चन्द्र कुमार ज़्यादा समय नहीं गंवाते थे। ऐसा बूझिए कि किसी को साधने के लिए 'तुम' तक पहुँचना अनिवार्य होता था। मनोविज्ञान में कोई डिग्री-विग्री तो नहीं, परन्तु दुनियावी खेल में किसी के मन को ताड़ लेना उन्हें अच्छी तरह आता था। बात-बात में सामने वाले की कमज़ोर नस धर लेना ही उनको सर्वत्र सफल करने का सूत्र थी, जिसको पकड़ने में आज तक गुरुवर से चूक नहीं हुई।

होते होंगे किसी के शरीर में एक मन, एक हृदय, एक बुद्धि, एक आत्मा। यहाँ तो प्रोफ़ेसरसाहब के दर्जनों मन थे, दर्जनों हृदय थे। बुद्धि भी आधा दर्जन से कम नहीं,

आत्मा की भी गिनती का ठिकाना नहीं। उनके भीतर बहेलिये की हुनर थी, मछुआगिरी में उस्ताद थे, उनकी निशानेबाजी असली निशांचियों को मात देती थी। मौके के हिसाब से वे बनिया का भेष धर लेते, दलाली के अवतार वे आपादमस्तक लगते ही थे, इधर न जाने कब से छक्केबाजों की अदाएँ पनपने लगीं। इतना ही नहीं, बात-बात में आँख मारने की हुनर भी विकसित हो चली। प्रभुवर का जबसे विश्वविद्यालय में पदार्पण हुआ, तभी से शहर के ओहदेदार लोगों से गाँठ जोड़ना आरंभ कर दिए। उनका व्यक्तित्व खुला मंच था, जिस पर हित-दुश्मन, अपना-पराया, पापी-पुण्यात्मा, ज्ञानी-महाघोंचू, एक पानी का, बिना पानी का, ज़िन्दा या मुर्दा कोई भी आ सकता था। शर्त बस एक ही थी उनके भुक्खड़ स्वार्थ की पूर्ति में वह काम आता है या नहीं। उनका फार्मूला था- खाओ और खाने दो, ऐंठो और ऐंठने दो, लोटो और लोटने दो, छिपो और छिपने दो। उनका मूल सिद्धांत था न किसी की निजी लाइफ में दखल देंगे, न किसी को दखल देने देंगे। बूँद-बूँद भावनाएँविद्यार्थियों के लिए इतना उड़ेल चुके थे कि इमोशनल कभी हो ही न सके। कुछ सामने अमृत वचन उनकी जुबान पर सदैव विराजमान रहते। मसलन 'कैसे हो जनाब सब टंच तो है ?'

'जहन्नुम में सड़ें लोग।'

'समय से पहले, भाग्य से ज़्यादा कुछ नहीं मिलता जी।'

'आपकी मेहरबानी सर !'

चाँदनी जैसी कुमारियों के प्रधान:

प्रो. चन्द्र कुमार प्रधान अपने नाम के तिगुने अवतार थे। चेहरे-मोहरे का पानी चन्द्रमा की चमक जैसा, कई कुमारियों के मोहन कुमार और प्यार-व्यार की सरहद पर डंटे रहने वाले काबिल सैनिक। अब इसमें कुमार महोदय का क्या कुसूर कि धर्मपत्नी परमधार्मिक चित्त की स्वामिनी निकलीं। इधर प्रोफ़ेसर जी को धर्म के नाम से एलर्जी थी। बाल-बच्चों की चिल्ल-पों और टिफिन-लंच में बेतरह नाचती रहती धर्मापत्नी। विवाह के ठीक पहले दिन के बाद उन्हें अपने शरीर की सुघड़ता का ख्याल जाता रहा। इधर विपरीत शरीर के प्रति आसक्ति की कल्पना तीव्रतर होने लगी आचार्य में। अपने आकार-प्रकार और विस्तार के विपरीत ढाँचे वाली मोहिनियाँ ही उन्हें परमप्रिय थीं। तयपूर्वक सामने पड़ जाने का कोई मौका न गंवाना, उनसे संवाद करते समय वामचक्षु का बटन दबा देना, बातचीत के बीच-बीच में सजाव-बनाव-कटाव की तारीफ छींट देना और मौका देखते ही कोई सुआवरणी गिफ्ट दे देना उनके स्वभाव से नाभि-नालबद्ध था। यह किसी प्रतियोगी परीक्षा का प्रश्न हो सकता है कि गिफ्ट पाकर मुस्काने वाली प्रेमिकाएँ गिफ्टर से प्रेम करती हैं या नहीं ? परन्तु हमारे प्रोफ़ेसर महाशय इसी सिद्धि पर गद्‌गद् थे कि उनसे उम्र में पच्चीस साल जूनियर चाँदनियाँ हमदोस्त के अंदाज़ में पेश आती हैं। अपनी अनमोल मुस्कान की बारिश करती हैं और गुरुवर के भूधराकार शरीर से तनिक भी आतंकित न होते हुए बतियाती रहती हैं। आचार्य की शिष्याएँ उनके ज्ञानकला की नहीं, प्रेमकला की उपज थीं। हवाई यात्राओं से तय किए हुए जिस भी सेमीनारी शहर में प्रभुवर उतरते, ठहरते-वहीं एक शिष्या की खोज। आश्चर्यजनक रूप से यहाँ भी हर उम्र, हर वर्ग और हर स्वभाव की शिष्याएँ। हाँ, सबमें कामन बात सिर्फ एक ही थी कि सभी चाँदनी के समान थीं। इन चाँदनियों से शीतलता पाने के ख्वाब में आचार्य उन्हें मंच दिलवाते थे, भाषण प्रतियोगिता में पुरस्कार लुटवाते और पत्र-पत्रिकाओं से लेकर राष्ट्रीय सम्मेलनों तक में आमंत्रित करवाने का मायाजाल रचते। धूप गिरती है तो जीवन खिलता है, पानी गिरता है तो धरती। बीज गिरता है तो हरियाली खिलती है, रात गिरती है- तो प्रात:काल। यह केवल आदमी ही है जो गिरता है, तो बस गिरता है। वह न खुद खिलता है, न किसी को खिलने देता है। और तो छोड़िए उसके गिरने से जीव-जानवर, पर्वत-मैदान, नदियाँ, फसलें, वृक्ष सब नष्ट हो जाते हैं। सृष्टि में यह मनुष्य ही है, जिसका गिरना मौत की खबर है। तो बात यह है कि प्रोफ़ेसर चन्द्र कुमार की दोनों आँखें चाँदनियों की ख्वाइश करते-करते उम्र-पद-सम्बन्ध-मर्यादा का मतलब ही भूल गई थीं। अपने महान् निर्देशन में शोध करने वाली शिष्याओं को गुरुवर घर की जागीर मानते थे। गाहे-बगाहे चाय, नाश्ता, पकौड़ी और सुस्वादु भोजन पकाना तो आम बात, उन्हें अक्सर नीली-पीली-हरी लाइटों वाले महंगे होटलों में भी ले जाया करते थे। धीरे-धीरे गुरुदेव सफलता के उस मुकाम तक पहुँच गए, जहाँ बेटी से भी कम उम्र की शिष्या के प्रति भी वे प्रेमालु टाइप के कृपालु हो गए। दशा यहाँ तक आ पहुँची कि विश्वविद्यालय की ड्यूटी निपटाने के बाद डायरेक्ट छात्राओं के क्वार्टर पर जा धमकते।

वैसे तो आचार्य को खुलेआम 'दारु' शब्द से परम चिढ़ थी, परन्तु आसक्ति के अंधेपन को अव्वल दर्जे तक पहुँचाने के लिए कभी-कभार चढ़ाना भी शुरु कर दिए। कैम्पस में यह किस्सा धुँआ की तरह फैल गया था कि गुरुवर छंटे हुए बनिया हैं- काँटे की तौल वाले तराज़ूमैन, परन्तु यह कला एक शोधाचार्य के रूप में देखते ही बनती थी। जिससे और कोई मतलब सिद्ध न हुआ, तो नकद नारायन ही सही। नकद से वंचित रहे तो महंगे गिफ्ट-विफ्ट ही सही। यदि वे भी न मिले, तो बढ़िया व्यंजन बनवाना पक्का।' कुछ वर्षों से लगातार एक ही तंत्र साधना में दत्तचित्त रहते-रहते प्रो. चन्द्र कुमार में आध्यात्मिक परिवर्तन शुरु हो गया। उनमें अब कई सद्‌गुरुओं के लक्षण दिखने लगे। कभी वे ख्वाब देखते कि 2020 ई. में फलाँ विश्वविद्यालय के कुलपति बन गए हैं, कभी लगता कि 2015 के इधर-उधर किसी साल होने वाले विश्व हिन्दी सम्मेलन के सर्वेसर्वा हैं। विधाता उनमें कलम चलाने की हुनर डालना भूल गया, वरना तो सन् 2030 ई. में हिन्दी साहित्य का प्रथम नोबेल पुरस्कार कहीं गया नहीं था। प्रोफ़ेसर साब के लिए भारतवर्ष का एक ऐसा अकल्पनीय जंगल था, जिसमें जितना चाहे छुट्टा गैंडा बनकर घूमो, जितना मन करे कीचड़ में नाक के ऊपर डूबे रहो, जितना जी चाहे पौधों, फसलों, फूलों, पत्तियों को रौंदो, कुचलो, मसलो। प्रतिदिन उनकी पारदर्शी काया में कभी दक्षिण के मिस्टर नटवर लाल कमलानंद, चार सौ बीसी के दुगुने अवतार अर्थात् पंचानन पंडित और प्रेमकला के कालजयी शलाका पुरुष गिरधर गोपाल जी आवाजाही मचाए रहते। भारत के इन शब्दातीत देवताओं से प्रोफ़ेसर कुमार की प्रतिदिन, प्रति घंटे, प्रति सेकेण्ड, प्रति-

प्रतिसेकेण्ड गुफ्तगू होती-अदृश्य, मायावी और मानसिक। यदि खुराफ़ाती नटवर लाल सोचते तो योजना गढ़ते प्रो. कुमार। यदि आशिकी की तलब उठती गिरधर गोपाल जी में तो किसी तन्वगी पर गिरने को सनक जाते प्रो. कुमार। नाम, शरीर और चेहरे में ये चार थे, मगर काम, मन, स्वभाव, कल्पना, इच्छा, पागलपन और पतन में एक हज़ार प्रतिशत एक। प्रो. कुमार की अन्तरात्मा परकाया प्रवेश की कला में दक्ष थी। किसी में सर्वप्रथम सम्मोहक संवाद के बहाने प्रवेश करती थी, दाल नहीं गली तो एक से बढ़कर एक काम करवा देने का जाल फेंककर। इस पर भी बात नहीं बैठी तो देख लेने टाइप का धमकी भरा अस्त्र चलाकर। इसी कल-बल-छल का सुपरिणाम यह था कि आधा दर्जन विश्वविद्यालयों की एक्सपर्ट कमेटी में, एक-दो विश्वविद्यालयों के भावी कुलपतियों की सूची में, प्रतिष्ठित पुरस्कारों के निर्णायक मंडल में दैदीप्यमान नक्षत्र की तरह विद्यमान थे।

कहाँ नहीं है चाँद, ख्वाब सा सबके उर में ?

प्रो. चन्द्र कुमार उर्फ कुमारियों के चाँद रोम-रोम से गदगदायमान थे कि उनके चेहरों का फैलाव कई चेहरों में, उनके मन का विस्तार कई हृदयों में, उनके मस्तिष्क, चित्त और शरीर का पुनर्जन्म कइयों के भीतर दिन चैगुना, रात आठ गुना हो रहा था। यद्यपि उनकी अन्तिम महाविदाई अभी न जाने कितनी दूर तक बाकी थी, फिर भी ऐसा हुआ, तो भी उनकी अरमता सुनिश्चित। आचार्य की गद्दी सँभालने के लिए आला दर्जे के सिद्ध शिष्य तत्पर थे। आश्चर्यजनक रूप से चन्द्र कुमार की आत्मा उनके शरीर में भी पैठ जाती थी, जो उनके घर उठते-बैठते, चाय-साय गटकते या हँसी-ठट्ठा में शरीक रहते। उनकी मंडली पाँच घेरों में बृहदाकार फैली हुई थी। एक प्रकार से इसे व्यूह कहिए। उच्च शिक्षा जगत् के बमुश्किल एक चैथाई शिक्षक ऐसे थे, जिन पर प्रोफ़ेसर मोहन की छाया, माया और काया का तनिक भी असर न था, वरना कोई सज्जनतापूर्वक, कोई लंपटईपूर्वक, कोई एक मुट्ठी और कोई नाक के ऊपर तक चन्द्रकुमारपन को लिए-दिए जी रहा था। कनफुकवा प्रमाणों के आधार पर कह देना ज़रूरी है कि लगभग सभी विश्वविद्यालयों के लगभग सभी विभागों में लगभग चन्द्र कुमारनुमा मूर्तियाँ ज़िन्दा थीं। उनमें कई अपने भीतर से चन्द्र मोहन थे, कई बाहर से। कई वर्तमान के चन्द्र थे, कई भविष्य के। कुछ जूनियर चन्द्र थे, कुछ सुपर सीनियर चन्द्रकुमार। गुरुदेव अपने रंग की खाँटी दुर्लभ प्रजाति थे, जिन्हें सोचकर बोलने, जीने, कर्म करने से हार्दिक घृणा थी। यहाँ तक कि अपने साथ रहने वाले का सोच-विचार वे छीनकर ही दम लेते। गुरुवर अन्तर्यामी तो थे ही, बहिर्गामी भी कमाल के थे। पूरा व्यक्तित्व-सोख थे बाबा। अपने हाव-भाव-बनाव-दबाव-प्रभाव से सामने वाले का निजत्व धीरे-धीरे खत्म कर अपने मायावी व्यक्तित्व का दरगुलाम बना लेते थे।

हमारे शरीर में जो भी आदतें, भावनाएँ, विचार या इच्छाएँ अपनी जड़ें जमाती हैं, वे शर्तिया इस शरीर को अपनी-अपनी ओर खींचना, बल्कि कहिए खींचना शुरु कर देती हैं। मज़ा यह कि इस खिंचवा की कोई सीमा नहीं, कहीं फुलस्टाप नहीं। यह यों ही नहीं कहा गया है कि एक बदमाशी हमारे भीतर दर्जनों बदमाशियाँ लेकर आती है। यह रहस्य कम से कम प्रोफ़ेसरचन्द्र कुमार के साथ एक सौ एक परसेन्ट लागू होता है। अब जबकि खुल्लम-खुल्ला बनिया ढब-ढाँचे के थे, तो शातिर होना ही था। जब शातिर हुए तो आला दर्जे का धोखेबाज़ बनना ही था। जब धोखेबाज़ी की राह अपनाई तो क्रूरता का पुतला होना तय। और जब क्रूर हुए तो आधा मनुष्य आधा दानव होने से कौन रोक सकता था ? जब तक घर में मौजूद हैं- तब तक पत्नी, बेटी, बेटा यहाँ तक कि बूढ़े माँ-बाप भी निर्दोष प्राणी की तरह सहमे रहते हैं- कब क्या किसको बक दें, गाली दे दें, हाथ-पैर चला दें। कई प्रोजेक्ट हथियाने के सिलसिले में प्रो. कुमार ने कई लाख का वारा-न्यारा कर तो दिया, मगर जाँच के घेरे में आ गए। बैठा दी गई इन्क्वायरी कमेटी। यहाँ तक कि यौन उत्पीड़न का दाग भी उनके चमकते सफाचट माथे पर लगा। सस्पेंड तो नहीं हुए, मगर सेकेण्ड-दर-सेकेण्ड प्राण पत्ते पर टंगा रहता कि कब विश्राम करने का सर्टिफिकेट हाथ में थमा दिया जाए। उधर धर्म की पताका फहराने वाली पत्नी बेरूखी की तान छेड़े हुए थी। न सीधे बोलना, न तबियत से हँसना, और न ही....।

वैसे दिक्-दिंगत में विजयी पताका लहराने की तरह प्रो. कुमार के नाम का झण्डा संपूर्ण भारत में फहरा रहा था। कई विश्वविद्यालयों में उनका सिक्का, सभी जगह विशेषज्ञ के तौर पर उनका नाम, लगभग प्रत्येक नियुक्ति में उनके लम्बे हाथों की पहुँच, करीब-करीब आधा दर्जन मंत्रियों से उनकी लाल पानी वाली दोस्ती। इन सबके बावजूद प्रो. चन्द्र कुमार दिन-प्रतिदिन विक्षिप्त होते चले गए।

उनको इस भय का दौरा पड़ने लगा कि देश भर की हज़ारों बेटियाँ चप्पल और सैंडिल लेकर उनको दौड़ा रही हैं। हज़ारों हट्टे-कट्टे नौजवान छात्र 'मुर्दाबाद' का नारा लगाते हुए चारों ओर से मरम्मत करने के लिए घेर रहे हैं। मानों वे साँड़ के शरीर में बदल गए हैं और फसलों को रौंदने के जुल्म में पीठ पर दे दनादन बरस रहा है। उन्हें यह भी साक्षात् लगने लगा कि वे अब ऐसे निर्बल जीव हैं, जिनसे मामूली आदमी ने भी डरना बन्द कर दिया है, जिनके आगे हर हरामी भी गर्दन उठाते हुए शर्माता नहीं। जिनकी हैसियत साँप, गोंजर, बिच्छू, टिड्डा से भी गई बीती है। क्षण-क्षण यह एहसास उनमें गहराने लगा कि उनके दिल की जगह कई जीवों का खून बह रहा है। मस्तिष्क अंधकार में घुमड़ती हुई आँधियों का मैदान बन चुका है और पूरे ढाँचे में खोखलापन चीख रहा है।

इसीलिए जब कोई अपना विद्यार्थी उन्हें प्रणाम करता है तो प्रो. कुमार का मुखमंडल लाल हो जाता है। कोई आत्मीयता दिखाता है तो प्रोफ़ेसर साहब की पुतलियाँ तिरछी हो जाती हैं। यहाँ तक कि बेटी जब बुलाती है 'पापा जी' तो 'हाँ बेटी' कहते हुए महोदय की जुबान काँपने लगती है। शेक्सपीयर चाचा ठीक ही कहे कि 'अपराधी की सज़ा यह नहीं कि लोग उस पर विश्वास नहीं करते बल्कि वह खुद भी अपने पर विश्वास नहीं करता।' तो सज्जनों ! ऐसे दुर्लभ, असाधारण, विलक्षण, अनमोल, अवतारी पुरुष प्रोफ़ेसर साहब के प्रति संस्कृत भाषा का एक ही सूत्र मुँह से निकलता है - 'तस्मै श्री गुरुवे नमः।'

***

और कुलसूम मर गई...

ज़ेबा अलवी

आज फिर बूढ़ी मासी (मासी पाकिस्तान में काम करने वाली को कहते हैं) बहुत परेशान लग रही थी। हमारे पूछने पर उसने बताया कि कुलसूम का पेट आज फिर बहुत फूल गया है।

''तुमने दिखाया किसी डॉक्टर को?''

''अस्सी डागदर नु लैथ पैथ गई, डागदर बोला पानी निकासना पैगा।''

एक तो सारी मुसीबत यह थी कि बरसों हो गए उसे कराची आए हुए मगर वह उर्दू ठीक तरह से नहीं बोल सकती थी, और हम उसकी ठेठ पंजाबी समझने से क़ासिर। दरमियान में किसी स्पोक्स पर्सन का होना ज़रूरी होता। कभी यह मसअला बेटी हल कर देती क्योंकि वह काफ़ी अरसा अपनी तालीम के सिलसिले में लाहौर रह चुकी थी और कभी किसी छोटे बच्चे की आया अपना काम छोड़ कर उसकी हमदरदी में यह काम अन्जाम देती, या कभी जैसे-तैसे मतलब हम ख़ुद ही निकाल लेते।

अब से दस बारह साल पहले जैसा काम तो वह नहीं कर सकती और न ही हमारे घर का काम छोड़ने को ही तैय्यार थी। इसलिए अब उसे हलके-फुलके काम कि किसी बच्चे की मालिश कर दे या किसी के सर में तेल दबा दे, जैसे कामों पर इसको लगाए रखा था।

बेशुमार झुर्रियों भरे चेहरे पर चिन्ता की लकीरें आज कुछ ज़्यादह ही गहरी थी। पाँच छह बच्चों की माँ उसकी अपनी बेटी कुलसूम पिछले कई बरसों से अपनी बीमारी से जूझ रही थी। मासी का छोटा पोता सवाल करता- ''दादी बुआ तो कहती है इसको पीने का पानी नहीं मिलता, फिर इसके पेट में इतना पानी कैसे भर जाता है?''

उसका सवाल ठक से हमारे दिमाग़ से टकराता है। हमें लगता वह यह भी कहना चाह रहा है कि उसकी बुआ को रोटी भी तो पेट भर नहीं मिलती है, फिर डेढ़ दो साल बाद उसका फूला पेट एक और ज़िन्दगी, एक और रोटी बँटाने वाला क्यों ले आता है? इन सारे सवालों का जवाब न उसके पास था न हमारे पास।

कुलसूम की सबसे बड़ी लड़की सतबराई जो अभी ग्यारह-बारह साल की थी ख़ुद अपना बचपन भूल कर हर डेढ़ दो साल बाद अपने आने वाले भाई, बहन को कमर पर लटकाए अपनी झुग्गी के गिर्द फैले बड़े मैदान में जो किसी प्लाज़ा के लिए आवंटित था और जिसके मालिक ने उसके बाप को चौकीदारी के एवज़ रिहाइश के तौर पर दे रखा था, घूम-घूम कर, ऊबड़-खाबड़, ऊँची-नीची, जगह-जगह काँटेदार खुदरौ झाड़ियों वाली ज़मीन पर बिखरे पॉलीथिन के पैकेट्स जो चौदह माले की बिल्डिंग के पेट भरे, खाए अघाए बच्चों के दाँत काटे डबल रोटी, बिसकिट के आधे पीधे टुकड़े, सेब, केले और दूसरे फलों के टुकड़े, टूटे फूटे बेकार खिलौनों में से कोई प्लॉस्टिक का नीला, पीला घोड़ा, हाथी या कोई जहाज़ उठा कर अपने भाई-बहनों को बहलाती रहती।

कभी-कभी तो इसके मासूम हाथ बड़े शौक़ से फटाक से गिरे पोलीथीन के पैकेट को खोलते और उसमें बजारा रोटी, फल या किसी बच्चे का लथड़ा-पथड़ा पैम्पर होता तो वह घबराकर इधर उधर देखती कि कहीं कोई उसे देख तो नहीं रहा है। उसे नहीं मालूम कि दो बेबस आँखें उसे देख रही हैं।

हम जब भी अपने टेरेस से समन्दर में बड़े-बड़े जहाज़ों को आते-जाते देखते या अभी हाल में समन्दर के दरमियान लगे फ़व्वारे की नमी और ठंडक को अपनी आँखों में उतारते, शाम को डूबते सूरज और सतह-ए-समन्दर पर फैली सुरख़ी का नज़ारा करते कि जब तक छत से सूरज डूब न जाए, नज़रे हटाने का दिल ही न चाहे। मगर जैसे कोई कह रहा हो - अख़बारों की ''सुर्ख़'' सुरख़ियों, जा ब जा फैले लहू रंग से दिल नहीं भरता है क्या? तो जैसे लगता हम किसी गुनाह का इरतेकाब कर रहे हैं। जो नज़ारा दरमियाँ है उससे इनकारी हैं?

इन दिनों साहिल की रौनक़े अपने चरम पर थीं। ख़ूबसूरत पार्कों, चौराहों और फिर

ज़ेबा अल्वी पाकिस्तान के उर्दू साहित्यकारों की रचनाओं का भारत के पाठकों हेतु हिन्दी में तथा भारत के हिन्दी साहित्यकारों का पाकिस्तान के पाठकों हेतु उर्दू में लिप्यांतरण करके एक पुल का कार्य कर रही हैं। मशहूर पाकिस्तानी लेखिका ज़ाहिदा हिना के दो कहानी संग्रहों का तथा प्रसिद्ध उर्दू लेखिका सबूहा ख़ान के दो यात्रा संस्मरणों का आपने हिन्दी में लिप्यांतरण किया है। वे स्वयं भी बहुत अच्छी कहानीकार तथा कवयित्री हैं। उनकी कहानियाँ तथा कविताएँ पाकिस्तान की सभी प्रमुख उर्दू तथा भारत की प्रमुख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

संपर्क : बी-105, अफ़नान आर्केड, ब्लॉक-15, गुलिस्ताने जौहर, कराँची, पाकिस्तान -75290

फ़व्वारे से लुत्फ़ अन्दोज़ होने वालों की शाम के वक़्त ख़ासी भीड़ होती। ख़ास तौर पर जब कोई सरबराह-ए-ममलिकत किसी नए बने पार्क या समन्दर में स्थापित फ़व्वारे की इफ़्तेताही तक़रीब में शरीक हो। लम्बी-लम्बी गाड़ियों की क़तारें, ख़ुशबुओं के क़लाबे लुटाती बेगमात, फूल जैसे, सुर्ख़-सफ़ैद गालों वाले बच्चे फ़ायर वर्क्स की जगमगाहटों में मगन हो जाते। उस वक़्त कुलसूम लड़की सतबराई की ख़ुशी देखने लाएक़ होती। अपने मैले चीथड़े कपड़ों में वह अपने किसी भाई बहन को छुड़ईय्या लादे, खिलखिलाती, हँसती दौड़ती हुई चाहती थी कि वह इस बाढ़ से निकल कर, जो उसके बाप ने हिफ़ाज़त के लिए बाँध रखी थी, पूरी तरह लुत्फ़अन्दोज़ हो। लेकिन उसका बाप - ''चल बैठ इत्तूँ, चल, इधर-उधर खड़ी न रहा, जादा मस्ती न कर।'' जैसी बातों से उसे धुड़कता रहता। या फिर आसमान से बातें करती इमारतें उसके आड़े आ जातीं। मगर वह उछलती कूदती फ़ज़ा में बिखर जाने वाली आतशबाज़ी और उसकी आवाज़ पर - ''पाकिस्तान ज़िन्दाबाद-पाकिस्तान ज़िन्दाबाद - के नारे बलन्द करती रहती?''

अब से चन्द साल पहले जब बूढ़ी मासी हमारे घर झाड़ू-पोंछे का काम करती थी, जब उसके बकौल देह में तन था, तो हमें उसकी इस आदत से बेहद चिड़ थी कि वह हाथ रोक कर सारा काम काज छोड़ कर ख़बरों में बड़ी दिलचस्पी लेती थी। ख़ास तौर से सियासी ख़बरों में। उसका ख़याल था कि उसके नापसन्ददिह लोग ही महंगाई बढ़ा देते हैं, पानी भी रोक लेते हैं। और फिर हर ख़राबी की जड़ यही लोग ठहरते हैं।समझे न समझे यह ख़्वाहिश भी कि कोई उसे समझाए। जितना कुछ समझती उस पर टिप्पणी करना भी ज़ुरूरी था। वह अपना काम काज छोड़ बैठ जाती। संजीदा से संजीदा टी.वी. प्रोग्रैम के दौरान वह अपना राग अलापती- ''बाजी अस्सी खबर पड़ी है ए जो नवाज शरीफ होए न, ए सबको पीली गाड़ी दित्ता सी, वडा सोंड़ा बंदा ए, बाजी मेरे बेटे नु वासते भी एक पीली टिसकी दिला दो न।'' बात कहीं से कही ले जाती।

''वो इसकिरे (ऐक्सरे) भी करा दिला ऐ। मुफ़्त दवाएँआँ भी दिला देता है। खून भी बदलवा दिला ए।''

उसका मतलब शायद येलो कैब स्कीम ओ डाइलेसेज़ की उन सहूलतों से था जिस पर माज़ी में नवाज़ शरीफ़ ने मुल्क के अरबों रुपैए लूटे थे।

'वो लहोर (लाहौर) में हैगा क्या? मैं अपनी बेटी नु लाहौर ले जाऊँ? पेट की मुसीबत दूर कर देगा न?''

हमें लगा वह कहेगी यह पेट ही तो सारी मुसीबतों की जड़ है। ख़ाली हो तो, भरा हो तो और फूला हो तो भी। उसकी इन मासूम ख़्वाहिशात का हमारे पास कोई जवाब नहीं था।

आज बूढ़ी मासी सुबह-सुबह ही आ धमकी। आते ही उसने अपने सारे प्रोग्रैम चाक आउट किए।

''बाजी मेरी तनखा दे दे, थोड़े अग्गे के पैसे भी दे दे। अपनी कुलसूम नु गाँव ले जाना ए।''

उसके एलान के मुताबिक़ वह बेटी को गाँव ले जाना चाहती थी। वह तनख़्वाह, एडवांस तनख़्वाह सारे घरों से जोड़ बटोर कर कुलसूम के ठीक होने की आस लिए गाँव जा रही थी। गाँव का मोलवी उसके ख़याल में इस मरतबा भी झाड़-फूँक करके उसे अच्छा कर देगा। जैसा कि दो तीन बार हो भी चुकी था, या दो चार ज़िन्दगियाँ और ज़मीन पर लाने के लिए वह वक़्ती तौर पर ठीक भी हो गई थी। उसके ख़याल में उसके ठीक होने में सारा कमाल उस मोलवी का।

ऑफ़िस के लिए तैयार होते हुए इन्होंने कहा- ''इसे रोको, वह और बीमार हो जाएगी। मैंने तुमसे कहा था न, कि जब गीदड़ की मौत आती है तो वह शहर की तरफ़ भागता है और जब इन देहातियों की मौत आती है तो ये गाँव की तरफ़ भागते हैं, अब यह और बीमार करके लाएँगे उसे।''

लेकिन मासी कहाँ रुकने वाली। कहती, ''बाजी कलेजे विच आग लगदी ए।''

हम इसे रोक नहीं सकते थे। और रोकते भी कैसे? बरसों से मासी और कुलसूम जिन घरों में काम करती आ रही थी वह भी अब मायूस हो चुके थे। जिसकी जहाँ तक हैसीयत थी सभी मदद कर रहे थे और करते मगर कुलसूम की माँ ने जाने की ठान ली थी।

छोटे बच्चे बाप और सतबराई के सिपुर्द करके मासी का क़ाफ़िला गाँव के लिए खाना हो गया। सतबराई उसी तरह अपने छोटे-भाई बहनों की देख भाल करती। वक़्त ने उसे वक़्त से पहले ज़िम्मेदार बना दिया था।

शाम को बाप सस्ती सब्ज़ी लेने सब्ज़ी मंडी जाता था। आज भी उसने अपनी टूटी-फूटी साइकिल सँभाली और मंडी का रुख किया। जाते-जाते उसने बेटी के हाथ में थोड़े पैसे थमा दिए-''लै, बराबर वाली दुकान से छोटों के लिए बिसकुट पकड़ ले। मैं छेर्ता लौटूँगा।''

काफ़ी रात गुज़र चुकी थी। बहुत से लोगों की चीख़-व-पुकार से हमारी आँख खुल गई थी। झाँक कर देखा तो झुग्गी से धीमी-धीमी रौशनी आ रही थी। धुँधले मगर बहुत से चेहरे दिखाई दिए। वैसे तो सतबराई तक़रीबन रोज़ ही एक छोटे भाई-बहन को लेकर हमारे पास आ जाती थी। छोटा भाई बड़ी लैए से - ''सालन-रोटी है।'' की सदा लगाता। बच्चे कभी ताज़ा और कभी बचे खुचे खाने को ख़ुशी से खाते कभी साथ ले जाते। मगर आज तो बच्चे भी नहीं आए। क्या कुलसूम लौट आई है? फिर यह इतनी रात गए इतने लोग क्यूँ जमा हैं? हमारी बेचैनी बढ़ गई। सर्वेन्ट क्वॉर्टर में सोए हुए ख़ानसामा को उठाया कि जा के देख हुआ क्या है?

ख़ानसामा आँखें मिचमिचाता भागा-भागा गया। वापस आया तो मुँह लटका हुआ था।

''क्या हुआ?''

''किसी बच्चे को चौट आ गई? कुलसूम लौट आई क्या?''

''नहीं बेगम साहब...'' वह ख़ुश्क गले को साफ़ करते हुए बोला,

''वह अपना चौकीदार शाम को सस्ती सब्ज़ी ... फिर?''

''फिर क्या हुआ?'' हमने पूछा।

''होना क्या था,... जी... वही जो शाम को सब्ज़ी मंडी में... बड़ा धमाका हुआ था... वह... चौकीदार गुज़र गया....'' ख़ानसामा की आवाज़ रुंध गई थी।

साइकिल राख में तब्दील हो चुकी होगी। उसकी फटी थैला से आगे- पीछे गाजर, टमाटर के लाल लाल टुकड़े और

उसके जिस्म के टुकड़े राख और ख़ून में मिलके एक अलग रंग अख़्तियार कर चुके होंगे। बदरंग.... बेरंग.... लहू रंग....।

अब तो जैसे आदत सी हो गई हैं कानों को इन ख़बरों की... इन हादसात को देखने की।

सतबराई को हमने ऊपर बुलाया। वह अपने छोटे भाई-बहनों को लेकर ऊपर आ गई। इससे पहले कि हम उससे किसी अफ़सोस का इज़हार करते वह ख़ुद ही बताने लगी। उसकी आँखों में एक अजीब सी चमक थी।

''बाजी...न...बाजी....वह बाबा गया था.... सबजी लेने न.... वहाँ पाकिस्तान जिन्दाबाद .... पाकिस्तान जिन्दाबाद... हो रहा था... बस... वहीं बाबा मर गया।''

हम उसे देख रहे थे। सुन रहे थे। वह मासूम उस धमाके को समन्दर के किनारे होने वाले जश्न और फ़ायर-वर्क्स से ताबीर कर रही थी। उसे तो जैसे मालूम ही नहीं कि उसके साथ हुआ क्या है। छेर्ता वापस आने वाला अब कभी नहीं आएगा।

वह डिप्रेशन..... वही ख़बरें..... हर तरफ़ आग-व-ख़ून का खेल। टी.वी. देखे बगैर क़रार भी नहीं ख़बरे...ख़बरे... बस ख़बरें।

रिमोट चैनल बदल रहा है। ''फ़ौरी ख़बर''

''लाहौर : आज बेगम कुलसूम नवाज़ लंदन से इलाज करा के मुकम्मल सेहतयाब होकर वतन लौट आई हैं।'' तन्दरुस्त हँसती, खेलती बेगम कुलसूम नवाज़ जहाज़ की सीढ़ियों से उतर रही हैं।

''तुम लोगों ने बूढ़ी मासी की बेटी का मालूम किया। कैसी है अब वह? गाँव से लौटी कि नहीं?''

हमने काम करती हुई उसकी रिशतेदार से पूछा।

''बाजी मैं आपको बताने वाली थी, काम में भूल गई। कुलसूम तो फ़ौत हो गई। अमी कल ही ख़बर पड़ी हम लोगों को।''

रिमोट हाथ में लरज़ गया। लगा जैसे बूढ़ी मासी नीचे फ़र्श पर बैठी है। टी.वी. पर कान लगाए। और कह रही है- ''बाजी हमारी कुलसूम तो मर गई...?'' नदामत के दो आँसू टप से गिरे... बस...?

***

लघु कथा

खिलौना

अमरेंद्र मिश्र

वे खिलौने की दूकान पर खड़े थे। उनके छोटे बेटे पम्मी का बर्थडे था और उसके लिए कोई अच्छा सा खिलौना चाहिए था। उनके साथ उनकी पत्नी भी थीं और दोनों एक अच्छा खिलौना तलाश रहे थे।

''यह कितने का है?''

''बारह सौ का है। पैक कर दूँ साहब?''

''न, न ... नहीं''

पत्नी ने पूछा - ''इसका बताना?''

दुकानदार चहकता हुआ बोला - ''तीन हज़ार का... यह गुड्डा बहुत बिकता है। पैक कर दूँ मैडम जी?''

''कर दो''

पति ने कुछ नहीं कहा पर भीतर ही भीतर झल्लाया... ''कमाल है, इतना महँगा खिलौना खरीद रही है। इतने महँगे खिलौने की भला क्या ज़रूरत है?'' पर वह मन ही मन खीजता रहा, झल्लाता रहा, बोला कुछ नहीं।

पत्नी ने पति से पूछा- ''ठीक है न, पम्मी के लिए?''

पति भला क्या कह सकता था, सिर्फ सर हिला सकता था और उसने सर हिलाया। पति-पत्नी दोनों प्रसन्नतापूर्वक बाहर आए। अब दोनों केक की दूकान के बाहर खड़े थे।

दूकानदार ने पूछा- ''क्या नाम है बच्चे का?''

''पम्मी''- पति बोला।

उसने अच्छा केक पैक करके उनकी ओर बढ़ाया। उसके बाद दोनों ने मिठाई खरीदी और घर चलने को तैयार हुए की एक गरीब औरत ने गिड़गिड़ाते हुए कहा- ''मेरे ऊपर कृपा करो साहब। बच्चे को कुछ खाने के वास्ते दो साहब। आज से यह बच्चा मेरा नहीं साहब। आज से यह किसी और का। जो खरीदेगा उसी का।''

''क्या मतलब है तुम्हारा?'' पति की आँखें पहले से अधिक खुल गईं।

''साहब, यह मेरा बच्चा है पर इसका बाप हमको सोते हुए छोड़कर भाग गया। हमारे पास इसको खिलाने के वास्ते कुछ भी नहीं। अगर यह हमारे पास रहा तो भूखों मर जाएगा। इसलिए इसे भुवरमल सेठ की कोठी पर ले जाती। वहीं पलेगा, बढ़ेगा, बड़ा होकर सेठ का नौकर बनेगा। इसके बाप ने भी यही किया था।''

''तो वह सेठ इसे खरीदेगा?''

''कुछ पैसे देगा साहेब। उसका तुम जो समझो।''

बच्चा बड़ा प्यारा था- लगता नहीं था की किसी गरीब मज़दूरनी का बच्चा है। वह किलकारी मारके हँसता था पर रह रह कर रोता भी था।

पत्नी ने अपना तीन हज़ार वाला खिलौना देखा। सोचा, यह खिलौना ठीक वैसा ही है। उतना ही प्यारा जितना प्यारा यह साक्षात् बच्चा। उसने पूछा-''सेठ तुम्हें कितने पैसे देगा?''

''यही कोई पाँच छह सौ रुपये।''

''क्या??'' - इस बार पति पत्नी एक साथ चौंक पड़े थे। उस गरीबन ने एक बड़ी बात कही-''क्या इसे आप लोग अपने पास रख सकते हो, बाबूजी? क्या मुझे किसी काम पर लगा सकते हो?''

अचानक वे दोनों पहले से अधिक शीघ्र अपने घर पहुँचना चाह रहे थे। उन्होंने कार का दरवाज़ा खोला, अन्दर बैठे और दरवाज़ा बंद कर लिया। वह गरीबन कुछ बोल रही थी, शायद ज़ोर से। कार के शीशे की खिड़की के उस पार उस गरीबन का मुँह खुला दिख रहा था और वह बच्चा अब भी किसी खिलौने की मानिंद लग रहा था।

***

संपर्क: संपादक 'समहुत', 4/516 पार्क एवेन्यू, वैशाली, गाजियाबाद-201010
amarabhi019@gmail.com

मास्साब

डॉ. कविता विकास

बारसठ की उम्र में भी मास्साब के चेहरे पर एक अजीब सी चमक थी। एक उम्मीद की किरण लिए वो गाँव में सबको सुनाया करते, ''पिछले साल बहू को अपेंडिक्स का ऑपरेशन हुआ, इसलिए बबुआ का गाँव आना टल गया। उसके गए साल बबुआ के फार्म हाउस में आग लग गई तो नुक़सान की भरपाई करने में कुछ ज़्यादा ही खर्च हो गया और फिर वो यहाँ नहीं आ सके।'' मास्टर साहब पिछले पाँच साल से बेटे के इंतज़ार में पलकें बिछाए बैठे थे। हर साल की समाप्ति में वे ऐसे ही खुद को समझा लिए करते कि इस बार बेटे - बहू का गाँव नहीं आने का क्या कारण हो सकता है।

कम्प्यूटर - मोबाइल के ज़माने में भी मास्टर साब चिट्ठियाँ लिखा करते थे। तीन साल पहले जब मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ और उसके बाद भी आँख की रोशनी कुछ खास नहीं बढ़ी, तब उन्होंने स्वयं लिखना छोड़ दिया। फिर वह अपने विद्यार्थियों से पत्र लिखवाते। शाम के समय अपने मिट्टी के घर के दालान पर मास्साब एक खटिया पर बैठ जाते और हम पाँच दोस्त उनको घेर कर गोबर से लिपे फर्श पर। सोम और विप्लव की लिखावट मास्टर साहब को पसंद नहीं थी, तो उन्हें नहीं लिखने दी जाती।

उन पर लाड़ दिखते हुए कहते, ''नाक कटा देंगे ये दोनों, इनकी लिखाई देख कर बबुआ कहेगा,'' छि, पापा ने कभी इन्हें सिखाया नहीं क्या ?''

प्रेम और शिव आधा लिखते - लिखते ही ऊबने लगते। जैसे ही वे पूछते, ''और कितना लिखाओगे आप, हाथ दुख गया,'' तो मास्टर साहब तिलमिला जाते, कहते, ''अभी तो बबुआ को यह बताना बाकी ही है कि भूरी गाय बच्चा देने वाली है, गोदाम घर का छत मरम्मत हो गया और कहता है कि हाथ दुख गया !!''

शिव से वो थोड़ा चिढ़ते भी थे, कारण, शिव उनके मुँह पर खरी - खरी सुना देता कि अब बेटे का मोह त्याग दो, आने नहीं वाले हैं भइयाजी, उनको परदेस की धरती भा गई है। पर मास्टर जी पुरज़ोर विरोध करते और कहते, ''मेरा लाल है, विद्यालय के दो हज़ार बच्चों को संस्कार सीखाता हूँ, और मेरा ही बेटा संस्कार से वंचित हो गया है क्या ? देखना, अबकी बरस बबुआ ज़रूर आएगा।''

डॉ. कविता विकास स्वतंत्र लेखिका व शिक्षाविद हैं। लक्ष्य और कहीं कुछ रिक्त है, दो कविता संग्रह, हृदय तारों का स्पंदन, खामोश, ख़ामोशी और हम, शब्दों की चहलकदमी और सृजक, साझा कविता संग्रह प्रकाशित। दैनिक समाचार पत्र - पत्रिकाओं, साहित्यिक पत्रिकाओं व लघु पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ, लेख और विचार निरंतर प्रकाशित। ई - पत्रिकाओं में नियमित लेखन।
संपर्क : डी. - 15, सेक्टर - 9, पी ओ - कोयलानगर, धनबाद, पिन - 826005, झारखण्ड
ईमेल: kavitavikas 28@gmail.com
मोबाइल:09431320288

बचा मैं, यानि कुलवंत, मस्साब का प्यारा कलुआ जो बिना किसी ना - नुकुर के उनकी हर बात लिखते जाता। जितना लंबा पत्र लिखवाना चाहते, लिखवा लेते। पहले हरेक साल तीन महीने में एक, फिर छह महीने और अब साल में दो बार, एक सावन के दौरान और एक पूस माह में। बुवाई से पहले और कटनी के बाद।

आज फिर मजलिस जमी। ''कलुआ, लिख'' और मैं आज्ञाकारी बालक की तरह कागज - कलम ले कर बैठ गया। बाकी दोस्त अगल - बगल।

मेरे प्राणों से प्रिय बबुआ, ईश्वर की कृपा से सब ठीक है। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब भी सदा सुखी रहो। सोम ने टोका, ''ई का दो - दो बार ईश्वर लिखवा रहे हैं, आशा करता हूँ, लिखवाइए।''

''चुप रह, अपनी औलाद के लिए यमराज तक की आज्ञा को टलवा देते हैं माता - पिता, और एक ये है, कहता है कि आशा करता हूँ, लिखवाइए,'' मास्टर साहब चिढ़ कर बोले। लिख, आगे।

''सावन की घटाएँ छा रही हैं। पिछले बार तो अनावृष्टि से सारा फ़सल जल गया पर इस बार अच्छे आसार हैं। माँ ने चाचा को भेज मज़दूर बुलवा लिए हैं। गाछी भी खरीद ली गई है। कल से धान की रुपाई शुरू हो जाएगी। तुझे याद है, जब तू छोटा था, एक बार धान के खेत में उतर गया, वहाँ इतना पानी था कि तेरे गर्दन तक पानी भर गया था। तू चिल्लाने लगा तो फिर सोमवा की माई ने गोद में लेकर तुझे बाहर निकाला।''

''अरे, मास्टर जी, चिट्ठी लिखवा रहे हो कि संस्मरण ? काम की बातें लिखवाइए। बड़के भैया के पास इतना टाइम नहीं है कि इतनी लंबी चिट्ठी पढ़ें।'' शिव ने टोका। मास्टर साहब की बूढ़ी आँखों में तैरता अतीत जैसे ठहर चुका था। बमुश्किल ऐसे समय में उन्हें वापस लाना पड़ता था। कई बार तो चिट्ठी लिखने का काम पूरा ही नहीं होता और मास्टर साहब की आँखों से गंगा - यमुना की धारा बह निकलती जो रुकने का नाम ही नहीं लेती। हम सब आहत हो जाते। उनको दुख हम सब को विचलित कर जाता। बात - बात पर उनकी खिंचाई करने वाला सोम तो सबसे ज़्यादा दुखी हो जाता। हम पाँचों मित्र का भरसक प्रयास होता कि मास्टर साहब अंदर से इतने मज़बूत बनें कि पुत्र के मोह- माया का बंधन धीरे - धीरे त्याग कर स्थिति से समझौता कर लें। स्कूल में हमें इतिहास पढ़ाने वाले मास्टर साहब में हम किसी क्रांतिकारी की ही झलक पाते थे। उनकी यह छवि पुत्र - मोह के आगे खंडित हो जाती थी जो हमें किसी भी प्रकार से स्वीकार्य नहीं थी।

अच्छा लिख ..., अचानक मास्टर साहब बोल पड़े, ''छोटकी चाची की पतोह को टी बी हो गया है। इलाज चल रहा है। कहती थी, एक बार बबुआ आ जाता तो बड़े शहर में जा कर इलाज करवा लेती। तुम सोचना इस पर। तुम्हारी माँ भी कह रही थी कि कटनी के समय आ जाते तो एक बार घर के अनाज का खाना खा लेते। कितना दिन हो गया बबुआ को मड़ुआ के आटे की रोटी खिलाए। परदेस में तो ई सब कोई जानता भी नहीं होगा। और, देखो सीढ़ी घर के नीचे मरम्मत काम चल रहा है। तुम्हें याद है न, वहीं पर पुआल रख दी जाती थी और तुम अपने दोस्तों के साथ खेलते- खेलते दुपहरिया में वहीं सो जाते थे।''

बोलते - बोलते मास्टर साहब की आँखें फिर नम होने लगीं। आवाज़ भर्राने लगी तब विप्लव ने बात सँभाली, ''अरे, मस्साब, इतना काहे भावुक हुए जा रहे हो ? भैया का बड़ा कारोबार है, जैसे ही काम कुछ कम होगा, यहाँ ज़रूर आएँगे।'' पिछले दो साल से मास्टर साहब का धैर्य जवाब दे गया था। पूरी चिट्ठी भी नहीं लिखवा पाते थे। अंत हम खुद ही सोच - समझ के कर देते, जैसे परीक्षा में पिता का बेटे के नाम पत्र लिखते समय रटा - रटाया वाक्य लिखते थे। शिव ने कहा, ''हाँ तो लिख, यहाँ का सब समाचार ठीक है। किसी बात की चिंता नहीं करना। हमलोग और गाय - गोरू सब ठीक हैं। अपना और बहू का ख्याल रखना। पोते का नया फोटो भेजना। तुम्हारा .... अरे, रुको,'' अचानक मास्टर साहब पूरा जतन कर के बोल पड़े। ''इतनी जल्दी कैसे बंद कर रहे हो ? लिखो, छोट के चाचा के घर टी वी देखते समय हमने देखा था कैलिफोर्निया में भीषण समुद्री तूफान आया था। बहुत क्षति पहुँची है। तुम्हारे फार्म - हाउस में भी भयंकर नुकसान हुआ है। घर - परिवार चलाने के साथ कर्मचारियों को वेतन देने में भी दिक्कत आ रही है। तुम चिंता नहीं करना, तालाब के पास वाली ज़मीन बेच कर जल्द ही पैसे भेज दूँगा। अति शीघ्र। और भी कोई मदद की दरकार हो तो बताना, जब तक तुम्हारा बापू ज़िंदा है, तुम्हें फ़िक्र नहीं करनी है।''

''अब बंद कर दो'', मास्टर साहब ने कहा और धोती के कोर से आँख पोंछते हुए उठ कर अंदर जाने लगे। इतना उदास हमने मास्टर साहब को कभी नहीं देखा था। आज पहली बार शिव या सोम ने उनकी खिंचाई नहीं की। वरना ये दोनों अक्सर उनको चिढ़ाते हुए कहते, ''अब तो स्थिति से समझौता कर लो चाचू, भैया जी को भारत आने का मन नहीं करता।'' वह विरोध करते हुए कहते, ''मेरा खून ऐसा नहीं करेगा। वो इस साल ज़रूर आएगा।'' मास्टर साहब को भी अंदर -अंदर यह चुहलबाजी अच्छी लगती, तभी तो वो केवल प्यार भरी झिड़की हमें सुनाया करते, नाराज़ नहीं होते।

मास्टर साहब दालान पार करते - करते अचानक रुक गए। पीछे हम सब को देखते हुए थरथराती आवाज़ में कहा, ''तू ठीक कहता था सोमू, तेरे भैया का कारोबार इतना बढ़ गया है कि वह अब गाँव आने की स्थिति में नहीं है। उसके पास वक़्त की कमी है। क्या पता चिट्ठी भी पढ़ पाता है या नही, क्योंकि अब तो मेल का ज़माना है। यह तो महज़ एक कागज़ का टुकड़ा है। छोड़, फाड़ दे इसे।'' मास्टर साहब ने हाथ उठा कर हमे इशारा किया जैसे हमें इतिहास पढ़ाते समय कभी शाहजहाँ तो कभी राणा प्रताप की मुद्राओं में उस किरदार को जीवित कर देते थे। आज भी लग रहा था मानों विश्व विजेता सिकंदर अपने सैनिकों को आदेश दे रहा हो, ''वापस लौट जाओ सैनिकों, ये जीते हुए देश, धन और सम्पदा कुछ न अपने साथ जाएगी। सब यहीं छोड़ कर जाना है। तुम खाली हाथ आए थे, खाली हाथ जाओगे। मोह - माया सब विनाश की जड़ है। क्या तेरा, क्या मेरा ! कोई किसी के काम नहीं आएगा, वर्तमान में जीना सीख।'' मास्साब अंदर चले गए थे और चिट्ठी को फाड़ते हुए हम अपने घरों की ओर। एकबारगी इस निर्णय पर दुख हुआ, पर एक संतुष्टि का आभास भी।

***

गुलशन कौर

देवी नागरानी

देवी नागरानी के 8 ग़ज़ल-व काव्य-संग्रह, एक अंग्रेज़ी काव्य-The Journey, 2 भजन-संग्रह, 4 कहानी संग्रह, 2 हिंदी से सिंधी अनुदित कहानी संग्रह, 8 सिंधी से हिंदी अनुदित कहानी-संग्रह प्रकाशित। अत्तिया दाऊद, व रूमी का सिंधी अनुवाद, श्री नरेन्द्र मोदी के काव्य संग्रह 'आँख ये धन्य है का सिन्धी अनुवादत। तमिलनाडू, कर्नाटक-धारवाड़, रायपुर, जोधपुर, महाराष्ट्र अकादमी, केरल, सागर व अन्य संस्थाओं से सम्मानित। साहित्य अकादमी / राष्ट्रीय सिंधी विकास परिषद से पुरस्कृत। देवी नागरानी का हिन्दी, सिंधी तथा अंग्रेज़ी मेंसमान अधिकार से लेखन, हिन्दी- सिंधी में परस्पर अनुवाद किया है।
संपर्क:323 Harmon cove towers, Secaucus, NJ 07094
ईमेल: dnangrani@gmail.com
मोबाइल: 630-605-8640

इसे मैं क्या नाम दूँ-कथा, आत्मकथा, स्मरण, संस्मरण या शब्दों का बुना हुआ एक नाज़ुक रिश्तों का जाल कहूँ, जो वक्तानुसार अपनी सुविधा से बुन लिया जाता है या उधेड़ लिया जाता है। जब गुलशन कौर से उसकी यादों की चादर में टाँके हुए इन सितारों की बात सुनी तो सोचा दुख-सुख, जुदाई-मिलन के इस भावनात्मक संगम को ज़बान दूँ। सुनते हुए मन में यही आया, जैसे रिश्ते नाते सौदागर के सौदे हो गए हैं, बिकाऊ या खरीदे हुए। बिकाऊ-जिस का नाता खरीदार के साथ बन जाता है या यूँ कहें बँध जाता है, क्योंकि वह मालिक होता है और खरीदे हुए वजूद का हक़दार, हर मामले में उसे इस्तेमाल करने का हक़ उसे हासिल होता है, काम लेने का, अपने अरमानों को पूरे करने का, हर मनचाहे इस्तेमाल करने का !

और उसी दौर में.....!

धरती की दरारों के साथ दिलों में दरारें पड़ती रहीं, बढ़ती रहीं, चौड़ी होती रहीं। हिंदू-सिख-मुसलमान सभी एक दूसरे के दुश्मन बन गए, लूटमार का हाहाकार मचा, जिसमें स्वाहा होती रही औरत की अस्मत। खुले मैदानों में बेसहारा, बेछत लोग बैठे हुए देखे जाते। एक देश अब दो में विभाजित हुआ था कम्युनल हारमनी के नाम पर जैसे एक दूसरे को मार-धाड़ कर अपने-अपने मन की भड़ास निकाल रहे हों।

ऐसे वक़्त में.....!

ज़रीना आपा के मुँह से सुना कि मुसलमान घर की एक लड़की की शादी में नाच गाने में भंग डालते हुए कुछ सिख तलवारें लेकर टूट पड़े, यह पता ही नहीं चला कि किसका सर किधर गिरा, और किस का धड़ किधर गिरा।बस खून के रेले बह चले।

ऐसे में.....!

माँएँ चीख़ती, बिलखती रहीं, और कुछ तो अपने बेटों को दूध की कसम देकर उन्हें मार डालने के लिए मजबूर करतीं, या उन्हें किसी कुएँ में फेंक देने के लिए बाध्य करतीं। सामने यह आया कि मुसलमान भी भड़के हुए थे और उनके घात करते हुए कात नहीं जानते थे कि उनके वार के सामने कौन आया? सिख-हिंदू या उनका ही कोई मुसलमान भाई। सिख औरतों को घर से घसीटकर बालात्कार के बाद घर के बंधुओं के सामने वार से तमाम कर दिया जाता। ऐसे बेदर्द हृदय विदारक मंजर देख कर...., कोई क्या करता, क्या चीखता? फ़क़त दर्द को दिल में दबाकर आज नम आँखों से वही तमाशाई बंधु अपनी आपबीती की दास्तान बताते हैं !

'हाँ तो गुलशन बिटिया, आँखन देखी हालात का मंज़र था, पर आँख रोना भूल गई... मुँह में आवाज़ घुट कर रह गई। उफ़! रहना क़यामत बन जाता था। देश की फसीलें उलांघ

आना आसान, पर दिलों की बहुत ही मुश्किल हुई थीं उन दिनों.....!'

'पर आपा, ऐसी हालत में आप सरहद के उस पार से इस पार कैसे आईं?' गुलशन कौर ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को विस्मय के विस्तार में फिराते हुए पूछा।

अब वह इतनी भी छोटी न थी, उसे कुछ-कुछ याद आ जाता कि वह किस तरह उन हालातों से बच बचाकर अपनी चाची सुरजीत कौर और अन्य शरणार्थियों के साथ अमृतसर में आकर बसी और बचपन से आज तक यहीं रच बस गई है। उनका क्या हुआ जो अपनों से बिछड़ कर पीछे रह गए। पूछने के लघु अनुपात में ज़रीना आपा की बयानबाज़ी ने तो कई वारदातों को ज़िंदा कर दिया था।

फिर भी.....!

गुलशन कौर उत्सुक थी यह जानने के लिए कि यह ज़रीना आपा आख़िर कौन है? और दो दिनों से उनके यहाँ टिकी हुई है, ऐसे जैसे कोई नज़दीकी रिश्तेदार हो। पर यह संभव किसी हाल में न था। उसका पहनावा, बातचीत का लहज़ा अमृतसर के किसी भी आम आदमी से तालमेल नहीं खाता था। सुरजीत चाची ने एक आध बार उड़ते में उनके पड़ोसी होने के नाते ज़िक्र किया था और यह भी ठीक से नहीं बताया कि वह कौन है, किसकी नातेदार है? सभी सवाल मन के किसी कोने में सहमे-सहमे से थे ....!

हाँ .....!

एक बात जो प्रत्यक्ष रूप में सामने थी, वह थी चाची के आँचल का प्यार दुलार, जो पाकर गुलशन एक कली से फूल की तरह खिल उठी थी। एक आधा बार लोगों को कहते सुना था -'गुलशन कौर का सौंदर्य कुछ अलग रंग और बू लिए हुए है। किसी अमीर घराने की अमीरज़ादी का जलवा है उसके चलन में, उसकी आन में, उसकी बान में!' तब वह कुछ भी नहीं समझी थी उन बातों का अर्थ!

'हाँ तो गुलशन बिटिया, तुम मुझे 'आपा' न कहकर 'दादी जान' भी कह सकती हो...'

'पर यह संबोधन तो....!'

बात को बीच में ही काटते हुए ज़रीना आपा ने कहा- 'संबंधों की बात नहीं मेरी लालपरी! मेरी उम्र, और इन चाँदी जैसे बालों को देखते हुए 'दादी' कहना-कहलवाना जायज़ बनता है। और तुम भी तो मेरी पोती की उम्र की हो, इसीलिए कह रही थी।'

'अच्छा आपा, आप अपनी उस पोती को अपने साथ क्यों नहीं ले आईं? क्या उसे वहीं गैरों के बीच रहने के लिए छोड़ आईं? क्या नाम है उसका?' पलभर में गुलशन ने अनगिनत सवाल ज़रीना आपा के सामने पसार दिए।

ऐसे में.....!

क्या कहती ज़रीना आपा, क्या बताती वह? कैसे अपना सीना चीर कर कहती कि .....! एक ऐसा सच जो न उगलते बनता था न निगलते।

'आप बताएँ ना आपा, उसका नाम क्या है? वह कहाँ है? चाची ने एक दो बार आपका और उनका ज़िक्र आधे-अधूरे शब्दों में ज़रीना बानो के नाम से किया है। बहुत याद करती है वह आपको।' कहकर गुलशन ज़रीना आपा की ओर देखने लगी।

और जैसे नींद से जाग उठी ज़रीना आपा! ज़रीना बानों का ज़िक्र सुनते ही हड़बड़ाकर बोल पड़ी-' गुलशन, उसका नाम है गुलशन बानो...., अरे...रे...रे... सारा बानो है!

'सारा बानो, कितना सुंदर नाम है आपा ... कहाँ है वह?' कहते हुए गुलशन कौर ने ज़रीना आपा की चुनरी को हल्के से यूँ लहराया कि चुनरी सर से उतर कर उसकी छाती पर आ ठहरी, जो धौंकिनी की मानिंद चल रही थी।

'वह अब जाने कहाँ खो गई है बिटिया, उसको तलाशते हुए मैं उस देश को छोड़कर इस देश में आई हूँ।'

'क्या मतलब.... आपा? आपकी सारा बानो क्या सच में खो गई है?'

'हाँ बिटिया, उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरी उम्र की कमर दोहरी हो गई है..... सात साल वहाँ पाकिस्तान की गली-गली की मिट्टी छानी, पर वह नहीं मिली....'

'सात साल से आप उसे ढूँढ़ रही हैं? अब वह कितने साल की हुई होंगी आपा?'

गुलशन कौर के आवाज़ में खलबली सी मची थी। सवालों का ताँता बढ़ता जा रहा था।

'यही कोई पंद्रह सोलह साल की हुई होगी मेरी बच्ची, कुछ तुझ जैसी, तेरी उम्र की! माँ का आँचल छूटा तो मैंने गोद में समेट लिया।पर अब, जब अल्लाह मियाँ के पास जाऊँगी तो क्या जवाब दूँगी उसकी माँ नूर बानो को ...!' कहते हुए ज़रीना बानो अपनी छाती पीटने लगी।

000

विभाजन के दौर के दर्द की लकीरें वक़्त बेवक़्त जब भी सालती हैं, तब वतन में भी बे-वतनी का अहसास ज़िंदा हो उठता है। जब खून पुकारने लगता है तब अपने लोग ज़मीन की जड़ों से उखड़ कर बेदर्द हवाओं के रुख के साथ हो लेते हैं। जैसे ज़रीना बानो अपनी पोती की याद की डोरी थामे अचानक अमृतसर आन पहुँची, बिना किसी सूचना के...! सुरजीत कौर उसे देख कर ज़र्द पत्ते की तरह सिहर उठी, जैसे बहार में ख़िज़ाँ की कोई आहट सुन ली हो। आँखों से नींद नदारद सी हो गई। एक अनजाना डर उसके मन के कोने में दुबक कर बैठ गया। वह ज़रीना बानो से आँखें चुराने लगी, उससे कतराने लगी। अक्सर सामना न हो इसलिए ज़्यादा वक़्त गुरुद्वारे में गुज़ारती। घर में रह जाते दो प्राणी, ज़रीना बानो, व गुलशन।

इस बात का एहसास ज़रीना बानो को भी हुआ।

000

तभी एक चरमराहट से दरवाज़ा आँगन के भीतर खुला और सुरजीत कौर गुरुद्वारे की सेवा से निजात पा कर घर लौटी। गुलशन कौर चाची को देख कर उठी और उसके हाथ से लंगर से लाए हुए प्रसाद के 'दोने' और खाने का सामान लेकर रसोई में जाते-जाते कहने लगी...

'चाची खाना परोस दूँ, आपा भी सुबह से भूखी बैठी हैं, सिर्फ चाय पर टिकी हुई हैं, और अपनी खोई हुई पोती सारा बानो के दर्द की गाथा बता-बता कर उदासीन हुए जा रही हैं।'

'हाँ गुलशन' बेटी, दो तसरियों में प्रसाद बाँटकर तुम दोनों खा लो। मैं वही खाकर आई हूँ।' कहकर सुरजीत कौर वहीं खटिया पर कमर सीधी करने के लिए लेटने लगी।

गुलशन ने खाना परोस कर लाने के पहले एक हल्की सी रजाई चाची के थके बदन पर पसार दी। चाची का मन उसे दुआएँ

देता हुआ नींद में गरूब होने लगा। आसादीवार के वेले गुरुद्वारे पहुँचने के बाद अब घर लौटी थी। दोपहर के दो-तीन बज रहे हैं, नींद तो आनी ही थी....!

पर ऐसा हो कर भी न हुआ। सुरजीत कौर ने आँखें तो बंद कर लीं, पर बंद आँखों में जो साये तैर आए उनसे उसका बदन सिहर उठा था। यह तो भला हो गुलशन का जो उस पर रजाई की तह चढ़ा गई, पर यादों के नुकीले भेदी जो आँखों की नींद चुग रहे थे उन्हें कौन समझाए! अतीत के साये सदा बनकर आज कानों में गूँजने लगे। सात-आठ साल पुराने अक्स, सिन्ध से हिन्द में आने की तैयारी वाले माहौल को फिर से ज़िंदा करने लगे।

000

'अरे सुरजीत बहन, हम सालों से पड़ोसी बन कर रहे हैं। एक दूसरे के माई-बाप ही हैं। बस अब निगोड़े वक़्त ने फासले बढ़ाकर हमें पछाड़ने की ठान ली है।'

'हाँ ज़रीना बेगम यह तो है अब के बिछड़े जाने फिर कब मिलें, मिलेंगे भी या नहीं, कौन जाने? सरदार ने तो कल सुबह-सवेर ही निकलने की ठानी है।पाकिस्तान का बॉर्डर लाँघकर भारत जाकर बस जाने की बात बनी है। सुबह हम दोनों ही निकल जाएँगे तुमसे भी शायद ही मिल सकें, इसे ही आख़िरी मुलाकात समझना।'

कह कर सुरजीत कौर ज़रीना बेगम के गले लगकर अपने आँसू कमीज़ की बाहों से सोखने लगी।

'नहीं नहीं सुरजीत, यूँ न कह, हमें मिलना है, बिछड़ना नहीं। तुम्हें मेरी एक अमानत अपने साथ लिए जानी है। इस वक्त मेरा यहाँ से हिलना मुहाल है-' 'सरताज' की बाँदी जो हूँ। अपनी मर्जी से जा नहीं सकती, पर मेरी गुलशन बानो को तो तू अपनी बना कर साथ ले जा सकती है।उसकी तो माँ नहीं है, अब तू ही उसकी माँ बन जा और मेरे जिगर के टुकड़ा अपने घर आँगन में जाकर रौंप देना। अगर जीवन में समय और मौक़ा दिया तो ज़रूर मिलेंगे। अब चलती हूँ ....!'

'पर ज़रीना बेगम... मैं हिंदू.. तू.....'

'अरे बस भी कर, कहा ना वह तेरी है। तू जो चाहे उसका कर। अपना नाम दे या नया नामकरण कर, उसे अपने साथ ले जा, या यहाँ मरने के लिए छोड़ जा, यह तेरी मर्ज़ी है, मेरी नहीं...' कहते हुए ज़रीना बानो हिरनी की चाल से घर के बाहर हवा की रफ़्तार से निकली..... !

और पलक झपकते रह गई सुरजीत कौर अपने ही घर में, सूनी दीवारों के बीच, एक गुदगुदाहट व एक लर्जिश भरा स्पंदन महसूस करते हुए। वह बेऔलाद थी, पर सीने में ममता नहीं थी, यह बात न थी। बस डर था कि जात पात की दीवारें कहीं उस रिश्ते को ऊँच नीच की तराज़ू में न तोल बैठे। मज़हब की वेदी पर गुलशन बानो के मासूम बचपन को कहीं कोई आँच न आ जाए।

माहौल ही ऐसा था कि .....!

सिख और मुसलमान इक दूजे के कट्टर बैरी हो गए थे। बात-बात पर तलवारे चीखती और दर्द मौन सा होकर सिसकता रहता उन सने हुए खून के धब्बों को देखकर, जो एक ही रंग के थे..... लाल! सभी का खून लाल है तो क्यों किसी के दर्द से खून में उबाल नहीं आता? क्यों दर्द को दीमक लगी है कि देख कर भी किसी का दिल नहीं पसीजता? क्यों मानवता अपने अर्थों को अनाथों की ओर धकेल रही है।

000

खाट पर लेटी सुजीत जानती थी कि रज़ाई की तह तो सिर्फ तन को ढाँप रही थी, उसका मन तो कल के फसादों की नुकीली यादों से तार-तार हुआ जा रहा था.....!

'अरी सुरजीत कौर, तू क्यों सोई है? दिन की रोशनी को रात की कालिख समझ बैठी है क्या? उठ, तेरे आँगन में उजाला अब भी बाकी है। सारी की सारी तारीकियाँ मैंने अपने आँचल में समेट ली हैं!' कहते हुए उसने दर्द भरे आवाज़ में गुलशन कौर की ओर निहारते हुए एक आदेश दिया....!

'अरे बेटा गुलशन, तीन तसरियों में खाना बाँट लेना। तेरी अम्मी सुरजीत भी हमारे साथ खाएगी। आज का दिन मिलन का जश्न है, धरती आसमान से मिल रही है! हाँ...हाँ, आजा तू भी आजा। सुरजीत तू भी उठ ..!'

अब गुलशन कौर सोच के दरिया में बहने लगी। वह हैरानी से ज़रीना आपा के कहे लफ़्ज़ों की उधेड़बुन में उलझ गई जिसमें प्यार भी था, दुलार भी, दर्द भी और दवा भी! सुरजीत कौर से भी न सहा गया न रहा गया, उठकर खाट पर बैठी और भीगी पलकें उठाकर ज़रीना बानो की ओर देखने लगी। गहराई तक उसकी आँखों में झाँकते हुए यह जानने की कोशिश करने लगी थी कि ज़रीना बानो क्या वाकई मिलन का जश्न मनाने की बात कर रही है या उसके बाद की जुदाई का ऐलान कर रही है? धरती अंबर के मिलन की बात वह चाह कर भी समझना नहीं चाहती थी।

क्योंकि.....!

ज़रीना बानो की पोती गुलशन बानो को जब दोनों पति-पत्नी अपने साथ अमृतसर ले आए तो सरदार ने सभी से कहा कि वह उनके भाई की बेटी है, गुलशन कौर। क्योंकि सभी जानते थे कि उनकी कोई औलाद नहीं हुई और फिर गुरुद्वारे में नामकरण के ऐलान से उनके सूने बंजर सीने में जैसे शबनम की नमी बरसने लगी। ममता का आँगन फलने-फूलने लगा, गुलशन को सींचते-सींचते उस खुशबूदार सुमन की महक उनके मन में रच-बस गई।

'मैं आपको 'अम्मी' कह कर पुकारूँगी और उन्हें बाबा कह कर'- यह 'चाची' शब्द मुझे अच्छा नहीं लगता।' गुलशन कौर ने ज़िद की। उम्र भी तो ऐसी थी, सात-आठ साल की।

'नहीं तुम मुझे चाची ही कहोगी। तुम्हारी आवाज़ में मुझे चाची शब्द 'अम्मी' जैसा ही लगता है। सरदार को भले तुम 'बाबा' बुलाओ'। सुरजीत ने तर्क देकर अपने ढंग से गुलशन को मना लिया। कारण था... जो दिल में डर बनकर समा गया था।

डर यही था.....!

कभी न कभी तो हालात बदलेंगे, समय बदलेगा और खून अपना रंग दिखाएगा। अगर ऐसा हुआ तो गुलशन फिर से ज़रीना बानो के घर का गुलशन बनी, तो वह यक़ीनन खिज़ाँ के सूखे पतों की तरह चरमरा जाएगी।

और फिर मौसमों की तरह दिन, महीने साल बीतने लगे। तीन साल के बाद गुलशन के बाबा परलोक पधारे और सुरजीत ने गुलशन की सिसकियों को सीने में संजोया, उसे दुगना प्यार दुलार देकर वह गुरु की शरण में आन बसी। गुरुद्वारे को दूसरा घर

बना लिया। दिन रात सतगुरु की सेवा उसकी आराधना बन गई। यह देखकर पंचों ने गुरुद्वारे में ही उसे एक कमरा दे दिया, जहाँ दोनो माँ-बेटी मुनासिब महफूज़ियत के साथ जीवन जीने लगीं। जीवन की धूप-छाँव के सायेदार पलों के बीच गुलशन भी अब बचपन से जवानी के चौखट पर आ खड़ी हुई। सोलह साल की होते ही कॉलेज में दाखिला ले लिया था।

और एक दिन अचानक.....!

ज़रीना बानो का खत सुरजीत कौर के नाम गुरुद्वारे के पते पर मिला कि वह उससे मिलने कुछ सिखों के साथ उसी गुरुद्वारे में आ रही है। सुरजीत की सेवाओं की महक किसी हद की मोहताज न थी और अक्सर उसकी चर्चा अमृतसर के उस गुरुद्वारे के साथ जुड़ी रहती। ज़रीना बानो का दिल गवाही देता रहा कि यही उसकी गुलशन बानो की माँ है।

0

भूतकाल के गलियारों से होती हुई सुरजीत कौर की यादों की परछाइयाँ उसे वर्तमान में ले आईं। जरीना बानो की आवाज़ एक खुशनुमा खबर की तरह हवा की तरंग बनकर लहरा रही थी। वह उठकर खाट पर बैठी और ज़रीना बानो की ओर भीगी पलकों से देखती रही।

ज़रीना बानो ने एक शोख मुस्कान के साथ खाने की ओर इशारा किया तो सुरजीत को जैसे होश आया।

'गुलशन बेटी रोटी तो ले आई हो पर दाल भीतर ही भूल आई हो। क्या अपनी आपा को रूखी रोटी परोस दोगी?' कहते हुए सुरजीत कौर अपनी खाट से उठकर ज़रीना के बगल में बैठ गई।

'अरी दइया...'' कहते हुए गुलशन कौर रसोईघर की तरफ भागी।

'सुरजीत अब चलो, निवाले अदला-बदली करो और जश्न मुबारक को अंजाम दो।' कहते हुए ज़रीना बानो ने पहला निवाला दाल रोटी का गुलशन कौर के मुँह में दिया और दूसरा सुरजीत कौर के मुँह में डाला। सुरजीत कौर और गुलशन ने भी वही रस्म निभाई। इस खुशी के सामने दर्द की लंबी चौड़ी फ़सीलें बौनी हो गईं!

सभी के चहरों पर मधुर मुस्कान टहलने लगी।

'अरी सुरजीत एक बात तो बता, जितना सुंदर नाम 'गुलशन कौर' तूने इसका रखा है उसके सामने तो इसका हुस्न भी फीका पड़ रहा है।'

'हाँ ज़रीना बेगम, इस पार के गुलशन का रंग उस पार की गुलशन के हुस्न के सामने फीका ही पड़ना है। उस पार के इस गुलशन की खुशबू मेरी साँसों में कुछ यूँ बसी है कि अब लगता है कि इसके बिना भी क्या कोई जीवन होगा?' और वह अपनी कही हुई बात का रंग ज़रीना बानो की आँखों में देखना चाह रही थी।

'भाग्यशाली हो सुरजीत कौर, इस की परवरिश में तुमने अपने वाहगुरु की कल कल बहती गुरबाणी भी घोल दी है। हाँ, गुलशन कौर सच में तेरे आँगन का फूल है, जो हर मज़हब से परे सच की पनाह में पनप रहा है।' कहकर ज़रीना आपा ने गुलशन कौर के सर पर स्नेह से हाथ फेरा।

'जरीना बानो... मैं.... मैं....' कहकर सुरजीत रुआँसी हो गई।

'अरे जश्ने मुबारक के बाद ये आँसू नहीं सुहाते पगली। यही वाहगुरु तुम्हारा मालिक है। मैं अगले हफ्ते 'सरताज' की पनाह में चली जाऊँगी। तुम गुलशन कौर के साथ, खुश रहो आबाद रहो।' कहकर ज़रीना बानो ने सुरजीत को गले लगा लिया।

'दादी जान... आप कुछ दिन और रुक जाएँ हमारे पास...!' गुलशन कौर के इस कोमल सम्बोधन ने ज़रीना बानो को गद्‌गद् कर दिया। उस सम्बोधन में संबंधों की महक थी, और अपनाइयत का अहसास था, जिसे वह जीना चाहती थी, संजोना चाहती थी।

उससे अब रहा न गया. अपनी खटिया से उठकर गुलशन कौर को गले लगा लिया कुछ ऐसे जैसे कोई लहर किनारा छूने के लिए आमादा थी। गुलशन भी अपने दादी आपा के गले में बेल की मानिंद लिपट गई, पता ही न चला कि लहर किनारे से मिल रही है या किनारा लहर से...!

'मैं बहुत खुश हूँ कि विभाजन देशों का हुआ है, दिलों की लकीरें अब भी जुड़ी हुई हैं...!' कहते हुए सुरजीत कौर ने आगे बढ़ाकर दोनों को अपनी बाहों में समेट लिया।

***

लघु कथा

मूर्तिकार

सुरेश सौरभ

रात। मूर्तिकार के घर के पिछवाड़े कुछ खटर -पटर हुई। वह चौंक कर जग गया। कुछ मूर्तियाँ आपस में बतिया रही थीं। एक बोली- सारा दोष जनता का है। अगर जनता ही एकजुट हो जाए तो हमें कोई तोड़ने -फोड़ने की कोई जुर्रत न करे। दूसरी बोली- जनता का नहीं नेताओं का दोष है। नेताओं के उकसाने पर ही ऐसा होता है। तीसरी बोली-चाहे जो हो हमें अपना अस्तित्व बचाना ही होगा। चौथी कातर स्वर में बोली- परमात्मा ने इंसान बनाए। इंसानों ने मूर्तियाँ बनाईं। जब इंसान ही तोड़- फोड़ कर हमारा वजूद खत्म करने पर तुले हैं, तो फिर ऐसे मतलबी इंसानों के सहारे हम क्यों रहे। फिर सारी मूर्तियाँ एक साथ भागने लगीं। दौड़कर मूर्तिकार घर के पीछे आया। तब तक सारी मूर्तियाँ बहुत दूर निकल चुकीं थीं। वह चिल्लाता रहा, मुझे छोड़ कर न जाओ। मेरे बीवी- बच्चों पर रहम करो। पर मूर्तियों ने उसकी एक न सुनी। सब चलीं गईं। मूर्तिकार हाथ मलता हुआ,''कभी देश की राजनीति को कोसता तो कभी मूर्ति तोड़ने वालों को। अब वह ईश्वर से यह प्रार्थना कर रहा था, हे! संसार के सबसे बड़े मूर्तिकार मुझ पर कुछ तरस खा।अपनी कुछ ''उदण्ड'' मूर्तियो को सुधार ले।

***

संपर्क: निर्मल नगर लखीमपुर खीरी उ. प्र. पिन-262701
ईमेल: sureshsaurabhlmp@gmail.com
मोबाइल:7376236066

तवे पर रखी रोटी

डॉ.विभा खरे

चूड़ियों की खन-खन, वेलन की गति के साथ सुर-ताल मिला रही थी। एक रोटी चकले पर नाच रही थी तो दूसरी काले तवे के ऊपर पड़ी फूल कर कुप्पा हुई जा रही थी। मेरा दिमाग हमेशा की तरह घड़ी की सुईयों से दस गुना तेज़ रफ़्तार से भाग रहा था। और माथे से सिंदूर को साथ लेकर बहती पसीने की धार बेलगाम गर्दन से नीचे बहती हुई कहीं वक्षस्थल में विलय होती जा रही थी। कि....धड़ाम्!!! ..... बगल के कमरे से ज़ोर से कुछ गिरने की आवाज़ आई। कानों की क्षमता को बढ़ाने के लिए हाथों की चूड़ियाँ यंत्रवत् वहीं थम गई। मैं भागती हुई कमरे तक पहुँची। कमरे के दरवाज़े पर लुढ़कता गिलास अपने अंदाज़ में अपना पानी धीरे-धीरे कारपेट के हवाले कर रहा था। कुछ दूर पर थाली औंधी पड़ी थी। दाल-सब्ज़ी सब आपस में गुत्थम गुत्था हो गए थे। चावल तो लगभग आधे फर्श पर छितरए पड़े थे और कारपेट के ज़रा पास ही अचार से सना तीन चौथाई रोटी का टुकड़ा लावारिस सा पड़ा था।

सामने सोफे पर बैठा राकेश गुस्से में धड़ाधड़ टी.वी. चैनल चेंज करने में लगा था। पर दो मिनट बाद ही रिमोट भी हैंग हो गया। शायद सेल वीक होंगे और फिर एक ज़ोरदार आवाज़ के साथ उसने रिमोट भी सामने वाली दीवार पर दे मारा और गुस्से में फनफनाता हुआ बालकनी से होता हुआ बाहर निकल गया। उसके जाते ही टी.वी. पर पुरानी हिन्दी फिल्म का गीत 'बहारों फूल बरसाओं मेरा महबूब आया है.....' बजने लगा.... और बेवजह ही एक अनापेक्षित हँसी मेरे होठों पर तैर गई।

राकेश के जाते ही घर में जैसे जान आ जाती है। वही मंद-मंद मुस्कुराती मेरी पसंदीदा बैगनी रंग की दीवारें...वही खिलखिलाते बरामदे में लगे मेरे पसंदीदा गुलाब के फूल और वही हँसती चहकती मैं।

राकेश कब से ऐसे हैं, मैं नहीं जानती; क्योंकि मैंने शुरू से ही उसको इसी गर्म मूड में देखा हैं।

हमारी शादी 4-5 प्रकाण्ड पंडितों से कुण्डली मिलान करवा कर और खूफिया सूत्रों से पूरी तरह जाँच-पड़ताल करवाने के बाद ही तय की गई थी। मुझे याद है कि माँ हर 5वें दिन एक नए पंडित के पास मेरी और राकेश की कुण्डली जँचवाने पहुँच जाती थीं। अगर वो पंडित पिछली बार की तुलना में 1-2 गुण ज़्यादा गिनवा देता तो उसे प्रकाण्ड पंडित का दर्जा और अच्छी-खासी दक्षिणा मिल जाती। वहीं कुण्डली में 2-3 दोष बताने वाला पंडित अनाड़ी, धूर्त और अज्ञानी करार दिया जाता। यूँ लगता था कि माँ पहले ही राकेश को मेरे लिए फाईनल कर के बैठी थीं। और बार-बार कुण्डली मिलान करवाना मेरे लिए एक प्रलोभन मात्र था।

जल्द ही माँ ने पूरे परिवार वालों, नाते-रिश्तेदारों को आश्वस्त कर लिया था कि राकेश और मैं 'मेड फॉर ईच अदर' हैं। और हमारा विवाह अवश्य ही होना चाहिए। माँ राकेश को लेकर इतनी अति-संतुष्ट क्यों थीं ये मुझे हमारी पहली ऑफिशियल मुलाकात के दौरान पता चला। राकेश दिखने में एक हृष्ट-पुष्ट और बहुत ही आकर्षक युवक थे। हल्की नीली शर्ट

साहित्यक पत्रिका 'स्वीकृति' के संपादन के साथ डॉ. विभा खरे की कहानी, लेख, कविता, परिचर्चा आदि का 1986 से देश के सारे पत्र- पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशन हुआ है। सन् 1996 में अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति उ0प्र0, मथुरा द्वारा सम्मानित स्वतन्त्र लेखिका / पत्रकार विभा जी की कहानियों का प्रसारण आकाशवाणी मथुरा, आगरा, झाँसी, रामपुर, छतरपुर से हुआ है।
संपर्क:विभावरी, जी-9, सूर्यपुरम, नंदनपुरा, झाँसी (उ0प्र0)-284003
ईमेल: vibhakhare12345@gmail.com
मोबाइल: 094150-55655

और ब्लू डेनिम जीन्स में, गोरे चौकोर चेहरे पर छितराई हल्की दाढ़ी वाले उस नवयुवक को मैं भी देखती ही रह गई थी।

हमें कुछ आधे घण्टे के लिए रेस्टोरेंट के कोने की एक टेबल पर अकेला छोड़ दिया गया था और उस आधे घण्टे में से 35 मिनट वह बोलता रहा और 40मिनट तक मैं उसे एकटक देखती रही थी।

उसने तमाम तरह की बातें कर डालीं जैसे पॉलिटिक्स, स्पोर्ट्स, एजूकेशन, पोपुलेशन, ऑफिस, जॉब और पता नहीं क्या-क्या। उसमें से सबसे ज़्यादा बार ज़िक्र राहुल द्रविड़ और सचिन तेंदुलकर का आया; जिससे मुझे समझ में आता है कि शायद क्रिकेट में राकेश की खासी दिलचस्पी है। हालाँकि टी.वी. के सामने होने पर उसके हाथ एक चैनल पर 5 मिनट से ज़्यादा नहीं टिकते। इससे होने वाली इरीटेशन से बचने के लिए मैं कभी उसके साथ टी.वी. देखने नहीं बैठती और विस्तर के अपनी साईड वाले तकिया को सिर के ऊपर रख कर सो जाती हूँ। हालाँकि नींद मुझे तभी आती है जब राकेश टी.वी. ऑफ कर देता है। टी.वी. ऑफ होने और राकेश के खर्राटे शुरू होने के बीच के वो 10 मिनट मेरे लिए जैकपॉट की तरह होते हैं, जिनको लपक कर अगर मैं नींद की आगोश में प्रवेश पा गई तो ठीक वरना तो मुझे अपनी नींद अगले दिन उसके ऑफिस जाने के बाद ही पूरी करनी होती है।

शादी की पहली रात ही मुझे आभास हो गया था कि राकेश मुझे अपनी जीवन-संगिनी नहीं, सिर्फ अपनी पत्नी मानता है। पर मुझे तो राकेश से उसी दिन प्यार हो गया था जब उसने उस रेस्टोरेंट में मेरे लिए मेरी फेवरिट चॉकलेट आईस-क्रीम ऑर्डर की थी। उसकी बातें सुनने में मैं ऐसी खो गई थी कि मेरी आईस-क्रीम पूरी पिघल गई थी और राकेश ने चुटकी लेते हुए कहा था....'तुम पहले ही बता देतीं, मैं चॉको-शेक आर्डर कर देता!'..... मैं अपनी बेवकूफी पर शर्मा गई थी ओर राकेश ठहाका लगा कर हँस दिया था। मुझे उसके गुलाबी होठों के बीच चमचमाती सफेद बतीसी अभी भी ज्यों की त्यों स्मरण है। बाद में पता चला कि राकेश अमूमन कम ही हँसता है। उसकी खुशी तब ही देखने को मिलती है जब वो अपने ऑफिस के दोस्तों के बीच किसी पार्टी में हों या फिर किसी खूबसूरत मार्डन महिला के सामने। पर मुझे जलन नहीं होती। मैं चुपचाप राकेश की वो चमकीले दाँतों वाली मुस्कान अपने मन में रिकार्ड करती रहती हूँ।

राकेश ने शादी से पहले ही मुझे आगाह कर दिया था कि पुरूष के दिल का रास्ता उसके पेट से होकर गुज़रता है। माँ ने मेरे अनाड़ीपन को भाँपते हुए मुझे कुकरी क्लासेज़ ज्वाईन करवा दी थीं। मुझे हैरानी होती है कि कहाँ मुझे किचन की तरफ देखना भी पसंद नहीं था और अब मैं अमेरिकन, इतालवी, चाइनीज़, साऊथ इंडियन, पंजाबी.... सभी तरह के पकवान बनाने में सक्सपर्ट हो गई थी। मैं कुछ भी नया बनाती थी तो माँ तुरंत राकेश को फ़ोन करके मेरी नई डिश के लज़ीज़ होने का प्रमाण देती ओर मैं भीतर ही भीतर गुलाबी शर्म और अभिमान से दोहरी हो जाती। मुझे यकीन हो गया था कि अब मैं राकेश के दिल तक ज़रूर पहुँच जाऊँगी।

हालाँकि शादी के बाद मुझे किचन में बहुत मशक्कत करनी पड़ी। 36 तरह की डिशेज़ बनाना आना अलग बात है और आपके पति को वो पसंद आना अलग बात। मैंने हर तरह के प्रयोग कर के देख लिए..... कभी मसाले बदले, कभी तेल, कभी क्राकरी का सेट तो कभी..... राकेश का मूड..... पर ऐसा एक दिन भी नहीं गया जब राकेश ने मेरे बनाए खाने में नुक्स ना निकाला हो।....ये शक्कर ज़्यादा मीठी है....इस रिफाइंड तेल की क्वॉलिटी अच्छी नहीं है..... चटनी में पड़ा पुदीना बासा है....या फिर कुछ नहीं तो....तुम इतने भारी चम्मचे क्यों लाती हो???

तकरीबन 150 तरह की अतार्किक बुराइयों के बाद मैं समझ गई थी कि मेरी हर चीज़ में नुक्स निकालना राकेश की आदत है और हर बार खून के घूँट पीकर भी एक और प्रयास करना मेरी नियति।

हम मार्केट साथ में कम ही जा पाते हैं। परचून का सामान या सब्ज़ी भाजी मैं खुद ही पड़ोस के सुपर मार्केट से जाकर ले आती हूँ और सन्डे को राकेश पूरा दिन अपने दोस्तों या क्रिकेट मैच के साथ बीताता है। उस दिन राकेश का मूड अन्य दिनों की अपेक्षा काफी हल्का होता है और मैं कोई भी वजह खड़ी नहीं करना चाहती उनके चेहरे की वो हल्की मुस्कान छीनने की, इसलिए उसके सामने कम ही आती हूँ। अपने लिए शॉपिंग करने वो अक्सर मेरे साथ ही जाता है। क्योंकि राकेश का कहना है कि मैं बहुत बढ़ा-चढ़ा कर उसके सौंदर्य की तारीफ़ करती हूँ, जिससे उसे 'सुपरमैन' जैसी फीलिंग आती है। हालाँकि मैं तो वही कहती हूँ, जो मुझे शोरूम की उन चटकीली शर्टों में लिपटे राकेश को देखकर महसूस होता है।

मेरी खुद की शॉपिंग मुझे अकेले ही करनी पड़ती है। क्योंकि राकेश को लगता है कि चूँकि मैं एक हाऊसवाईफ हूँ, इसलिए तमाम साड़ियाँ खरीद कर मैं फिज़ूलखर्ची करती हूँ। सच बात तो ये है कि मुझे नए-नए कपड़े खरीदने का बहुत शौक है। पर अब मैंने अपना यह शौक बहुत सीमित कर दिया है। क्योंकि पहला कारण यह है कि मैं बाहर कम ही आती जाती हूँ और दूसरा यह कि मुझे देखने, तारीफ़ करने वाला कोई है ही नहीं। राकेश को तो शायद यह भी नहीं मालूम होगा कि मेरे दाएँ होंठ के ऊपर एक काला तिल है, जिस पर कॉलेज टाईम में ना जाने कितने लड़के फिदा रहते थे....या फिर शायद मालूम हो और यह बताना उसकी आदत में शुमार नहीं होगा।

ऑफिस से घर लौटने के बाद राकेश कम ही बोलता है। थकान उसके हर एक अंग से टपकती दिखती है। मैं उसकी मनपसंद कुटी अदरक वाली कम शक्कर ज़्यादा दूध वाली चाय बना कर देती हूँ तो उसकी जान में जान आती है। थोड़ी देर बाद वो टी.वी. के सामने से उठकर बाथरूम तक भी इतने धीमे कदमों से जाता हैं कि मुझे उसपर फिर से प्यार आ जाता है। फ्रेश होकर आने के बाद उसकी नज़रें बाथरूम से ही टी.वी. रिमोट को ढूँढ़ती हुई बाहर तक आती हैं। पहले मैं हमेशा उससे पूछा करती थीं कि आज मैं डिनर में क्या बनाऊँ ....पर पिछले 2 साल में वो एक बार भी मेरे इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूँढ़ पाया। इसलिए अब मैं खुद ही मौसमी सब्ज़ियों के मुताबिक बदल-बदल कर नई-नई डिशेज़ बनाती रहती हूँ। अगर वो चुपचाप खाना खा लेता है तो मैं समझ जाती हूँ कि फलाँ सब्ज़ी /

डिश राकेश को पसंद आई है। डिनर के दौरान वो आधा-पौना घंटा ही मुझे अपनी मौजूदगी का एहसास करवाता है। पिछले 13 घण्टों से मेरे मुँह पर जड़ा ताला खुल जाता है और मैं उसे दिन भर की ज़रूरी या गैरज़रूरी घटनाओं का ब्योरा देने लग जाती हूँ। मेरी ज़्यादातर बातों का जवाब वे 'हाँ','नहीं' या 'हम्म्म्' से ही देता है। पर मैं खुश होती हूँ कि हमारे बीच किसी तरह का संवाद तो हुआ।

डिनर खत्म करने के बाद से नींद की आगोश में खोने तक का राकेश का समय बीबी को नहीं.... टीवी को ही नसीब हाता है। रिमोट के बटनों से लड़-झगड़कर जब वो सो जाता है तो मैं घंटों तक उसे देखती रहती हूँ। बिस्तर पर तिरछे होकर, तकिया पर औंधे लेटकर, आधा मुँह खोलकर जब वो गहरी नींद में सोया होता है, तो वो किसी मासूम बच्चे जैसा दिखता है। मैं इस तरह उसे सदियों तक अपलक देख सकती हूँ। मैं एकाध बार प्यार से उसका सिर उठा कर अपनी गोद में रख लेती हूँ और उसके मुलायम बालों में अपनी उँगलियाँ चलाने लगती हूँ। उसकी मुँदी आँखों की पुतलियाँ किसी अनजान सपने की तलाश में निरंतर चल रही होती हैं। कभी-कभी तो वो भी लाड़ में आकर अपनी दोनों बाहें मेरी कमर के चारों ओर लपेटकर, कस कर मुझसे चिपट जाता है...तो कभी-कभी मुझे झिटककर दूर फेंक देता है। मैं समझ जाती हूँ कि उसे नींद आ रही है और चुपचाप अपने साईड वाले कोने से चिपक कर सोने की कोशिश करने लगती हूँ।

हमारे बीच हज़ारों ऐसी बातें हैं जो हमें एक-दूसरे से अलग करती हैं। जो चाहें तो हमें एक-दूसरे से तोड़-मरोड़ कर अलग खड़ा कर सकती हैं। पर इन दो सालों के साथ के बाद मैं समझ पाई हूँ कि वो बुरा इंसान नहीं है, बस मुझसे बहुत अलग है। और समानता की बात तो वैसे भी किसी कुण्डली में नहीं लिखी होती। बस कभी-कभी उसको प्यार करते-करते एक प्रश्न सिर उठा देता है.....कि वो मुझे क्या समझता है, एक इंसान या सिर्फ एक बीवी?

किचिन से धुँआ उठता दिख रहा है। लगता है तवे पर रखी रोटी जल गई है।

***

ग़ज़लें

सुभाष पाठक 'ज़िया'

इश्क़ अच्छा है फ़क़त ख़्वाबों ख़यालों के लिए,
दिल जलाना पड़ता है यारो उजालों के लिए,
हाथ गीता पर क़सम उसकी ज़ुबाँ पर है अभी,
ये मुनासिब वक़्त हैं सारे सवालों के लिए,
वो लिए बैसाखियाँ चढ़ता गया सब चोटियाँ,
और क्या शर्मिंदगी हो पाँव वालों के लिए,
इन फ़ज़ाओं में हवा का होना लाज़िम है बहुत,
तेल ही काफी नहीं रोशन मशालों के लिए,
अपने साये पर भी शक करने लगा हूँ आजकल,
शुक्रिया ऐ दोस्त तुझको तेरी चलों के लिए,
ऐ 'ज़िया' उसको विरासत में मिला था जो मकाँ,
रात उसने बेच डाला मय के प्यालों के लिए,

ऐ मेरी जान टूट जाने दे,
मेरे अरमान टूट जाने दे,
रोकता क्यूँ है आँख में आँसू,
ग़म की चट्टान टूट जाने दे,
देखना है मैं मरता हूँ कि नहीं,
सारे इम्कान टूट जाने दे,
सोच ले आइना था मेरा दिल
मत हो हैरान टूट जाने दे,
टूट जाने का भी है एक मज़ा,
तू मेरी मान टूट जाने दे,
तू अगर है फ़क़ीर तो क्या ग़म,
घर का सामान टूट जाने दे,
वो 'ज़िया' है ये भी भरम,
अब तो नादान टूट जाने दे,

किसी से आस तुझको गर नहीं है
तो दिल के टूटने का डर नहीं है,
उसे रोता हुआ देखा किया मैं
कहूँ कैसे कि दिल पत्थर नहीं है,
यक़ीं जितना किया है मैंने तुझ पर
यक़ीं उतना मुझे ख़ुद पर नहीं है,
ये दिल क्या चीज़ है मैं जान दे दूँ,
तेरी उल्फ़त से कुछ बढ़कर नहीं है,
किया है क़त्ल उसने इस अदा से
कि ख़ूँ का दाग़ दामन पर नहीं है,
हुआ है हादसा अंदर कहीं कुछ,
जो हलचल जिस्म के बाहर नहीं है,
कहाँ जाकर 'ज़िया' रोयूँ ग़मे दिल,
कि सहरा में कोई भी दर नहीं है,

राज़ दहलीज़ से सड़कों पे न आया होता,
तुमने दरवाज़े पे गर पर्दा लगाया होता,
मान लेता कि हक़ीक़त में सितारा है वो,
रास्ता मुझको अंधेरो में दिखाया होता,
गर शिकायत थी तुझे दूर चला जाता मैं
यूँ ख़फ़ा होने से अच्छा था बताया होता,
फिर वफ़ा होती जफ़ा होती भले होता कुछ
कोई रिश्ता तो मुहब्बत से निभाया होता,
फ़ख़्र से लेता जहाँ नाम तुम्हारा लेकिन,
ख़ूँ सड़क पे नहीं सरहद पे बहाया होता,
ज़िंदगानी में उजाले ही उजाले होते,
इक दिया दिल में मुहब्बत का जलाया होता,
क़ीमत ए वक़्त समझ लेता 'ज़िया' पहले तो,
क़ीमती वक़्त न बातों में गवाया होता,

संपर्क:
ईमेलः subhashpathak817@gmail.com

नम्बर प्लेट

राजेश झरपुरे

मैं और सहकर्मी रामभरोसे ऑफ़िस से निकलकर रोड़ तक आए ही थे कि एक तेरह-चौदह साल की लड़की स्कूटी से तेज़ रफ़्तार से रामभरोसे के बिल्कुल नज़दीक से गुज़री। वह मेरे दाईं ओर चल रहे थे। उनके दाहिने हाथ में टिफ़िन बैग था। वह स्कूटी से टकराकर दूर जा गिरा। रामभरोसे बाल-बाल बचे उससे भी कम बाल-बाल लड़की बची। सामने से दो लड़के मोटर बाईक पर आ रहे थे। उन्होंने रॉंग साईट से लॉरी को ओवरटेक किया। लड़की की स्कूटी और लड़के की बाईक एक-दूसरे का किनारा काटती हुई तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ी थीं। लड़की को एहसास हो चुका था, उसकी स्कूटी से किसी व्यक्ति के हाथ में लटका टिफ़िन बैग टकराकर दूर जा गिरा और वह बहुत थोड़े से अन्तर से ठुकने से बच गया। उसे यह भी एहसास हो चुका था कि मोटरबाईक का किनारा उसकी स्कूटी पर रगड़ का निशान छोड़ चुका हैं पर वह ख़ुश थीं। उसने बड़ी कुशलता से रफ़्तार से समझौता किए बगैर संकट को पार कर लिया। लड़का भी ख़ुश होगा। उसने बहुत ही बारीक कट मारते हुए अपने आपको हैवी ट्रैफिक से सुरक्षित निकाल लिया। जिस तरह उसने तेज़ रफ़्तार से मोटर बाईक निकाला, उससे ऐसा जान पड़ता था कि वह तेज़ गति से ही चलने का अभ्यस्त है और इस तरह ट्रैफिक में गाड़ी चलाना उसकी आदत में शुमार है।

चन्द पलों के लिए रामभरोसे सहम गए। उनके मुँह से आवाज़ नहीं निकली। जैसे उन्होंने मौत को अपने नज़दीक से गुज़रते देखा। मौत जिस तरह अपने पीछे सन्नाटा छोड़ जाती है, ठीक वैसा ही सन्नाटा हम दोनों के बीच पसरा हुआ था। मौत का ताडंव दिखा चुकी लड़की हमारी आँखों से ओझल हो चुकी थीं। हम रोज़ इसी तरह ऑफ़िस से लौटते हुए अपने घर के लिए साथ निकलते। आज अचानक घटे इस हादसे से मैं भी हक्का-बक्का था। बहुत देर लगी हमें अपनी यथास्थिति में लौटने में। रामभरोसे ने ढेर सी उसाँस भरी। उसका गुस्सा सातवें आसमान पर था। उसने गले को खखारते हुए नथुने से टकराए और फैफड़ों में जा बसे धुएँ को कफ़ के साथ बीच सड़क पर थूक दिया। बाएँ हाथ की तर्जनी से होंठ को साफ़ करते हुए कहा 'थू हैं इस हरामज़ादी पीढ़ी पर। न छोटे-बड़े का मान, न राह चलने का सलीका। बिल्कुल इनडिसिप्लन्ड...।'

'जाने दे यार...' कहते हुए मैंने सड़क के किनारे पड़ा टिफिन बैग उठाकर उन्हें थमा दिया।

'काश! मेरी पकड़ में आ जाते तो दो थप्पड़ रसीद करता फिर जाने देता।'

गुस्से में उसका चेहरा तमतमा उठा था।

'इसमें उनका दोष नहीं। यह पीढ़ी अपने समय से बहुत आगे जी रही हैं।'

मैंने स्थिति को सहज बनाने का प्रयास किया।

'समय से आगे जाने का मतलब यह तो नहीं कि संस्कार विहिन हो जाए। नियम-कानून ताक पर रख दे। सड़कों पर चलते हुए लोगों को हवा में उड़ा दे।'

राजेश झरपुरे की प्रकाशित कृतियाँ हैं- तुम नहीं रहे, दिहाड़ी में प्यार (कविता संग्रह), विरासत, चिकटबर्री का जंगल, पोस्टकार्ड व अन्य कहानियाँ, कहाँ है कुशल, रोशनी पर अँधेरे, दराज़ में रखीं पेंसिलें व सावधान! दगान होने वाली है (कहानी संग्रह), वह आगे निकल गया...,फाँस..., और कबिरा आप ठगाइए (उपन्यास)। प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ /कहानियाँ प्रकाशित ।कुछेक कविताओं और कहानीयों का पंजाबी (गुरूमुखी), उड़ीया व अन्य प्रान्तीय भाषायों में अनुवाद।
संपर्क: सुन्दर देवरे नगर, लेन नं 9, वार्ड नं. 40, तात्या टोपे वार्ड, पोस्ट एवं जिला-छिन्दवाड़ा, मप्र 480-001
ईमेल: rajeshzarpure@gmail.com
मोबाइल: 9425837377

उसकी क्रोधाग्नि भड़क चुकी थी। मेरे लिए भी यह सामान्य घटना नहीं थी।

हालाँकि प्रतिदिन सुबह अखबार का आँचलिक पृष्ठ उठाते ही मैं ऐसी घटनाओं से रूबरू होता हूँ पर आज अपने बहुत नज़दीक गति से होने वाली दुर्गति का एहसास कर सिहर उठा था। रामभरोसे कुछ अधिक सहमा हुआ था। वह हादसे की जद में था।

मैंने स्थिति को सामान्य बनाने की कोशिश करते हुए कहा '...प्रिय मित्र! यह उन्नीस सौ पंचानवे और उसके बाद की पैदाईश हैं। इससे कम स्पीड में ये चल ही नहीं सकते। उनके जीने और मरने का स्टाइल ही अलग हैं। भगवान् का लाख-लाख शुक्रिया अदा करो कि तुम बच गए। अब उन्हें कोसना छोड़ो। हम उनका कुछ अच्छा या बुरा नहीं कर सकते। उन्होंने अपने अच्छे और बुरे दोनों के मापदण्ड़ पहले से तय कर रखे हैं।'

'तुम मुझे बेवकूफ समझते हो...' उन्होंने मुझे गुस्से से तरेरते हुए कहा।

'नहीं ! पर मैं जो कह रहा हूँ वह एकदम सच हैं...' कह कर मैं चुप हो गया।

मुझे मौन देख रामभरोसे ने अपने आपको कुछ संयमित किया लेकिन उसी उपेक्षा के भाव से उलाहना देते हुए बोले '...तुम यह क्यों नहीं कहते उन्नीस सौ पंचावने और उसके बाद पैरन्ट बने लोगों को सही ढंग से औलाद पैदा करना ही नहीं आया। क्या अन्तर हैं इनमें और आवारा जानवरों में। संस्कार जैसा कोई गुण तो इनके जीवन में देखने को नहीं मिलता। आख़िर क्या सोचकर पैदा किया होगा इनके माँ-बाप ने। गुण और मूल्य जैसी कोई चीज़उनके पास ही नहीं होगी, तो इन्हें क्या देते। पैसा था, सुविधा थी, दे दिया पर बरतने का तरीका नहीं बताया। इन्हें जब घर से ही छूट मिली हैं तो बाहर भला कौन रोक सकता हैं। वन नेल्स ड्राईवस् अनादर नेल्स।'' उन्होंने अपना अंग्रेज़ी का ज्ञान झाड़ते हुए कहा।

'यह सही नहीं है। दरअसल मध्यम वर्ग जिन चीज़ों और सुविधा के लिए ताउम्र तरसता रहा, वे सारे साधन और सुविधा उसने अपनी संतान को उपलब्ध कराए। अपने जीवन में रह गई कमियाँ अपनी संतान के नज़दीक नहीं आने दी। जिन तकलीफ़ व मुसीबतों से उसे संघर्ष करना पड़ा, उनसे उन्हें कोसों दूर रखा। हाँ! यह सच हैं...उन्हें ये सारी सुविधाएँ पारिवारिक सम्पति के रूप में मिलीं। इसके लिए उन्हें किसी तरह का संघर्ष या परिश्रम नहीं करना पड़ा, न ही किसी तरह का कष्ट उठाना पड़ा। यूँ समझों उन्हें यह सब मिट्टी के मोल मिला इसीलिए कुछ लापरवाह हो गए हैं पर दिग्भ्रमित नहीं हैं।' मैंने एक तरह से उन बच्चों का पक्ष लेते हुए कहा।

'सवाल मध्यम वर्ग के अभाव में बीते जीवन का नहीं, न ही उनके दु:ख, दर्द और तकलीफ़ों का हैं। सवाल सही उद्देष्य के न होने का हैं। सवाल... संस्कार विहीनता का हैं। सवाल... झूठी प्रतिष्ठा और अहंकार का हैं। क्या सोचकर इस तेरह-चौदह साल की लड़की को इसके माँ-बाप ने स्कूटी थमा दी...? वह इसे मारना चाहते हैं या पालना... तुम ही बताओ?' उनका चेहरा अभी भी तमतमाया हुआ था। मैं कुछ कहता उससे पहले ही वह पुन: बोल पड़े '...क्या इनके माँ-बाप नहीं जानते कि यह नियम विरूद्ध हैं। स्वयं उनकी संतान के लिए असुरक्षित भी। पर नहीं... वे इस तरह नहीं सोचते। वे तो मोहल्ले में छाती फुलाकर, ढिंढ़ोरा पीटते हुए कहते होंगे... हमारी बेटी तो स्कूटी से स्कूल जाती हैं। पढ़ाई में बहुत होशियार है। आजकल पढ़ाई का बहुत बोझ हैं। बहुत थक जाती है। ऊपर से कोचिंग क्लासेस भी जाना पड़ता हैं। बिना स्कूटी के इतनी भागदौड़ कहाँ सम्भव है पर वह कर लेती है। करना ही पड़ेगा। यह कम्पिटिशन का युग हैं। सब लोगों के बच्चे दौड़ पड़े हैं तो मेरी बिटिया भला पीछे क्यों रहे... इसी तरह हाथ हिला-हिलाकर कहती हैं न इनकी माएँ। तुम यहीं बताना चाहते हो न...?'

मुझे जबरदस्ती विरोध करना पसंद नहीं था। मैंने उनकी बातों का आंशिक समर्थन करते हुए कहा '...एक हद तक यह सही है। पर वे भी क्या करे... विवशता आड़े आ जाती हैं। टीन एज़र्स का इस तरह गाड़ी चलाना कानूनन ग़लत हैं। खुद उनके बच्चों के लिए असुरक्षित भी पर विवश हैं बेचारे...।' उनसे कुछ-कुछ सहमत होते हुए भी मैंने अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा।

'कैसी विवशता...?'

रामभरोसे ने मुझे घूरते हुए जैसे गाली दिया।

मैंने अपना संयम नहीं खोया। हम बीस साल से अधिक समय से एक दूसरे के साथ थे।

हमारे सुख-दुख और संघर्ष एक सरीके थे। लम्बी अवधि की दोस्ती ने हमारे साथ को एक अनिवार्य ज़रूरत और सम्बन्ध को बेहद आत्मीक बना दिया था। उन्हें मुझ पर और मुझे उन पर गुस्सा होने का पूरा अधिकार था। मैंने उन्हें समझाते हुए कहा '... दरअसल न कमी बच्चों में है, न माता-पिता ने कोई ग़लती की। यह तो बाज़ार का बढ़ता पेट है...सब कुछ लील जाने की प्रवृत्ति... बच्चे और महिलाओं को टारगेट बनाकर घर में घुसपेठ करने की साज़िश। बाज़ार के सामने पति और पिता घुटने टेक देते हैं। दूर क्यों जाते हो, पिछले महीने तुम्हारे ही मोहल्ले में तो यह घटना घटी... सुखदयाल का दसवीं क्लास में पढ़ने वाला इकलौता लड़का कुएँ में कूद पड़ा था। तुरन्त-फुरन्त मोहल्ले वाले दौड़ पड़े तो बच गया। नहीं तो उसी दिन उसका काम तमाम हो गया था। इस घटना के ठीक दूसरे दिन वही लड़का मोहल्ले में सवा लाख की बाईक पर घूम रहा है।' माता-पिता की विवशता को स्पष्ट करते हुए मैंने उन्हीं के मोहल्ले की घटना का स्मरण कराते हुए विवशता के मायने समझाने की कोशिश की।

वह समझ नहीं सके पर समझ सकते थे। उनके ऊपर लड़की की आतंकित कर देने वाली ड्राइविंग का गुस्सा भरा हुआ था। वह अपने क्रोध से बाहर नहीं आना चाहते थे।

मैं जानता था... गुस्से की तरह हठ करना भी उनके स्वभाव का एक हिस्सा रहा है।

मैंने हँसते हुए कहा '...अरे भाई! लड़के ने अपने माँ-बाप को बाईक नहीं दिलवाने पर मरने-मारने की धमकी दी थी। उसने साफ़ शब्दों में चेतावनी दी ...यदि दो दिन के अन्दर बाईक नहीं दिलवाया तो कुएँ में कूदकर जान दे दूँगा। लड़का अपने वचन पर अडिग था। उसने जो कहा, कर दिखाया।

विवश माँ-बाप ने उसकी ज़िद के आगे घुटने टेक दिए।'

'मरने देते...ख़ुद मर-मरकर जीने से तो बच जाते। सुखदयाल की मासिक आमदानी बीस-पच्चीस हज़ार से ज़्यादा तो हो नहीं सकती। रसोई में चार जन का आटा नहीं और बरामदे में सवा लाख की बाईक खड़ी। वाह! अरे भैया कर्ज़ के जीवन से तो मौत भली।' वास्तविकता जानकर वह और अधिक भड़क उठे।

'माँ-बाप को अपनी औलाद के सुख के आगे बड़े से बड़ा कर्ज़ का पहाड़ तिनके जैसा लगता हैं। यह तुम अच्छी तरह जानते हो।' मैंने उन्हें पिता होने का एहसास दिलाते हुए कहा।

वह चुपचाप चलते रहे पर मेरी इस बात का खंडन नहीं किया।

सामने से एक महिला सामान्य और सन्तुलित गति से स्कूटी से आ रही थी। वह झट सड़क से नीचे उतर गए। मुझे हँसी आई। डर और गुस्से के बीच के अन्तर को मैं समझ नहीं पाया। जितना बड़ा गुस्सा, उतना बड़ा डर या डर बड़ा और गुस्सा छोटा या गुस्सा क्षणभंगुर और डर स्थाई या दोनों बराबर या दोनों साथ-साथ बड़े-बड़े और साथ ही साथ छोटे-छोटे... सोचता हुआ मैं भी उनके डर के पीछे सड़क से नीचे उतर गया। महिला हमसे बहुत दूर से अपनी गति से आगे बढ़ गई। वह अभी भी सामान्य स्थिति में नहीं आ पाए थे। वैसे भी उन्हें गुस्सा जल्दी आता था। प्राय: छोटी-छोटी बातों में वह उत्तेजित हो उठते हैं। मैंने उनके काँधे पर हाथ रखते हुए कहा '...अब गुस्सा छोड़ यार ...यह युग इसी पीढ़ी का हैं। देश की सत्तर प्रतिशत से अधिक आबादी इन्हीं की हैं। हमें इन्हीं के बीच मरना-खपना हैं।'

'तुम्हीं करो एडजस्ट। मैं सदैव इस रफ़्तार का विरोध करता रहूँगा।' वह जैसे भीष्म प्रतिज्ञा कर बैठे थे।

मैं उनकी प्रतिज्ञा के बाजू से चुपचाप चलता रहा। इसी दौरान ठीक हमारे पीछे से एक तेज़ रफ़्तार मोटर बाईक लहराती हुई गुज़री। पीछे बैठी लड़की मुँह पर स्कार्फ बाँधें बाईकर से चिपकी हुई थी। उसका दाँया गाल बाईकर के बाएँ गाल से घर्षण कर उसमें तेज़ उष्मा का संचार कर रहा था। लड़की की छाती, बाईकर की पीठ पर उछल रही थी। उसने दोनों हाथों से बाईकर की कमर और पेट को जकड़ रखा था। बाईकर जब ठीक हमारे नज़दीक से स..ईं... की रफ़्तार से गुज़रा, लड़की ने बाईकर की कमर से हाथ निकालकर, ऊपर हवा में लहराया और हमारी तरफ़ देखकर ज़ोर से चिल्लाई '...ओये... ओये...' बरबस हमारी दृष्टि सचेत होकर बाईक और बाईक पर सवार लड़की पर पड़ी। लड़के के चेहरे पर हेलमेट था। लड़की का चेहरा स्कार्फ से बंधा था। वे दूसरे अन्य लड़के और लड़कियों से अलग नहीं लग रहे थे। औरों की तरह उनके चेहरे भी पर्दे में थे। वे बेहद सचेत और सावधान थे। वे अपने सभी काम पर्दे में ही करते थे। पर्दे में सारी पहचान, जात-पात, धर्म और उम्र का प्रतिबंध सार्वजनिक नहीं हो पाता। जो प्रकट नहीं हैं, सार्वजनिक नहीं हैं वह अपराध नहीं हैं, जैसा कुछ इस पीढ़ी का मानना था। 'ओये...ओये...' की अप्रिय आवाज़ से रामभरोसे और मेरे कान सहज ही खड़े हो गए। वह और अधिक उत्तेजित हो उठे। उनके मुँह से छूट गंदी सी गाली निकलते-निकलते रह गई। गाली के प्रारम्भिक अक्षर तो निकले लेकिन उन्होंने जिस गति और ताकत से गाली देना चाहा था उससे भी अधिक गति और ताकत से शेष अक्षरों की लगाम खींच लिया और एकदम चुप हो गए। उनके चेहरे छुपे होने के कारण हम उन्हें पहचान नहीं पाए पर रामभरोसे बाईक की नम्बर प्लेट देखकर समझ चुके थे। यह उनके बेटे धीरज का कोचिंग क्लास से लौटने का समय था। उनका समझना उनकी अपनी ही देहरी पर हुआ। अब उनकी विवशता मेरे सामने चित्त पड़ी थी। मैंने उनका हाथ अपने हाथों में थामते हुए कहा.....

'बच्चे हैं। इस उम्र में जैसा देखेंगे, वैसा ही करेंगे। समय सब सीखा देता हैं। समय ही सबसे बड़ा स्कूल है। इस स्कूल में ये सब सीख भी जाएँगे और सुधर भी जाएँगे। तुम नाहक क्रोधित होकर अपना खून जलाते हो।'

इस बार उन्होंने बेहद शान्तचित्त और भवदीय वाली स्थिति में मेरी ओर देखा और मन ही मन सोचा होगा... ऐसा ही हो।

***

लघु कथा

कट्टरपंथी

राहुल शिवाय

मैं और मेरा मित्र मानस दीपावली की छुट्टियों में घर आ रहे थे। मानस पूरे रास्ते ट्रेन में उपस्थित लोंगों के साथ राजनीति और आतंकवाद पर चर्चा कर रहा था। उसकी बातों में मुस्लिम सम्प्रदाय के प्रति गहरा रोष था। उसकी बातों से कट्टरता की झलक मिल रही थी। मैं मानस को अच्छी तरह जानता था, वह कितनी भी बातें बना ले पर वह लड़ाई-झगड़े व सक्रिय राजनीति से हमेशा दूर रहता था। देखते ही देखते बरौनी स्टेशन आ गया और हम प्लेटफार्म पर उतर गए।

हम दोनों को बेगूसराय जाना था। अत: हमने बाहर आकर जीप पकड़ ली। जीप में काफी भीड़ थी पर हम दोनों को सीट मिल गई थी। जीप बरौनी से खुल चुकी थी। एक नौ-दस साल का मुस्लिम बच्चा सर पर टोपी पहने बीच में खड़ा था। जीप जितनी बार उछलती उसके सर पर चोट लग जाती। जब मानस ने देखा तो उस बच्चे को अपनी गोद में बिठा लिया पर उसकी टोपी उतार के उसके हाथों में दे दी। मानस यह करने के बाद मुझे देख कर मुस्कुरा रहा था। मैं मन ही मन सोचने लगा, मनुष्य क्या है और क्या बनने का प्रयास करता है? मानस यह दिखाना चाहता था कि वह एक कट्टर हिन्दू है पर वास्तविकता यह थी कि वह एक नेक इंसान था। जिसके भीतर इंसानियत ज़िंदा थी।

***

संपर्क: सरस्वती निवास, चट्टी रोड,
रतनपुर, बेगूसराय, बिहार-851101
ईमेल: rahulshivay@gmail.com
मोबाइल:8295409649

21 नवम्बर 1902 में यहूदी लेखक आइज़ैक बैशेविस सिंगर का जन्म पोलैंड में हुआ और मृत्यु फ़्लोरिडा, अमेरिका में 24 जुलाई 1991 में। आइज़ैक बैशेविस सिंगर यहूदियों की ऐतिहासिक भाषा यीडिश भाषा में लिखते थे। 1978 में उन्हें नोबेल प्राईज़ मिला। Yentl, Enemies, A Love Story, Love Comes Lately, More इनकी चर्चित फ़िल्में और Yentl, Teibele and Her Demon नाटक हैं।

एक मुक़दमा और एक तलाक़

यीडिश कहानी

मूल कथा : आइज़ैक बैशेविस सिंगर

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

प्रिय पाठक, मैं आप के सामने यह स्वीकार करता हूँ कि कुत्तों से मुझे कोई लगाव नहीं है। सच्चाई यह है कि मैं उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं करता। ईमानदारी से कहूँ तो मुझे उनसे नफ़रत है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, कुत्ता एक खाज-खुजली वाला कटहा जीव है। वह एक चापलूस जानवर है। वह भौंक-भौंक कर आसमान सिर पर उठा लेने वाला, बेवजह काटने वाला और तलवे चाटने वाला एक निकृष्ट जीव है। मेरे दोनों दादा भी इसी राय के थे।

और यदि मेरे मन में कुत्तों के प्रति कोई अच्छी भावना रही भी होती, तो उस मुक़दमे के बाद वह ग़ायब हो जाती।

पिता की अदालत का दरवाज़ा खुला और एक लम्बा, हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति भीतर आया। उसने एक सलेटी जैकेट, सलेटी पतलून और सलेटी टोपी पहन रखी थी। उसके कपड़ों पर आटा लगा हुआ था। उसका नाम ज़ैनवेल था और वह हमारी गली में नानबाई था। अपनी बेकरी के आँगन में वह अक्सर एक लम्बा कच्छा, मुड़ी-तुड़ी चप्पलें और काग़ज़ की एक शंकाकार टोपी पहने चलते हुए दिख जाता था।

यूँ तो नानबाई ठीक-ठाक रक़म कमा लेते हैं, पर ज़ैनवेल अपने पिता की बेकरी में काम करता था और उसे दूसरों से अधिक वेतन मिलता था। उसकी त्वचा पीली थी और आँखें नीली थीं। उसके कंधे और उसकी गर्दन किसी मुक्केबाज़ की तरह गठे हुए थे। वह आटे को बहुत बड़े आकार के लोंदों में गूँधता था। यह एक ऐसा काम था जिसे करने वाला व्यक्ति यदि सुदृढ़ न हो, तो उसकी हालत ख़राब हो सकती थी।

वह पिता की मेज़ पर पहुँचा और मेज़ पर मुक्का मारते हुए बोला, ''मैं एक मुक़दमा दायर करना चाहता हूँ।''

''किसके विरुद्ध ?''

''अपनी पत्नी के विरुद्ध।''

''बैठो। बात क्या है ?''

''धर्म-गुरु, अब या तो कुत्ता रहेगा या मैं रहूँगा !'' ज़ैन्वेल ने चीख़ कर कहा। ''इस घर में हम दोनों के रहने का सवाल ही नहीं उठता।''

A-5001,गौड़ ग्रीन सिटी,वैभव खंड,
इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद-201014 उ. प्र.
ईमेल : sushant1968@gmail.com
मोबाइल : 8512070086

''यह कुत्ता कौन है ?''

''यह कोई आदमी नहीं बल्कि वास्तव में एक कुत्ता है,'' ज़ैन्वेल चिल्लाया।

''वह घर में एक कुत्ता लाना चाहती थी -- उसका बेड़ा ग़र्क हो ! जब से वह उस कुत्ते को ले आई है, वह भूल ही गई है कि उसका कोई पति भी है। मेरा काम बहुत मुश्किल है और मुझे हाड़-तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। मैं एक नानबाई हूँ, धर्म-गुरु। लोगों के खाने के लिए मैं नान, डबल-रोटी आदि बनाता हूँ। पूरी रात मैं बिना रुके बेकरी में काम करता हूँ, पर सुबह जब मैं घर पहुँचता हूँ तो पत्नी द्वारा स्वागत किए जाने की बजाए एक कुत्ता मेरी ओर दौड़ता हुआ आता है। वह मुझ पर भौंकता है और मुझ पर कूद जाता है। वे कहते हैं कि यह उसका प्यार जताने का तरीका है, लेकिन मुझे उसका प्यार नहीं चाहिए। यदि वह एक छोटा पिल्ला होता तो मुझे इतना बुरा नहीं लगता। लेकिन यह कुत्ता किसी भालू जैसा है। एक जंगली जानवर। मैं अपने घर में एक जंगली जानवर नहीं चाहता हूँ। वह किसी शेर की तरह अपना बड़ा-सा मुँह खोलता है। वह किसी सख़्त हड्डी के भी टुकड़े-टुकड़े कर सकता है। जब वह भौंकता है तो मुझे अपने कान बंद करने पड़ते हैं। वह बहुत ज़्यादा शोर मचाता है और उछलता-कूदता है। मैं खुद को किस्मतवाला समझता हूँ कि वह मेरी नाक काट कर नहीं ले जाता। मुझे इस कुत्ते की क्या ज़रूरत है ? मेरे पिता के पास भी कोई कुत्ता नहीं था।

''लोग कहते हैं कि यदि आप किसी गाँव में रहते हों तो आपके लिए कुत्ता उपयोगी होता है -- लेकिन यहाँ वारसॉ में मुझे कुत्ते की क्या ज़रूरत है ? यहाँ कोई मेरे यहाँ चोरी करने नहीं आएगा -- मेरे दरवाज़े पर एक मज़बूत ताला लगाया जाता है। ग़रीब लोग मेरे घर आते थे, और मैं उन्हें जो भी संभव हो, देता था -- नान या चीनी आदि। लेकिन इस कुत्ते की वजह से अब कोई ग़रीब मेरे घर आने की हिम्मत नहीं करता। दीवार पर टँगे एक डिब्बे में मैं धर्मार्थ कार्यों के लिए कुछ रुपए -पैसे डाल देता था। यहूदी धर्म-स्थल पर काम करने वाला एक आदमी आ कर वह रुपए-पैसे ले जाता था। पर इस कुत्ते की वजह से उसने भी मेरे घर आना बंद कर दिया। यदि हमने इस कुत्ते को मेरे घर से नहीं भगाया तो वह किसी राहगीर की कोट का किनारा फाड़ देगा। धार्मिक-स्थलों पर काम करने वाले लोग कुत्तों से बहुत डरते हैं।''

''आपकी पत्नी को कुत्ता क्यों चाहिए ?'' पिता ने पूछा।

''धर्म-गुरु, मुझे भी उतना ही पता है, जितना आपको पता है। मेरे परिवार में किसी के पास कुत्ता नहीं है। वह शिकायत करने लगी कि वह बहुत अकेलापन महसूस करती है। देखिए, हमारे बच्चे नहीं हैं, इसलिए वह कोई जीवित प्राणी घर में रखना चाहती थी। तब मैंने उसे कहा कि तुम एक बिल्ली या तोता पाल लो। कोई चिड़िया होगी तो कम-से-कम गाना गाएगी। तोता होगा तो कुछ बोलेगा। लेकिन एक कुत्ता क्या करेगा ? हे धर्म-गुरु, मुझे यह कहते हुए शर्म आ रही है कि वह इस कुत्ते को चूमती है। वह उसे हमेशा चूमती रहती है। ऐसा नहीं है कि मुझे ईर्ष्या होती है। लेकिन जब मेरी पत्नी कुत्ते को चूमती है तो मैं भीतर तक आहत हो जाता हूँ। धर्म-गुरु, मैं उसके लिए घंटों तक कठिन परिश्रम करता हूँ -- लेकिन जब चुम्बन की बारी आती है तो वह एक कुत्ते को मिलता है। वह हमेशा उसे चूम रही होती है, उसके साथ लाड़ जता रही होती है, उसकी सेहत के प्रति चिंतित होती है। वह हमेशा यही कहती रहती है -- 'अरे, यह कुछ खाता ही नहीं है ; यह ठीक से सोता ही नहीं है।'

''धर्म-गुरु, मैंने अपनी पत्नी से कहा कि मैं सरिया लेकर कुत्ते की खोपड़ी फाड़ दूँगा। तब वह चिल्लाने लगी कि वह घर छोड़ कर चली जाएगी। धर्म-गुरु, आप सच्चा, धार्मिक फ़ैसला करें।आप यह बताएँ कि हम दोनों में कौन ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है- आदमी या कुत्ता।''

''हे ईश्वर, यह कैसी तुलना है ? एक कुत्ते की तुलना एक आदमी से !''

उसकी पत्नी को बुलाया गया। एक हट्टी-कट्टी महिला ने प्रवेश किया ; वह उठे हुए उरोज़ों, मज़बूत बाँहों और तगड़ी पिंडलियों वाली औरत थी। उसके जूते फटे हुए थे। वह चल नहीं रही थी बल्कि अपने जूते के तल्ले को ज़मीन पर घसीट रही थी। वह मिसरी चूस रही थी और उसका एक लाल गाल फड़क रहा था। उसके चेहरे से ऊब टपक रही थी।

''आप को कुत्ता क्यों चाहिए,'' पिता ने उस महिला से पूछा। ''हमारा धर्म-ग्रंथ 'टलमूड' हमें यह शिक्षा देता है कि किसी भी यहूदी को अपने घर में वहशी कुत्ता नहीं रखना चाहिए।''

''वह कुत्ता वहशी नहीं है, धर्म-गुरु। वह इस आदमी से बेहतर जीव है,'' उसने अपनी मज़बूत, छोटी उँगली से अपने पति की ओर इशारा करते हुए कहा।

यह बहस बहुत देर तक चली। उनके वाद-विवाद से मुझ जैसे छोटे बच्चे को भी यह पता चल गया कि वह महिला अपने कुत्ते से प्यार करती थी और अपने पति से उसे नफ़रत थी।

अंत में मेरे पिता पति और पत्नी का झगड़ा मिटा कर उनका मेल-मिलाप कराने में सफल हो गए। ऊपरी तौर से वे उस महिला को यह मनवाने में सफल हो गए कि या तो वह अपना कुत्ता बेच दे या किसी को ऐसे ही दे दे। लेकिन मुश्किल से एक महीना बीता होगा जब वह आदमी दोबारा पिता के पास लौट आया।

''धर्म-गुरु, मुझे अपनी पत्नी से तलाक़ चाहिए।''

''आप कौन हैं ?''

''मैं वह नानबाई हूँ जो कुछ समय पहले भी आपके पास आया था। मेरी पत्नी के पास अब भी वह कुत्ता है। आपने धर्म-गुरु की हैसियत से उस दिन अपना फ़ैसला दिया था कि --''

''हाँ, मुझे याद आ गया।''

''धर्म-गुरु, स्थिति अब भी पहले जैसी ही है। बल्कि अब तो हालात और भी ख़राब हो गए हैं। अब वह कुत्ता रात में उस औरत के साथ उसके बिस्तर पर सोता है। यदि मैं झूठ बोल रहा हूँ तो यहाँ, इसी पल मेरी मृत्यु हो जाए।''

पिता ने एक बार फिर उस महिला को अपनी अदालत में आने का संदेश भेजा -- और हैरानी की बात यह है कि इस बार वह अपने कुत्ते के साथ वहाँ आई। वह मोटे पैरों वाला 'पग' प्रजाति का बड़ा-सा कुत्ता था। उसकी चौड़ी आँखों और फड़कते नथुनों से यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि उसके भीतर हर जीवित प्राणी के लिए रोष, घृणा और

तिरस्कार का तीव्र भाव था। वह कुत्ता अदालत में मौजूद मेरी माँ पर भी भौंका। वह महिला तो उस कुत्ते को अदालत के भीतर लाना चाहती थी, पर मेरी माँ ने यह घोषणा की कि वहाँ 'टोराह' नाम की यहूदी धर्म की पाँच पवित्र पुस्तकें मौजूद थीं।

जैसे ही मैं रसोई में गया और मेरी निगाह उस कुत्ते पर पड़ी, भय और खुशी का एक मिला-जुला भाव मेरे मन में जगा। यह वैसा ही भाव था जैसा एक बार अपने फ़्लैट में आए एक पुलिसवाले को देखकर मेरे मन में जगा था। मैंने नान का एक टुकड़ा ले कर कुत्ते की ओर फेंका। अपनी त्योरियाँ चढ़ा कर उसे सूँघते हुए उस कुत्ते ने मुझे अपनी भूरी निगाहों से ऐसे देखा जैसे कह रहा हो कि सूखे नान के टुकड़े को मैं लज़ीज़ व्यंजन नहीं मानता।

मैं उस कुत्ते की देह पर हाथ फेरना चाहता था, लेकिन उसकी गुर्राहट ने मुझे डरा दिया। यह कोई कुत्ता नहीं था बल्कि चार टाँगों वाला यहूदियों का कोई शत्रु लग रहा था। उसके हर अंग से जैसे खूँखार आक्रामकता टपक रही थी। जब पिता ने अदालत के कमरे में भौंकने की आवाज़ सुनी तो वे भी डर गए। उन्होंने वह पवित्र ग्रंथ बंद कर दिया जिसे वे खोलकर पढ़ रहे थे। गर्मी की वजह से वे बगल में रखी टोपी से खुद को पंखा झलने लगे। ''वह कौन है ?''

''वह उसका असली 'पति' है !'' नानबाई ज़ैनवेल ने कहा।

आम तौर पर पिता दोनों विरोधी पक्षों में सुलह कराने की कोशिश करते थे, लेकिन इस बार उन्होंने नाम मात्र के लिए ही ऐसा किया। हालाँकि हमें यह अजीब लगा, पर वह औरत तलाक़ के लिए राज़ी हो गई। उसने एक कुत्ते के लिए अपने पति को त्याग दिया। मुझे याद नहीं कि क्या उनके तलाक़ की रस्म हमारे घर पर हुई थी, पर उनका विवाह निरस्त कर दिया गया। महिला सारे सामान के साथ उसी घर में रहती रही। गली में इस ख़बर की वजह से गुस्से का माहौल था कि एक कुत्ते की वजह से एक आदमी को अपना घर छोड़ना पड़ा। गली की महिलाएँ कुत्ते वाली महिला के बारे में एक-दूसरे के कानों में भद्दी बातें करती थीं।

एक महिला यह ख़बर सुनते ही शर्म से लाल हो गई और बोली, ''नहीं, नहीं !''

''अरे, हाँ !'' दूसरी औरत ने जवाब दिया, और उसने पहली महिला के कान में एक और गुप्त बात कही।

''ओह ! यह कैसे सम्भव है ?''

''सब कुछ सम्भव है, प्यारी। वह औरत नरक की आग में जलेगी !''

''और मैंने तो एक बार एक औरत के मुँह से एक सम्भ्रांत स्त्री की कहानी सुनी थी, जो एक घोड़े के साथ रहती थी। उनके संसर्ग से एक शिशु हुआ जो आधा इंसान और आधा घोड़ा था।''

''उन्होंने उसके साथ क्या किया ?''

''वह तो पैदा होते ही मर गया।''

''अरे, यह सब अनर्थ बहुत ज़्यादा ऐयाशी की वजह से होता है। बहुत ज़्यादा ऐशो-आराम उनका दिमाग़ ख़राब कर देता है। उनका बेड़ा ग़र्क हो !''

तलाक़ के बाद ज़ैनवेल का जीवन दुख और उदासी के रास्ते पर चल पड़ा। वह ग़म ग़लत करने के लिए खूब दारू पीने लगा। रात में आटे को बड़े-बड़े लोंदों में गूँधते हुए वह उदासी भरे गीत गाता, और उसकी आवाज़ पूरे आँगन में सुनाई देती। पड़ोसी शिकायत करते कि उसके त्रासद गीतों की आवाज़ उन्हें नींद से जगा देती है। लोग उसके लिए दोबारा लड़की देखने लगे थे ताकि एक बार फिर उसका घर बस जाए। हर क़िस्म की लड़कियाँ उसके आगे-पीछे मँडराने लगी थीं, लेकिन वह उनमें से किसी को भाव नहीं देता था।

''यदि एक कुत्ता मुझे मेरे घर से बाहर निकलवा सकता है तो मैं इस युग से वाकई डरता हूँ।'' वह सोचता।

फिर लोगों ने अक्सर उसे गली में मौजूद शराबख़ाने में जाते हुए देखा।

कुत्ते वाली महिला को एक और पुरुष का साथ मिल गया। वह फलों का व्यापार करता था और अफ़वाह थी कि जल्दी ही वह उस महिला से शादी करने वाला था। उसे कुत्ते पसंद थे। जब वह उस महिला से मिलने जाता तो वह उसके लिए चॉकलेट और टाफ़ियाँ और कुत्ते के लिए माँस या हड्डी का टुकड़ा ले कर जाता। यदि महिला व्यस्त होती तो फलों का व्यापारी उसके कुत्ते को पट्टे में बाँधकर घुमाने के लिए बाहर ले जाता। कभी-कभी वह अपने हाथ में पकड़ा कुत्ते का पट्टा छोड़ देता और चौकन्ना कुत्ता अपना पट्टा ज़मीन पर घसीटते हुए उसके पीछे-पीछे चलता रहता।

एक बार कुत्ते को घुमाने के लिए ले जाने के दौरान एक भयानक बात हो गई। उधर से नानबाई ज़ैनवेल चला आ रहा था। वह नंगे पाँव था और उसने एक लम्बा कुर्ता पहन रखा था। वह अपने सिर पर 'चीज़केक' टिकाए हुआ था। ज़ैनवेल ने अब अपने पिता की बेकरी में आटे को बड़े-बड़े लोंदों में गूँधने का काम बंद कर दिया था क्योंकि उसे हर्निया हो गया था। अब वह पेस्ट्री बनाने वाले एक व्यक्ति के यहाँ काम करता था जिसने उसे एक रेस्त्राँ में 'चीज़केक' देने के लिए भेजा था।

जब कुत्ते ने एक समय अपने मालिक और प्रतिद्वंद्वी रहे ज़ैनवेल को देखा तो उसने क्रोधोन्माद में आकर ज़ैनवेल पर हमला कर दिया। 'चीज़केक' ज़ैनवेल के सिर से नीचे गिर गया। कुत्ते ने ज़ैनवेल की टाँग में ज़ोर से काट लिया। दर्द से बिलबिलाते ज़ैनवेल ने भी गुस्से में आ कर दोनों हाथों से कुत्ते का गला दबाकर उसका दम घोंट दिया। यह देख कर फलों के व्यापारी ने ज़ैनवेल को चाकू घोंप दिया ...

यह सारा कांड कुछ ही मिनटों में हो गया। कुछ दूरी पर मौजूद पुलिसवाले ने सीटी बजाई। किसी ने प्राथमिक चिकित्सा दल को फ़ोन कर दिया। ज़मीन पर लाल आँखों वाला कुत्ता मरा हुआ था। ज़मीन पर गिरा 'चीज़केक' मिट्टी में मिल गया था। और एक आदमी ख़ून से लथपथ पड़ा था। कुत्ते की जीभ काली हो कर किसी चिथड़े की तरह उसके मुँह से बाहर निकल आई थी।

जल्दी ही घायल बेकर ज़ैनवेल को एक स्ट्रेचर पर लेटा कर प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध करा रही गाड़ी में डाल दिया गया। एक चिकित्सक ने उसके पैर और कंधे में पट्टी बाँध दी जहाँ फलों के व्यापारी ने उसे चाकू घोंपा था। वहाँ मौजूद पुलिसवाले फलों के व्यापारी को हथकड़ी पहना कर थाने ले गए। एक सफ़ाई कर्मचारी कुत्ते की लाश को वहाँ से हटा कर ले गया। नंगे पैरों वाले लड़के-लड़कियाँ और कुछ बड़े लोग भी नीचे ज़मीन पर गिरे 'चीज़केक' के वे हिस्से उठा कर खाने लगे जो मिट्टी में नहीं

मिले थे।

जब उस कुत्ते की मालकिन को सारी बात पता चली, तो वह दौड़कर गली में गई और अपने कुत्ते की मौत पर विलाप करने लगी। शायद वह अपने प्रेमी के पुलिस द्वारा पकड़ लिए जाने की घटना से भी संतप्त थी। किंतु गली में मौजूद अन्य महिलाएँ कुत्ते वाली महिला से पहले ही ख़फ़ा थीं। वे सब उस महिला पर टूट पड़ीं। उन्होंने न केवल उस महिला की खूब पिटाई की बल्कि उसके सिर से उसके बहुत सारे बाल भी नोच लिए। गली में सब का ग़ुस्सा सातवें आसमान पर था और चारों तरफ़ अफ़रा-तफ़री का माहौल था।

हे पाठकगण, शायद आप जानना चाहते होंगे कि इस कथा का अंत कैसे हुआ। मैं आप की यह इच्छा पूरी करूँगा। अंत में यह हुआ कि कुछ महीने जेल में बिताने के बाद फलों का व्यापारी वहाँ से ग़ायब हो गया। बेकर ज़ैनवेल दो दिनों तक अस्पताल में रहने के बाद वापस अपने घर लौट आया। वह अपनी शोक-संतप्त पूर्व -पत्नी को सान्त्वना देने उसके घर गया -- और दोनों में फिर से सुलह हो गई। उन्होंने दोबारा आपस में शादी कर लेने का फ़ैसला किया। शादी से पहले बेकर की होने वाली पत्नी ने क़सम खाई कि वह फिर कभी अपने घर में कुत्ता नहीं पालेगी।

कुत्ते की जगह उस महिला ने दो पीले रंग की चिड़ियाँ और एक तोता पाल लिया। बेकर ज़ैनवेल ने दोबारा अपने पिता के यहाँ काम करना शुरू कर दिया। वह अब आटे को बड़े-बड़े टुकड़ों में गूँधने का काम नहीं करता था। इसके बदले वह अब भट्ठी में डबलरोटी डालने और निकालने का काम करता था। ज़ैनवेल की पीली चिड़ियाँ सारा दिन चहचहाती और गीत गाती रहती थीं। तोता यीडिश भाषा में कुछ-न-कुछ बोलता रहता था। एक बार फिर ज़ैनवेल का जीवन बढ़िया हो गया था। मुझे तो लगता है कि पृथ्वी-लोक और स्वर्ग-लोक, दोनों ने ही यह तय कर लिया था कि इस पूरे कांड में कुत्ता विजयी न हो। चाहे वह न्यायपूर्ण हो या अन्यायपूर्ण हो, मनुष्यों के मामले में किसी कुत्ते की दख़लंदाज़ी नहीं होनी चाहिए ...

* * *

ग़ज़लें

राज़िक़ अंसारी

चलो चल कर वहीं पर बैठते हैं
जहाँ पर सब बराबर बैठते हैं
न जाने क्यों घुटन सी हो रही है
बदन से चल के बाहर बैठते हैं
हमारी हार का ऐलान होगा
अगर हम लोग थक कर बैठते हैं
तुम्हारे साथ में गुज़रे हुए पल
हमारे साथ शब भर बैठते हैं
बताओ किस लिए हैं नर्म सोफ़े
क़लन्दर तो ज़मीं पर बैठते हैं
तुम्हारी बे हिसी बतला रही है
हमारे साथ पत्थर बैठते हैं

दिल की रंगीनियों से वाक़िफ़ हैं
फूल हैं, तितलियों से वाक़िफ़ हैं
आँधिओं की हंसी उड़ाएँगे
जो हमारे दियों से वाक़िफ़ हैं
हम अगर चुप हैं चुप ही रहने दे
हम तेरी ख़ामियों से वाक़िफ़ हैं
सर्द मौसम की चाँदनी रातें
मेरी बेचैनियों से वाक़िफ़ हैं
जिनको सच बोलने की आदत है
पाँव की बेड़ियों से वाक़िफ़ हैं

मैं जब रिश्तों को लड़ते देखता हूँ
हवेली को उजड़ते देखता हूँ
न जाने क्यों मुझे लगता है, मैं हूँ
किसी को जब बिछड़ते देखता हूँ
पुरानी दास्ताँ में रोज़ तुम को
नए किरदार घड़ते देखता हूँ
कभी सीता हूँ अपने ज़ख़्म ख़ुद ही
कभी सीवन उधेड़ते देखता हूँ
कोई नाराज़गी है मेरी मुझ से
में ख़ुद को ख़ुद से लड़ते देखता हूँ

इमारत एक आलीशान है दिल
कई दिन से मगर वीरान है दिल
कभी ग़ालिब के जैसा शोख़ चंचल
कभी तो मीर का दीवान है दिल
तुझे क्या हमने समझाया नहीं था
मोहब्बत में बड़ा नुक़्सान है दिल
किसी की बात सुनता ही नहीं है
बहुत गुस्ताख़ नाफ़रमान है दिल
तबाही का नहीं अफ़सोस लेकिन
रवैये से तेरे हैरान है दिल

बतलाते हैं सारे मंज़र ख़ुश हैं सब
अन्दर से है टूटे बाहर ख़ुश हैं सब
देख लो अपनी प्यास छुपाने का अंजाम
बोल रहा है एक समन्दर ख़ुश हैं सब
ज़ख़्मों से दुख दर्द से लेना देना क्या
तोड़ के शीशा मार के पत्थर ख़ुश हैं सब
बाहर बाहर दुख मेरी बर्बादी का
मुझे पता है अन्दर अन्दर ख़ुश हैं सब
टूटी खटिया,बिस्तर, कपड़े कौन रखे
बाँट के अपनी माँ के ज़ेवर ख़ुश हैं सब

संपर्क:
24/2 दौलत गंज
इंदौर (मध्यप्रदेश) 452007
ईमेल: razique.ansari.24.com@gmail.com
मोबाइल: +919827616484

टर गए हरीशचंद्र

प्रेम जनमेजय

बचपन में ही मैंने सत्यवादी हरिशचन्द्र बनने का प्रण ले लिया था, क्योंकि उन दिनों कुछ और बनने का प्रण ले नहीं सकता था। उन दिनों सामान्य ज्ञान बढ़ाने के लिए न दूरदर्शन था और न ही दूरदर्शन का सहारा लेकर हिन्दी फिल्में घर में घुसी थीं। इसलिए बचपन में मेरा सामान्य ज्ञान कमज़ोर ही रहा वरना मैं स्मगलर या चोर-उचक्का बनने का प्रण ले ही लेता। सच बताऊँ उस समय मेरे सामने कोई च्वायस भी नहीं थी। या तो राम-लक्ष्मण बनने की सोचता या वीर अभिमन्यु या फिर सुलताना डाकू। ये सब बनने के लिए शरीर और दिमाग में ताकत चाहिए थी और मैं बचपन में-फूँक मारो तो उड़ने वाला, डरपोक इंसान रहा हूँ। डाँट, पड़ोस के बच्चे को पड़ती और नेकर मेरी गीली हो जाती। अत: सत्यवादी बनने के अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं था। स्कूल में मास्टर जी कहते कि जो लड़का सच नहीं बोलेगा वह इस बेंत से इतना पिटेगा कि नाना-नानी दोनों याद आ जाएँगे। और घर में पिताजी ने सच बुलवाने के लिए हंटर रखा हुआ था। अत: पिटने के डर से में सत्यवादी बन गया।

वैसे भी उन दिनों आज जैसे नाटक, कुड़ी जवान, चढ़ी जवानी, या फिर इंटरनेट , यू ट्यूब आदि नहीं होते थे वरना मैं भी अपनी प्रतिभा दिखा देता, कुछ बनकर ही दिखा देता। उन दिनों नाटक केवल रामलीला के दिनों में ही होते थे। रामलीला का माहौल बनाने के लिए, रामलीला से कुछ दिल पहले ये नाटक होते थे। वीर अभिमन्यु, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, सुलताना डाकू, शराबी की पत्नी आदि आदि। हर वर्ष वहीं नाटक, लगभग वहीं लोग। इन नाटकों में जिसे जो अच्छा लगता, वह वही बनने की प्रतिज्ञा कर बैठता। मुझे सत्यवादी हरिश्चन्द्र नाटक अच्छा लगा और मैंने वहीं बनने की प्रतिज्ञा कर ली।

परन्तु सत्यवादी बनकर बहुत पछताया। पिटने के डर से सत्यवादी बना था परन्तु सत्यवादी बनकर बहुत पिटा। पिटा ही नहीं अजीब सी स्थिति में पड़ गया। आदमी से कुत्ता बन गया, धोबी के घर का कुत्ता। सच कहूँगा और सच के अतिरिक्त कुछ और नहीं कहूँगा कि ज़िद ने मुझसे ऐसे-ऐसे काम करवा दिए कि जिसे देखो वहीं मेरा दुश्मन बन गया। कोई सीधे मुँह बात करने को तैयार ही नहीं होता। परन्तु मैं भी बचपन से ही ज़िद्दी रहा हूँ, जो ठान लिया सो ठान लिया।

मास्टर जी सच बोलने से खुश होते हैं, यह सोचकर क्लास के सभी लड़कों की हरकतों के बारे में मास्टर जी को सब कुछ सच-सच बताने लगा। जैसे कि कौन मास्टर जी की नाक को तोते की नाक कहता है और मास्टर जी को तोताराम कहता है। कौन मास्टर जी

संपर्क : 73 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली - 110063
फोन 011-25264227
ई-मेल premjanmejai@gmail.com

को खड़कसिंह कहता है और उन्हें मगरमच्छ कहता है। कौन-सा लड़का किसकी नकल मारता है और कौन दूसरों की किताबें चुराकर बेच जाता है और मज़े में दस आने वाली क्लास मैं बैठकर फिल्म देखता है। कौन-सा लड़का मास्टर जी की कमीज़ पर पीठ पीछे स्याही छिड़कता है और कौन-सा लड़का पेट दर्द का बहाना बनाकर आधी छुट्टी में भागकर कंचे खेलता है।

ये सारी सच्चाई सुनकर मास्टर जी बहुत खुश होते। इस खुशी में वे लड़कों को कभी पीटते और कभी मुर्गा बनाते। उन्होंने मुझे क्लास का मोनीटर बना दिया था। परन्तु लड़के कलास में तो मेरा रोब खा जाते, मास्टर जी से पिट जाते परन्तु छुट्टी के बाद मुझे पीटते। घर वाले परेशान कि लड़का स्कूल पढ़ने जाता या पिटने। कभी कमीज़ के बटन टूटे होते तो कभी नेकर फटी होती। कभी माथे पर सच का निशान होता और कभी हाथ पैर पर। परन्तु कहते हैं कि सच का रास्ता संघर्ष का रास्ता है, यह दोधारी तलवार है। सच के रास्ते पर चलने के लिए ये सब तो सहना ही पड़ता है। गांधी जी ने तो सत्याग्रह के लिए अंग्रेज़ सरकार की लाठियाँ खाई, जेल गए, मैं तो सिर्फ स्कूली लड़कों से पिट रहा था। ये सोचकर मैं सच बोलता गया और पिटता गया।

मास्टर जी की प्रसन्नता दिनों दिन बढ़ रही थी। एक दिन मैंने सोचा कि क्यों न हेडमास्टर साहब को भी प्रसन्न किया जाए। मास्टर जी ने प्रसन्न होकर क्लास का मोनीटर बनाया है, क्या पता हेडमास्टर साहब स्कूल का ही मोनीटर बना दें। अत: एक दिन मैं हेडमास्टर साहब के कमरे में पहुँच गया। मैं उन्हें अपने मास्टर जी के बारे में सब कुछ सच-सच बताने लगा। मैंने उन्हें बताया कि मास्टर जी पढ़ाते कम हैं, ऊँघते ज़्यादा हैं। बताया कि मास्टर जी ऊँघते समय हेडमास्टर बनने के स्वप्न लेते हैं। बताया कि मास्टर जी स्कूल की मेज़ और कुर्सी उठाकर घर ले गए हैं। बताया कि मास्टर जी हलवाई के बेटे से अकेले-अकेले मिठाई मँगवाकर खा जाते हैं।

हेडमास्टर साहब ने मेरी बातें बड़े ध्यान से सुनीं। सब सुनकर वह आग बबूला हो गए। मैं सोच रहा था कि वो मुझे इनाम देंगे, उन्होंने मेरी पिटाई कर दी। बोले, हरामखोर, मेरे सामने दूसरों की चुगली करता है।

मुझे नहीं पता था कि सच बोलने के इस ढंग को चुगली करना कहते हैं। मैंने तो सच और सच के अलावा और कुछ नहीं कहा था, वह चुगली में कैसे बदल गया। हेडमास्टर साहब ने सच बोलने पर शाबासी नहीं दी, नज़रों से गिरा दिया, उधर मास्टर जी ने मोनीटरी छीन ली और सारी क्लास के सामने मुर्गा बना दिया। और लड़के तो पहले ही मेरी जान के दुश्मन थे उन्होंने वो भद्द उड़ाई कि सत्यवादी हरिश्चन्द्र के कदम डगमगा गए। सोचा माड़ में जाए सच परन्तु फिर नाटक आँखों के सामने आ गया।

चाँद टरे, सूरज टरे, टरे न हरिश्चन्द्र।

हरिश्चन्द्र ने सच के रास्ते पर क्या-क्या नहीं सहा- राजपाट खोया, बेटा खोया, पत्नी खोई, और मैंने अभी क्या खोया, मैं तो अभी पिटा ही था। मेरे मन ने मुझे डाँटते हुए कहा- हे कायर, तू तो अभी पिटा ही है, अभी चांडाल कहाँ बना है। हरिश्चन्द्र तो सच के रास्ते पर चलते-चलते चांडाल तक बन गया था। अत: तू भी जब तक चांडाल नहीं बन जाता, तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं होगी। अत: चांडाल बनने के लिए नि:संकोच सच के रास्ते पर चलता चल।

मैंने मन की बात मान ली। किसी तरह सच के रास्ते पर चलता-चलता पढ़ता लिखता गया और एक दिन पढ़ लिखकर बेरोज़गार हो गया। बेरोज़गार होते ही घर वालों की आँखें बदल गई। पहले मैं जिनकी आँखों का तारा था, अब उनकी ही आँखों में खटकने लगा था। सोचा, कहाँ पढ़ाई के झंझट में फँस गया। न पढ़ता-लिखता और न ही बेरोज़गार होता। उस दिन समझ आया कि पढ़ाई केवल ज्ञान ही नहीं देती है, बेरोज़गार भी बनाती है।

सच्चाई का दामन मैंने तब भी नहीं छोड़ा। इतने आँधी और तूफान आए पर मैं आगे बढ़ता गया। सच के मार्ग पर रिश्वत या एप्रोच का क्या काम और नौकरी इसके बिना मिलनी नहीं थी। मैं सत्य का मार्ग छोड़नेको तैयार नहीं था और सत्य मुझे नौकरी देने को तैयार नहीं था, बेचारा बेबस था। उस दिन जाना कि सत्य नौकरी में रहते हुए मैडल तो दिलवा सकता परन्तु नौकरी नहीं दिलवा सकता है। नौकरी और सत्य का बैर है। इस बैर ने न घर टिकने दिया और न किसी दफतर में घुसने दिया। घर वाले अजनबी आँखों से घूरते और रोज़गार देने वाले 'नो वेकंसी' मेरी आँखों पर चिपका देते। और मैं गाता - ''जाऊँ कहाँ, ए बता ए दिल।''

एक दिन घर में मेरे चाचा जी अवतरित हुए। मुझे बेरोज़गार देखकर उन्होंने मुझे जी मरकर कोसा और बूढ़े माता-पिता के प्रति मेरे कर्त्तव्य को लेकर एक लम्बा-चौड़ा भाषण दे दिया। मुझे हाथ-पैर हिलाने की सलाह दी, इधर-उधर भाग-दौड़ करने और इससे-उससे मिलने को कहा और यह सिद्ध किया कि मैं ही हाथ पर हाथ धरे बैठा हूँ वरना जो चाहे उसे नौकरी यूँ मिल जाती है। मैंने अपनी सफाई देनी चाही तो उन्होंने ली नहीं, और बहरे हो गए। चाचाजी सिर्फ बोलते रहे और यह सिद्ध करते रहे कि बेरोज़गार होना मेरा शौक है।

अगले ही दिन चाचाजी मुझे एक सज्जन के यहाँ ले गए। सज्जन बहुत सज्जन थे, उन्होंने अपनी सज्जनता में हमें पहचाना ही नहीं। परन्तु जब चाचा जी ने उन्हें पाँच हज़ार रुपये पकड़ाए तो उन्होंने न केवल पहचाना ही अपितु ठंडे या गरम पीने को पूछा भी। न केवल पूछा अपितु ठंडा पानी भी पिला दिया। सज्जन ने इस बात पर अत्याधिक अफसोस प्रकट किया कि मैं इतना होनहार बेराज़गार हूँ। उन्होंने देश और सरकार को गालियाँ दीं जो प्रतिभाओं को धूल में डाले हुए हैं। उन्होंने हमारा सामान्य ज्ञान बढ़ाने हुए कहा कि यदि मैं विदेश में होता तो धन और नौकरी मेरे पीछे दौड़ते। वे मेरी प्रतिभा को पहचानते रहे, मेरे गुणों को न जानते हुए भी मेरे गुणों का बखान करते रहे। वे बोलते रहे और हम चुपचाप सुनते रहे। चाचा जी ने न बोलने की चेतावनी मुझे पहले ही दे दी थी। मेरा सच मौन रहा।

बाहर निकल कर चाचाजी ने मुझसे कहा कि मैं फलानी तारीख को, फलाने पते पर इन्टरव्यू के लिए पहुँच जाऊँ। चाचा जी ने मुझे एक काग़ज़ देते हुए कहा- ''ये सारे सवाल देख लेना, इनके जवाब रट लेना। और देखो कोई बेवकूफी मत करना, वरना पिटोगे।'' मेरा सच पिटने के डर से चुप हो गया।

मैं फलाने दिन, फलाने पते पर इन्टरव्यू

के लिए पहुँच गया।

इन्टरव्यू लेने के लिए वे सज्जन और एक दुर्जन से दिखने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त दो व्यक्ति हमें माफ करना के अंदाज़ में बैठे हुए थे। वो वही कर रहे थे जो सज्जन और दुर्जन कर रहे थे। सज्जन जी ने मुझसे वही पूछा जो मैंने रटा था। मैंने कोई बेवकूफी किए बिना सारे प्रश्नों के उत्तर धड़ाधड़ दे दिए। मेरे इस व्यक्तित्व को देखकर दुर्जन जी बहुत आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने कहा - एक्सलेन्ट, वंडरपफुल, आप तो ब्रिलिएंट हैं, जीनियस हैं। आपने तो सारे सवालों के जवाब ऐसे दे दिए कि .... भई वाह क्या कहने ... लगता है बहुत मेहनत की है आपने ?

मैं उनके इस सवाल का जवाब नहीं देना चाहता था परन्तु ये मेरे बस में नहीं था क्योंकि उन्होंने एक ही सवाल किया था और यदि मैं उनके इस सवाल का उत्तर नहीं देता तो शायद वो मुझे अयोग्य सिद्ध कर देते। मैंने सच का दामन पकड़ा और कहा, ''सर, इसमें मेरी मेहनत क्या है... यह तो इन सज्जन जी की मेहरबानी है... इनकी ईमानदारी है .... इन्होंने जो प्रश्न मुझे पहले बताए थे, वहीं पूछे ... मेहनत तो इनकी है ...।''

यह सुनकर दुर्जन सदस्य आठवें आश्चर्य में पड़ गए, बोले, ''इन्होंने तुम्हें प्रश्न क्यों बताए ?''

''मेरे चाचा जी ने इन्हें पाँच हज़ार रुपए जो दिए थे,'' मैंने सच बोला और वे सज्जन बोले, ''यह झूठ बोलता है ... यह मुझे फंसा रहा है।'' उन्होंने मुझे कमरे से निकाल दिया और मेरे सच को दो हज़ार रुपयों से ढक दिया। दुर्जन जी भी दो हज़ार में मान गए, मैंने झूठ बोला था।

पाँच हज़ार गए, नौकरी मिली नहीं। चाचा जी ने जी भरकर कोसा और घर वालों के लिए जैसे मैं मर गया। घर में मुर्दानगी छा गई। मुझे लगा कि मैंने सच बोलकर जैसे पाप किया है। मैं पछताने लगा तो फिर सत्यवादी हरिश्चन्द्र की याद आ गई और सच के रास्ते पर चलता-चलता अपने सच्चे प्यार के पास पहुँचा।

मैंने अपने सच्चे प्रेम को वह सब कुछ बता दिया जो मेरे साथ घटा था। मेरी बातें सुनकर वह रोने लगी। मुझे पता नहीं चल पाया कि वह किस कारण से रो रही है। वह अनेक कारणों से रो रही थी। वह इसलिए रो रही थी, घर वालों ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। वह इसलिए भी रो रही थी कि मुझे ज़माने की समझ नहीं है, मुझे लोक-व्यवहार नहीं आता है। और अंतत: वह इसलिए भी रो रही थी कि मुझे नौकरी नहीं मिली तो हमारा विवाह कैसे होगा ! उसके पिता उसका विवाह किसी बड़े बिज़नेसमेन से करना चाहते थे और मैं क्लर्क भी नहीं था। उसने मुझसे रोते-रोते कहा कि मैं उसके पिताजी से मिलूँ, उन्हें झूठ-मूठ कहूँ कि मैं बड़ा बिजनेसमेन हूँ और उसका हाथ माँग लूँ, वरना वह परई हो जाएगी। परन्तु मैं सत्यवादी, झूठवादी कैसे बनता। मेरा प्यार सच्चा था, और मुझे सच पर भरोसा था, मैं झूठ का सहारा क्यों लेता। मैं सच बोला, और लड़की पराई हो गई। न बादल गरजे, न बिजली कड़की, न आंधी आई और न मैंने कोई गाना गाया, फिर भी लड़की पराई हो गई।

देखा जाए तो सच्चा प्यार यूँ ही भटकता रहता है। उसे कभी किनारा नहीं मिलता है। बेचारा मजनू लैला-लैला करता समाज से पत्थर खाता रहा, परन्तु न उसे लैला मिली और न समाज ने उसे पत्थर मारना बन्द किया। न वह समाज का हो सका और न उसे लैला मिली। झूठ के रास्ते पर चलता तो अनेक लैलाओं का उसे घर मिलता और टिकने को समाज का घाट भी मिलता।

धीरे-धीरे सत्य के अनेक रूप देखने को मिल रहे हैं। मैं पहले सत्यवादी हरिश्चन्द्र वाले सच को ही सच माने बैठा था। परन्तु ज़िंदगी ने बताया कि सत्य कई तरह का होता है। सच के कई कोण होते हैं और सच बोलने के कई तरीके होते हैं सच बोलना भी एक कला है, जो इस कला को जान लेता है, सफल सत्यवादी कहलाता है। और जो इस कला को नहीं जान पाता है, राजपाट खोता है, पत्नी खोता है, पुत्र खोता है और अंतत: चांडाल बनता है।

धीरे-धीरे पता चला कि कानून का सच अंधा होता है और भूख का सच नंगा होता है। वकील का सच उसका गवाह होता है, उसकी रोज़ी होता है। भूखे का सच रोटी होता है। सच ढका हुआ होता है, सच नंगा होता है, सच अधनंगा भी होता है। जो सत्य के इन कोणों को नहीं जानता है, इन कोणों को समझता नहीं है, वह आदमी नहीं रहता, धोबी का कुत्ता हो जाता है। वह दूसरों का विश्वासपात्र होकर तो जी सकता है परन्तु उस विश्वास को खा-पी नहीं सकता है।

अब जिस हमाम में सभी नंगे हों, वहाँ कपड़े पहनने वाले को शर्म आएगी ही। वह सोचेगा ही कि कहाँ जा फँसे। अंतत: उसे भी कपड़े उतारने ही पड़ेंगे वरना वो हमाम से बाहर कर दिया जाएगा। जहाँ सभी रिश्वत लेने वाले हों वहाँ रिश्वत न लेने वाला नौकरी से हाथ धोता हैं। इसी प्रकार हे सज्जनों, जहाँ चारों और झूठ ही झूठ हो वहाँ बेचारे सत्यवादी हरिश्चन्द्र क्या करेंगे ?

सत्यवादी को सबसे अधिक कष्ट उसकी आत्मा से पहुँचता है। वह झूठ नहीं बोल सकता क्योंकि झूठ बोलते ही उसकी आत्मा कचोटने लगती है। जहाँ भी वह झूठ बोलने लगता है, वहीं उसकी आत्मा सामने आ जाती है और वह बेचारा घबराकर सच बोल जाता है।

मेरे सामने भी आत्मा का संकट पैदा हो गया था। झूठ मैं बोल नहीं सकता था और सच बोलते-बोलते आदमी से कुत्ता बन गया था। कहीं कोई ठिकाना नहीं था। अब मैं सच को ऐसी लाठी बनाना चाहता था जिससे साँप भी मर जाए और वह टूटे भी नहीं।

मैंने देखा कि सबसे ज़्यादा सच न्यायालय में मिलता है, हर आदमी उसे स्थापित करने के चक्कर में लगा रहता है। वहाँ हर आदमी गीता पर हाथ रखकर सच और सच के अतिरिक्त और कुछ नहीं बोलता है। दोनों वकील एक दूसरे के विपरीत सच ही बोलते हैं। गीता पर हाथ रखकर सच बोला जाता है और आत्मा का बोझ गीता पर रख दिया जाता है। आत्मा संतुष्ट हो जाती है कि उसने जो कुछ भी कहा है गीता पर हाथ रखकर कहा है। वैसे भी गीता और आत्मा का सम्बन्ध अविच्छिन्न है।

अत: अपनी आत्मा और सच के सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए मैं एक वकील के पास पहुँचा। सच को विभिन्न कोणों से प्रस्तुत करने के जितने ढंग वकीलों को आते हैं, उतने किसी और को नहीं।

मैंने अपनी समस्या योग्य वकील के

समक्ष रखी और कहा, ''हे गुरुदेव, अब आप ही मार्गदर्शन करें कि मैं क्या करूँ? मैं सत्यवादी बनकर जीना चाहता हूँ परन्तु यह ज़ालिम ज़माना पग-पग पर मेरे मार्ग में रोड़े अटकाता है। यह मुझे सत्य के रास्ते में चलने नहीं दे रहा हैं मैं सत्यवादी हरिश्चन्द्र बनना चाहता हूँ, ज़माने ने मुझे धोबी का कुत्ता बना दिया है। न मुझे प्रेमिका मिली, न नौकरी मिली और न घर वालों ने अपनाया, न मास्टर जी ने। सभी ने मुझे दुत्कारा है। लगता है मैं नकारा हो गया हूँ। किसी के भी काम का नहीं रहा हूँ। अत: हे गुरुदेव, कोई ऐसा उपाय बताएँ जिससे घर भी मेरा हो और घाट भी मेरा हो, मैं कुत्ते से आदमी तो बन जाऊँ।''

योग्य वकील ने मेरी समस्या सुनी तो द्रवित हो गए। वैसे उनके द्रवित होने का कारण कुछ और भी था। द्रवित होकर वह बोले, ''हे वत्स, तुमने जो फीस मुझे दी है उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अत: मैं तुम्हारे सभी प्रश्नों का समाधान करूँगा। यह तुमने ठीक किया कि बचपन से ही सत्य का मार्ग अपनाया है। आजकल सत्य की मार्केट भी बहुत है। परन्तु थोड़ा तुम चूक गए। तुम सच के मार्ग पर सही तरह से चले नहीं इसलिए धोबी के कुत्ते समान तुम्हें जीवन जीना पड़ा। तुम अंधाधुंध सच के रास्ते पर चल पड़े, तुमने दिमाग से काम नहीं लिया।

हे वत्स ! सत्य का मार्ग समझदारी का मार्ग है। तुमने हरिश्चन्द्र को अपना आदर्श बनाकर गलती की। भारत के महान् इतिहास में अनेक सत्यवादी हुए हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को तुम कैसे भूल गए, वत्स ? युधिष्ठिर के सत्य से बढ़कर कोई सत्य इस दुनिया में नहीं हैं और इस कलियुग में युधिष्ठिरी सत्य की बहुत महिमा है। शास्त्रों में वर्णित है कि जो युधिष्ठिरी सत्य के मार्ग पर चलता है वह अंतत: तन-मन-धन से धर्म अर्थ काम मोक्ष को प्राप्त करता है।''

मैं उनके लम्बे भाषण से ऊब रहा था, अत: मैंने उन्हें टू दी पॉइंट बात करने के लिए टोकते हुए कहा, ''गुरुदेव, यह युधिष्ठिरी सत्य क्या होता है, पहले यह बताएँ। फिर कोई और बात करें। क्योंकि युधिष्ठिरी सत्य जानने को मेरा मन मचल-मचल रहा है।''

''मैं तुम्हें युधिष्ठिरी सत्य अवश्य बताऊँगा, वत्स ! जरा धैर्य धारण करो। तुमने महाभारत की वह कथा तो सुनी ही होगी कि जब अनेक उपाय करने पर भी गुरु द्रोणाचार्य नहीं मरे तो कृष्ण ने एक उपाय सोचा। उन्होंने द्रोणाचार्य को पुत्र-शोक से पीड़ित करने के लिए धर्मराज, सत्यवादी युधिष्ठिर से झूठ कहलवा दिया कि 'अश्वत्थामा हतो:' और फिर युधिष्ठिर की आत्मा की रक्षा के लिए युधिष्ठिर से धीमे से कहलवा दिया- नरो: व कुंजरो:। नगाड़े पीट दिए गए, जिससे सच दब गया और झूठ सच बनकर सामने आ गया। युधिष्ठिर की साख भी बनी रही, और आत्मा ने उन्हें कचौटा भी नहीं। वे महाभारत का युद्ध जीत गए। अत: हे वत्स, तुम्हें भी सत्यवादी हरिश्चन्द्र न बनकर धर्मराज और सत्यवादी युधिष्ठिर बनना चाहिए। इससे तुम केवल सत्यवादी ही नहीं कहलाओगे अपितु धर्मराज भी बन जाओगे। आज से तुम प्रण कर लो कि तुम युधिष्ठिरी सत्य ही बोलोगे, और कोई सत्य नहीं बोलोगे!''

एक प्रण मैंने बचपन में किया था और दूसरा युवावस्था में किया। मैं सत्यवादी हरिश्चन्द्र से युधिष्ठिर बन गया। युधिष्ठिर सच बोलने के कई लाभ हैं। इसमें झूठ धड़ल्ले से बोला जा सकता है और एक कतरा सच भी बोल दिया जाता है। इस सत्य से आत्मा पर बोझ नहीं पड़ता है। वह मुक्त रहती है, उसे आग जला नहीं सकती, और हवा उड़ा नहीं सकती है। ऐसे में आत्मा कुर्सी हो जाती है।

अब मैं धोबी का कुत्ता नहीं हूँ, आदमी बन गया हूँ, अब मैं ज़ोर-ज़ोर से झूठ बोलता हूँ और झूठ के शोर में मन ही मन सच भी बोल लेता हूँ। जैसे बेचारा मध्यवर्गीय प्रगतिशील अपनी प्रगतिशीलता दिखाने के लिए मंदिर के सामने अकड़ कर चलता है तथा मित्रों के बीच मंगलवार को मीट भी खा लेता है और फिर भगवान् से अन्दर ही अन्दर क्षमा माँग लेता है तथा गुसलखाने में जाकर मीट की उलटी कर देता है। आत्मा का बोझ कम करने के लिए सवा पाँच रुपये का प्रसाद चढ़ा आता है। वैसे ही मैं भी आजकल प्रत्यक्षत: झूठ बोलकर और फिर मन ही मन सच बोलकर, हल्का हो लेता हूँ।

***

लघु कथा

बिखरी पंखुड़ियाँ

ज्योत्सना सिंह

''साईं मंदिर का फूल है। मोहन के सिरहाने रख देना। कुछ तो पीड़ा हरेंगे प्रभु!'' फूल देते हुए उसने अपनी सहेली से कहा। तो वह निराशा भरी आवाज़ में बोली।

''न जाने कितने फूल-पत्ती,पीर-फ़क़ीर दवा-दारू सब तो कर चुकी, पर न मोहन को आराम हुआ, न मुझे चैन मिला।''

''सब होगा सखि, उसके घर देर है अँधेर नहीं।'' कहते हुए उसने ऑफ़िस की टेबल पर रक्खे भगवान् को प्रणाम किया और पेपर उठा उसे पलटने लगी। पेपर में रक़्ख़ा एक पर्चा देख वह उसे पढ़ने लगी।जिस पर किसी संत का चमत्कारी तरह से रोग हरण का गुणगान था। वह अपनी सहेली से बोली। ''लो पढ़ो, बस पाँच सौ का चढ़ावा और कुछ फूल ले कर जाना है। संत उन फूलों में पढ़ कर मंत्र फूँक देंगे। फिर वे फूल मरीज़ के सर के पास रख देना है। जैसे-जैसे फूल सूखेगा वैसे-वैसे मरीज़ का मर्ज़ सूख कर ठीक हो जाएगा।''

सहेली की बात सुन वह फीकी सी हँसी हँस बोली। ''सब बकवास है।''

''पर एक बार प्रयास करने में क्या बुराई है? कभी-कभी मिट्टी भी दुआ बन लग जाती है।''

शाम को जब लम्बी क़तार पार कर वे दोनों वहाँ पहुँची तो वह फूल फेंक चीख़ उठी। ''ये संत! ये क्या किसी को किसी भी मंत्र से ठीक करेगा। यह तो ख़ुद के अपंग जन्मे बच्चे को अभिशाप समझ घर से भाग गया था। जिसे अपने बच्चे के राहों में फूल बिछाने थे वह उन्हीं फूलों को रौंदता हुआ घर से भाग गया। और अब संत बन मंत्र के सहारे लोगों को रोग मुक्त करने का ढोंग कर रहा है।'' और वह फूल फेंक उन बिखरी पंखुड़ियों को रौंदती हुई अपने बेटे मोहन के पास दौड़ती चली जा रही थी।

***

संपर्क: गोमती नगर, लखनऊ
ईमेल: singhjyotsana1968@gmail.com

सिविक सेन्स

कृष्ण कान्त पण्ड्या

भारत में चल रहे स्वच्छता अभियान से मुझे अपनी चार वर्ष पहले की अमेरिका यात्रा याद आ गई। वहाँ की सड़कों, फुटपाथ पर लगे सोफों वाले बाज़ारों, बग़ीचों, सामूहिक प्रसाधनालयों, बस स्टेंडों, रेल्वे प्लेटफार्मों की सफाई और उसकी व्यवस्था को देखकर मैं हैरत में रह गया। मैंने माना कि वहाँ की जनसंख्या भू-भाग के अनुपात में कम है, और वहाँ के सफाई कर्मचारी अपनी ड्यूटी के प्रति रोबोटिक ईमानदार हैं, परन्तु वहाँ की जनता भी सफाई के प्रति पूरी जागरूक है। उनका व्यवस्था के प्रति पूरा सहयोग है। जी हाँ, वहाँ का हर बच्चा व हर नागरिक खाने के रेपर्स, कोल्डड्रिंक की बोटल्स व केन्स, चाय कॉफी के कागज़ के ग्लासेज़, पेपर नेपकिन्स, यहाँ तक कि टॉफी के रेपर्स, सभी कुछ वो, जो फेंकने लायक कूड़ा है, उसे जगह-जगह बने कूड़ेदानों में डालते हैं ताकी खूबसूरती बरकरार रहे। और जहाँ कहीं अगर कूड़ेदान की व्यवस्था नहीं है, तो वे उस कचरे को अपने पास इकट्ठा रखते हैं, चाहे वे पैदल हों, गाड़ी में हों, या पब्लिक ट्रान्सपोर्ट में, पर उसे उचित कूड़ादान में ही डालेंगे। सिगरेट के बचे हुए ठूँठ को भी यहाँ-वहाँ नहीं फेंक कर या पैरों के नीचे कुचलने की परंपरा के विपरीत उन्हें बुझाकर कूड़ादान में डालने का सिविक सेन्स जानने को मिला।

पालतू कुत्तों के मालिक जब उन्हें घुमाने निकलते हैं, तो उसका मल साफ करने का पूरा किट लेकर चलते हैं, जिसमें पेपर नेपकिन्स, छोटी सी सूपड़ी और एक डिस्पोसेबल मटिरियल की बनी प्लास्टिक की थैली होती है। जब कभी उनका कुत्ता मल त्याग करता है तो पहले तो उसका मालिक उसे आराम से मल त्याग करने देता है और फिर उस मल को उस थैली में डालकर कूड़ादान तक ले जाकर उसमें डालता है। समझ की बात यहाँ है कि, उनके पीछे निरीक्षण करने वाले के डर से वो ऐसा नहीं कर रहे हैं पर अपना कर्त्तव्य समझकर वे ऐसा करते हैं।

मुझे सड़क के रास्ते क्लीवलैंड से फिलेडेल्फिया और वहाँ से बोस्टन जाने का मौका

संपर्क : 2603, ऑबराय स्पलेन्डर
मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
मोबाइल : 9819856220

मिला तो आश्चर्य हुआ कि करीब 1200 कि.मी. की यात्रा के दौरान सड़कों के किनारे एक भी प्लास्टिक की थैली या किसी भी किस्म का इन्सान के द्वारा फेंका गया कचरा देखने को नहीं मिला। वहीं हाल ही की मेरी कश्मीर यात्रा के इतने गंदगी भरे अनुभव हुए कि मेरी अन्तर्आत्मा व्यथित हो गई। क्या तो रास्ते, क्या हरे-भरे पहाड़ व घाटियाँ या क्या बर्फ के पहाड़, जहाँ तक भी इन्सान के हाथों की ताक़त फेंक सकती है वहाँ तक न समाप्त होने वाला हर किस्म का प्लास्टिक हमारे सिविक सेन्स और हमारे प्रदूषण रहित अभियानों पर व्यंगात्मक हँसी हँसता है। और फिर हवा व पानी के बहाव में वो प्लास्टिक गहरी खाइयों में हमेशा के लिए पड़ा रहता है। आज की तारीख में ज़्यादातर वो लोग घूमने जाते हैं जिन्होंने कम से कम बारहवीं तक तो पढ़ाई की ही होती है और जिन्होंने प्रदूषण की वजह से आपदाओं व साफ-सफाई की बुनियादी शिक्षा भी ली ही है, जो अपने घरों को तो साफ रखने लगे हैं, लेकिन वे घर के बाहर निकलते ही ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जैसे चलो, अब हम गंदगी फैलाने के हक़दार हो गए हैं।

सभ्यता की सारी सीमाएँ तोड़कर जवेलियन थ्रो जैसे खेल की तरह प्लास्टिक की पानी की बोतलों को पहाड़ों से नीचे, चलती गाड़ी, बस या ट्रेन से फेंकने का कम्पीटिशन करते हैं। उनका बस चले और अगर हवाई जहाज में खुली खिड़की की व्यवस्था हो, तो माशाअल्लाह तीस-पैंतीस हज़ार फीट की ऊँचाई से इस ख़ूबसूरत धरती को गंदा करने का उन्हें मज़ा आ जाता।

एक महाशय ने कश्मीर के चश्मे शाही के बग़ीचे में चुपके से टॉफी का रैपर ज़मीन पर डाल दिया, मैंने जैसे ही उसे उठाया उसका सिविक सेन्स जागा और उसने मेरे हाथों से उस रैपर को लेकर पास ही रखे कूड़ादान में डाला।

कई बार हमने देखा है कि जब कचरा गाड़ी मोहल्ले का सारा कचरा सफाई पूर्वक भर कर चली जाती है, तब ही कोई वहाँ आकर इस तरह कचरा फेंक कर चला जायगा, जिससे आधा बाहर सड़क पर ही गिर जाएगा और बेचारा कूड़ादान भूखा रह जाएगा। बेचारे सफाई कर्मचारी अब हमारे यहाँ भी सलीक़े से अपना काम करने लगे हैं, पर हमारा सिविक सेन्स सलीक़ेदार नहीं होता अपवादों को छोड़कर।

पान खाना हमारे यहाँ का पौराणिक मुख-शुद्धि का शुभ दस्तूर है, बाद में ये नवाबों का शौक़ बना पर, उन्होंने पीकदान को हमेशा साथ रखा। आज सर्वत्र, हाँ सर्वत्र पान, तम्बाकू व गुटके ने इतनी गंदगी व बीमारी फैला रखी है कि व्यवस्था हाथ मलकर रह गई है। और अगर सरकारें तम्बाकू व हर तरह के गुटके पर प्रतिबन्ध लगा दें, तो लोग सड़कों पर हंगामा करने लग जाएँगे। क्या इन पदार्थों का सेवन हम सिर्फ अपने घरों तक ही सीमित नहीं रख सकते या उचित स्थानों पर ही थूकना नहीं सीख सकते? हाल ही ''मुम्बई मिरर'' में एक समाचार पढ़ा जिसमें एक सिविक सेन्स की नम्रतापूर्वक बात कहने वाले युवक को गाड़ी से उतरकर दो युवकों ने पीट-पीट कर लहू-लुहान कर दिया। उस युवक की क्या यह ग़लती थी कि उसने उन युवकों को कोक के केन को सड़क पर फेंकने से रोकना चाहा था?

यही लोग जब साफ सुथरे मॉल्स व हवाई अड्डों पर जाते हैं तब उन्हें सभ्य बनने में मज़ा आता है। व्यवहार में ये दोगलापन कब तक?

आवश्यकता है हमारे अन्दर की कर्त्तव्य भावना को जगाने की, न कि सरकारों, मन्त्रियों व व्यवस्था को कोसने के आसान तरीकों की।

ज़्यादातर लोग इस मानसिकता से ग्रसित होकर लापरवाह हो जाते हैं कि, ''मेरे अकेले के करने से क्या होगा?'' पर बात ऐसी नहीं है, हमें कोशिश करते हुए देख कर दस में से एक के अन्दर तो सिविक सेन्स जागेगा और इस तरह कभी न कभी हमारे यहाँ का प्रतिशत नब्बे तक पहुँचेगा ही। इस पर मुझे दुष्यंत कुमार का एक शेर याद आता है-

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों।

सवा सौ करोड़ नागरिक अगर सामूहिक स्थानों पर कचरा न फैलाने का सिर्फ एक संकल्प ले लें तो सवा सौ करोड़ संकल्प इस देश को ख़ूबसूरत और साफ सुथरा बना सकते हैं।

***

लघु कथा

भैंस के आगे बीन

गोवर्धन यादव

कमलकांत और श्रीकांत गहरे मित्र थे। कमलकांत कॉलेज में प्रोफ़ेसर के पद पर कार्यरत थे, जबकि श्रीकांत अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाते हुए परचून की दुकान चलाता था। दोनों के बेटों के बीच भी गहरी मित्रता थी। दोनों साथ ही पढ़ते भी थे। कमलकांत का बेटा क्लास मे हमेशा प्रथम श्रेणी में पास होता जबकि श्रीकांत का बेटा फ़िस्स्डी रहता। फ़ुर्सत के क्षणों में दोनों मित्र बैठे चाय सुड़क रहे थे। कमलकांत ने पहल करते हुए कहा-''श्रीकांत बुरा न मानों तो एक बात कहूँ। तुम ज़िंदगी भर पुड़ियाँ बाँधते रहे। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारा बेटा भी आगे चल कर पुड़ियाँ बाँधता रहे। वह पढ़ाई मे काफ़ी कमज़ोर है। उस पर थोड़ा ध्यान दिया करो।''

इस बात पर श्रीकांत को गुस्सा आया। उसने अपने मित्र को पलटकर जबाब देते हुए कहा-''मित्र..... बुरा न मानना। तुम्हारा बेटा पढ़ -लिख कर ज़्यादा से ज़्यादा कलेक्टर बन सकता है।मैं अपने बेटे को राजनीति में उतारूँगा। राजनीति में अकल की कोई ज़रूरत नहीं होती। उसे तो केवल वाकपटु होना चाहिए। देखना दस-पाँच साल में वह कितनी तरक्की करता है। एक दिन ऐसा भी आएगा कि वह प्रदेश का दमदार मंत्री बन जाएगा और तुम्हारा कलेक्टर बना बेटा उसके सामने खड़े होकर उसके आदेश की प्रतीक्षा करेगा। ऐसा भी हो सकता है कि उसे उसके जूते के तसमें न बाँधना पड़े।'' अपने मित्र की बात सुनकर कमलकांत की हालत देखने लायक थी। उसे इस बात पर गहरा क्षोभ हो रहा था कि उसे भैंस के आगे बीन बजाना ही नहीं चाहिए था।

***

संपर्क - ईमेल:
yadav.goverdhan@rediffmail.com,
goverdhanyadavyy@gmail.com
मोबाइल: 09424356400

सूर्यभानु गुप्त : जिन्हें कमलेश्वर नहीं धर्मवीर भारती मिले

वीरेन्द्र जैन

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास, भोपाल, म.प्र. 462023
मोबाइल : 09425674629
ईमेल : j_virendra@yahoo.com

एक दिन की यात्रा के बाद रात बारह बजे लौटा। थकान तो थी किंतु दिन भर अख़बार नहीं पढ़ पाया था और अख़बार पलटे बिना शायद नींद नहीं आती। एक अख़बार के स्थानीय संस्करण में ख़बर थी कि सुप्रसिद्ध गीतकार और शायर सूर्यभानु गुप्त को जावेद अख़्तर सम्मान 25 मार्च को दिया जाएगा। ख़बर पढ़ते ही नींद दूर खिसक गई। स्मृतियों ने कुरेदना शुरू कर दिया।

अपने एक सहपाठी मित्र शिव मोहन लाल श्रीवास्तव के सम्पर्क में आने के बाद मुझे भी पत्र व्यवहार का रोग लग चुका था; भले ही उनकी तुलना में यह दो चार प्रतिशत ही था। उन दिनों युवाओं का पत्रिकाओं में प्रकाशन भी बड़ी उपलब्धि मानी जाती थी, पुस्तकाकार रूप में आना तो और बड़ी बात थी क्योंकि आज की तरह पैसे खर्च करके सब कुछ नहीं मिल जाता था। मैंने जल्दी ही धर्मयुग और कादम्बिनी, आदि में, जो उस समय की प्रमुख पत्रिकाएँ थीं, में प्रकाशन का गौरव पा लिया था और उसे बड़ी उपलब्धि समझने के भ्रम में था। उन दिनों जो लोग धर्मयुग में प्रमुखता से छपते थे उनमें से एक नाम सूर्यभानु गुप्त का भी था। उनकी ग़ज़लें और गीत मुझे बहुत पसन्द आते थे। मैं अपने छुटपुट प्रकाशन का हवाला देकर लोकप्रिय लेखकों से वैसे ही पत्र व्यवहार शुरू कर देता जिसके लिए चूहे के हल्दी की गाँठ पाकर पंसारी बनने का मुहावरा बना होगा।

इमरजैंसी लग चुकी थी व 'मुनादी' छापने के उत्साह को भूल कर भारती जी धर्मयुग का एक छप चुका अंक वापिस ले चुके थे। कई स्वीकृत रचनाएँ लौटाई जा चुकी थीं, जो इस बात का संकेत थीं कि अब धर्मयुग में क्या-क्या नहीं छप सकता। थोड़ा समय गुज़रने के बाद धर्मयुग में सूर्यभानु गुप्त की एक ग़ज़ल छपी जिसका शीर्षक था 'ख़ामोशी'। यह इमरजेंसी की ख़ामोशी का बयान करते हुए भी प्रकट में ग़ैर राजनीतिक कविता/ ग़ज़ल थी। मैंने धर्मयुग के रंग और व्यंग्य स्तम्भ में इस रचना पर एक पैरोडीनुमा रचना लिखी जो वैसे तो बहुत साधारण थी; किंतु उसके साथ में एक टिप्पणी थी कि सूर्यभानु गुप्त की उक्त रचना पर यह एक प्रतिक्रिया है; पर स्पष्ट कर दूँ कि इन पंक्तियों का लेखक प्रतिक्रियावादी नहीं है। उन दिनों अनेक लोगों को प्रतिक्रियावादी बता कर जेल में डाल दिया गया था; इसलिए यह एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी थी। भारतीजी ने टिप्पणी के साथ रचना छाप दी। स्मृति के अनुसार कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं-

गुप्तजी की ग़ज़ल है ख़ामोशी
खूब ऊँची अकल है ख़ामोशी
एक दर्जन भर शेर मारे हैं
खूब प्यारा कतल है ख़ामोशी
मेरे समुदाय में सभी के लिए
ढेर-सा कौतुहल है ख़ामोशी

और इसी तरह के साधारण सी तुकबन्दियों की कुछ पंक्तियाँ और थीं। बाद में मुझे लगा कि एक अच्छी-ख़ासी रचना पर धर्मयुग में पैरोडी लिखना ठीक नहीं

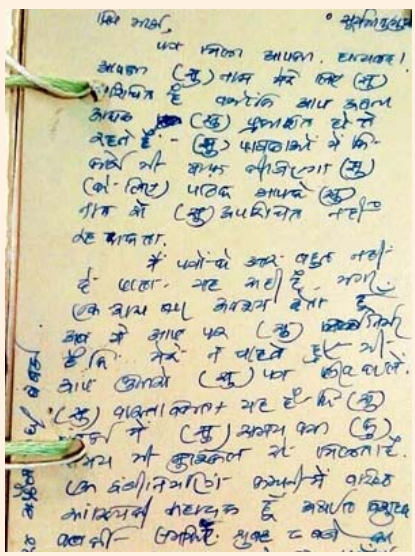

हुआ। मैंने लगभग क्षमाप्रार्थी भाव में गुप्तजी को पत्र लिखा। किसी उत्साह में उस पत्र में कई बार 'सु' शब्द का अतिरेक हो गया। लगभग उसी भाव में उनका उत्तर भी मिला जो दिया जा रहा है।

सूर्य भानु गुप्त
प्रिय भाई
पत्र मिला आपका, धन्यवाद।

आपका [सु] नाम मेरे लिए [सु] परिचित है क्योंकि आप इतना अधिक [सु] प्रकाशित होते रहते हैं - [सु] पत्रिकाओं में कि कोई भी, माफ कीजिएगा [सु] [के लिए] पाठक आपके [सु] नाम से [सु] अपरिचित नहीं रह सकता।

मैं पत्रों के उत्तर बहुत नहीं दे पाता, यह सही है, मगर एक बार अवश्य देता हूँ, अब ये आप पर [सु] निर्भर है कि मेरे न चाहते हुए भी आप मुझसे [सु] पत्र लिखवा लें। [सु] वास्तविकता यह है कि बम्बई में [सु] समय क्या [कु] समय भी मुश्किल से मिलता है। एक इंजीनियरिंग कम्पनी में वरिष्ठ सांख्यकी सहायक हूँ, अर्थात् विशुद्ध क्लर्की समझिए। सुबह 7 बजे पर निकला शाम 7 बजे घर पहुँच पाता हूँ। दफ्तर घर से 25 मील है, लिहाज़ा अब घंटे दो घंटे जो [सु] समय बचता है उसमें बहुत से काम होते हैं- थोड़ा आराम, पढ़ना, लिखना, घर, दोस्त, और सामाजिक दायित्व, लिहाज़ा पत्र व्यवहार ज़्यादा चल नहीं पाता। आप किसी [सु] ग़लतफहमी के शिकार न हो जाएँ इसलिए [सु] स्पष्टीकरण कर दिया। मैं साफगोई का कायल हूँ, इससे उम्र भर को आराम मिलता है।

किताबें या किताब अभी तक नहीं निकल पाई कोई। अविवाहित हूँ, मगर घर की कुछ ऐसी ज़िम्मेवारियाँ सर पर हैं कि विवाहित से भी गई गुज़री दशा है। संक्षेप में इतना ही। सानन्द होंगे सस्नेह आपका

सूर्यभानु गुप्त
24 अप्रैल 76 दो बजे

इसके बाद 1977 मैं बम्बई [तब मुम्बई का यही नाम था] प्रवास के दौरान उनके निवास पर भी गया जो दादर में था और सोजपाल काया बिल्डिंग का नाम मुझे लगभग रटा हुआ था। मुझे लगता था कि देश व्यापी ख्याति के इस कवि के फ्लैट का नम्बर, बिल्डिंग का कोई भी बता देगा पर कोई नहीं जानता था। वे शायद अपनी बड़ी बहन के साथ उनके ही फ्लैट में रहते थे। एक जगह दो लोग बैठे हुए थे तो सोचा आख़िरी बार उनसे पूछ लिया जाए। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और कहा कि अरे वह तो नहीं, ऊषा का भाई, फिर अनुमान से एक फ्लैट नम्बर बताया तब मैं उनके निवास पर पहुँचा। उस दिन मुझे अपनी लघुता का अहसास हुआ कि जब इतने बड़े कवि को उसके पड़ोसी नहीं जानते, तो मुझे कौन जानेगा। गुब्बारे की गैस निकली और मैं ज़मीन पर आ गया।

सूर्यभानु गुप्त के पुराने परिचय में लिखा है जो कई वर्षों से अद्यतन नहीं हुआ कि जन्म : 22 सितम्बर, 1940, नाथूखेड़ा (बिंदकी), जिला : फ़तेहपुर (उ.प्र.)। बचपन से ही मुंबई में। 12 वर्ष की उम्र से कविता लेखन की शुरुआत। प्रकाशन : पिछले 50 वर्षों के बीच विभिन्न काव्य-

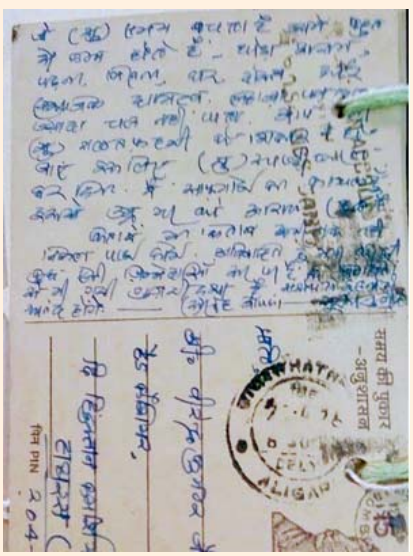

विधाओं में 600 से अधिक रचनाओं के अतिरिक्त 200 बालोपयोगी कविताएँ प्रमुख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। समवेत काव्य-संग्रहों में संकलित एवं गुजराती, पंजाबी, अंग्रेज़ी में अनूदित। फ़िल्म गीत-लेखन : 'गोधूलि' (निर्देशक गिरीश कर्नाड) एवं 'आक्रोश' तथा 'संशोधन' (निर्देशक गोविन्द निहलानी) जैसी प्रयोगधर्मा फ़िल्मों के अतिरिक्त कुछ नाटकों तथा आधा दर्जन दूरदर्शन-धारवाहिकों में गीत शामिल। प्रथम काव्य-संकलन : एक हाथ की ताली (1997), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 110 002 पुरस्कार : 1. भारतीय बाल-कल्याण संस्थान, कानपुर। 2. परिवार पुरस्कार (1995), मुम्बई। पेशा : 1961 से 1993 तक विभिन्न नौकरियाँ।

हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में गुप्तजी ने दुष्यंत कुमार से पहले लिखना और छपना शुरू कर दिया था किंतु ऐसा लगता है कि उन्हें कोई कमलेश्वर नहीं मिले जिनके बारे में दुष्यंत कुमार ने लिखा है-

मैं हाथों में अंगार लिए सोच रहा था
कोई मुझे अंगारों की तासीर बताए

और यह तासीर उनके परम मित्र कमलेश्वर जी ने बताई व सारिका में छाप कर उनकी कालजयी रचनाओं को देशव्यापी बना दिया। वहीं भारतीजी अपनी गुण ग्राहकता के अनुसार रचना की गुणवत्ता के साथ कोई समझौता नहीं करते थे। वे अपनी पसन्द के रचनाकारों की श्रेष्ठ रचनाओं को भी एक तयशुदा संख्या से अधिक का अवसर नहीं देते थे। उन्होंने किसी से कहा था कि काका हाथरसी वाली भूल अब धर्मयुग दुहराना नहीं चाहता।

सूर्यभानु गुप्त की धर्मयुग में प्रकाशित चर्चित ग़ज़ल 'ख़ामोशी'

इश्क़ की इब्तिदा है ख़ामोशी
आहटों का पता है ख़ामोशी
चाँदनी है, घटा है ख़ामोशी
भीगने का मज़ा है ख़ामोशी
काम आती नहीं कोई छतरी
बारिशों की हवा है ख़ामोशी
इस के क़ाइल हैं आज भी पत्थर
सौ नशे का नशा है ख़ामोशी
कंघियाँ टूटती हैं लफ़्ज़ों की
जोगियों की जटा है ख़ामोशी
इश्क़ की कुण्डली में छुरियाँ हैं
हर छुरी पर लिखा है ख़ामोशी
एक आवाज़ बन गई चेहरा
कान का आईना है ख़ामोशी
नैन भूले पलक झपकना भी
सोच का कैमेरा है ख़ामोशी
भीगती रात की हथेली पर
जैसे रंगे-हिना है ख़ामोशी
पेड़ जिस दिन से बे-लिबास हुए
बर्फ़ का क़हक़हा है ख़ामोशी
घर की एक-एक ईंट रोती है
बेटियों की विदा है ख़ामोशी
रूह तो दी बदन नहीं बख़्शा
किस ख़ता की सज़ा है ख़ामोशी
घर में दुख झेलती हर इक माँ की
आत्मा की दुआ है ख़ामोशी
गुफ़्तगु के सिरे हैं हम दोनों
बीच का फ़ासला है ख़ामोशी
दे गई हर ज़ुबान इस्तीफ़ा
इस क़दर लब-कुशा है ख़ामोशी
बस्तियों की हर इक अदालत में
इक रुका फ़ैसला है ख़ामोशी
रात-दिन भीड़-भाड़, हंगामे
इस सदी की दवा है ख़ामोशी
लफ़्ज़ मत फेंक ग़म के दरिया में
सब से ऊँची दुआ है ख़ामोशी
देवता सब नशे के आदी हैं
और उन का नशा है ख़ामोशी
ख़ुद से लड़ने का हौसला हो अगर
जंग का तज्रिबा है ख़ामोशी
दोस्तों! ख़ुद तलक पहुँचने का
मुख़्तसर रास्ता है ख़ामोशी
हम तो क़ातिल हैं अपने ख़ुद साहिब
तीन सौ दो दफ़ा है ख़ामोशी
हर मुसाफ़िर का बस ख़ुदा-हाफ़िज़
डाकुओं का ज़िला है ख़ामोशी
ढूँढ़ ली जिस ने अपनी कस्तूरी
उस हिरण की दिशा है ख़ामोशी
लोग तस्वीर बन गए मर कर
ज़िंदगी का सिला है ख़ामोशी
कितनी ही बार हम गए-आए
हर जनम की कथा है ख़ामोशी
कैफ़ियत है बयान के बाहर
क्या बताएँ कि क्या है ख़ामोशी
थक के लौट आईं सारी भाषाएँ
लापतों का पता है ख़ामोशी

* * *

ग़ज़लें

ख़याल खन्ना

ले रहा करवटें काल सन्त्रास का
दिन निकलने ही वाला है उल्लास का
यूँ निराशा के तम में भटकता है क्यों
दीप मन में जला आस-विश्वास का
मोह, मद, लोभ की भूख का कर दमन
कर शमन क्रोध का, काम की प्यास का
देश हित जो जिए, देश हित जो मरे
बन के उभरे शिलालेख इतिहास का
कर दिया मुष्टि भर सिरफिरों ने ख़याल
ध्वस्त वातावरण हास-परिहास का

उसी के पक्ष में थे सब समीकरण मित्रो
हुआ न झूठ का जब तक अनावरण मित्रो
विफल रहे जो निदानों के उपकरण मित्रो
हमें भी लेना पड़ी ईश की शरण मित्रो
समय को व्यर्थ गँवाना नहीं समझदारी
है मूल्यवान बहुत एक-एक क्षण मित्रो
हरेक प्रश्न का होता है कुछ न कुछ उत्तर
हर इक समस्या का भी है निराकरण मित्रो
ख़याल उसको खलेगी न शत्रुओं की कमी
तुम्हारे जैसे मिलें जिसको मित्रगण मित्रो

संपर्क : 1090 जनकपुरी
बरेली (उ.प्र.) 243122
मोबाइल : 8899151666

इण्डोनेशिया का रंगमंच / रामलीला

हिजाब वाली सीता

डॉ. अफ़रोज़ ताज

बचपन में मुझे कृष्ण जी का एक चित्र बहुत पसंद था। वह हमेशा मेरे कमरे में लगा रहता था। मेरी आठवीं कक्षा की परीक्षाएँ चल रही थीं। उस शाम में नमाज़ पढ़ने के लिए आँगन में आया मेरी अम्मी जी बोलीं, ''बेटा नमाज़ अपने कमरे में पढ़ो। हम लोग यहाँ बातें कर रहे हैं।''

मैंने कहा, ''पर मेरे कमरे में तो कृष्ण जी की तस्वीर टंगी है और मैं उसे उतारना नहीं चाहता''

अम्मी जी का सारा ध्यान मेरी ओर आ गया, हाथ के इशारे से पास बुलाया, और पूछा, ''तस्वीर उतारने की ज़रूरत क्यों है, नमाज़ के लिए?''

मैं कुछ न बोल सका। वे हँस के बोलीं, ''क्या तुम समझते हो कि कृष्ण जी तुम्हारी नमाज़ को पसंद नहीं करेंगे?''

सारा घर यह सुनकर बड़ी ज़ोर से हँस पड़ा। मेरी शर्म से आँखें बन्द हो गईं लेकिन दिमाग़ खुल गया।

इतना अच्छा कि सच्चा न लगे, इंसान की ज़िन्दगी में बहुत कम होता है ऐसा, मैं यह नहीं कहता कि नहीं होता, होता है मगर कम-कम होता है। मेरे साथ भी ऐसा हुआ जब कैरोलाइना एशिया सैण्टर से मेरा निवेदन मंज़ूर हुआ कि आप इण्डोनेशिया जा सकते हैं। मेरा इरादा था कि थाईलैण्ड और इण्डोनेशिया में, मैं वहाँ के थियेटर की जाँच करूँगा, देखूँगा कि उनके थियेटर की प्रथा कितनी पुरानी है तथा आज के समाज में उसका क्या स्थान है एवं क्या उसका कोई डोर छोर, संबंध भारत से भी है या नहीं और यदि है तो क्या ऐतिहासिक संबंध है या कि सामाजिक? उम्मीद थी कि कुछ तो मिलेगा। पुस्तकालय छानने पड़ेंगे, सड़कों पर रंगमंच की इमारतें तथा नाट्यशालाएँ तलाश करनी होंगी। जगह जगह सुनने को मिलेगा, ''क्या बात करते हो? कौन से युग की बात करते हो? किस ज़माने से आ रहे हो? थियेटर के ज़माने ख़त्म हुऐ महाश्य। इक्कीसवीं सदी में, अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं सदी की बात करते हो। कम्प्यूटर, मोबाइल का युग है यह, हर बच्चे की उँगलियों के इशारों पर यूट्यूब नाच रहे हैं। मियाँ अब कौन परवाह करता है थियेटर वियेटर की? जो मूवी देखना चाहो आपकी जेब में है। बल्कि अब तो किसी मनोरंजन को पाने की उत्सुकता ही ख़त्म हो चुकी है, जब चाहे हम अपनी मनपसंद की चीज़ देख सकते हैं। तो हम अब क्यों देखें। देखने की चाह जब होती है जब मुश्किल से देखने को मिले। तरस आता है फ़िल्म बनाने वालों पर, इधर फ़िल्म निकली, उधर यूट्यूब पर। आप बात करते हैं कि यहाँ कोई ड्रामा कम्पनी है या कोई रंगमंच का हाल है। उस ज़माने का ''दी ऐण्ड'' हो चुका है। और साथ साथ यह देश दुनिया का सब से बड़ा इस्लामिक देश है। यहाँ नाचरंग से क्या वास्ता जनाब!

Associate Professor of South Asian Languages, Literatures, and Cultures, Department of Asian Studies
Campus Box 3267 201New West, University of North Carolina, Chapel Hill, 27599
ईमेल: taj@unc.edu
मोबाइल:919-999-8192

मगर मैंने सोच रखा था कि मैं न मानूँगा, कहीं तो कुछ मिलेगा, मेरे काम से सम्बंधित। एक इण्टरप्रेटर का मैंने इन्तज़ाम कर रखा था जो मुझे गायड भी करेगा और जहाँ तहाँ आवश्यकतानुसार अनुवाद की भी मदद करेगा।

एयरपोर्ट से बाहर निकला, रिसीव करने वालों में एक हिजाब पहने लड़की मेरे नाम का साइन लिए खड़ी थी। मैंने मन में सोचा, क्या यह है मेरी इण्टरप्रेटर गायड? देखने में लगता था मुझे सीधे मस्जिद ले जाएगी कि मिस्टर नमाज़ का टाइम हो चुका है, पहले नमाज़ पढ़ो फिर तुमको मैं होटल छोड़ूँगी। मैंने हाथ हिलाया, उसने हाथ बढ़ाया हाथ मिलाने को। वह टैक्सी में ड्रायवर के बराबर बैठी, मैं पीछे बैठा, उसने मुड़कर मुस्कुराते हुए अंग्रेज़ी में कहा, ''मेरा नाम सीता है।''

मैंने कुछ ग़लत सुना शायद, मैंने पूछा, ''क्षमा कीजिए, मैंने सुना नहीं।''

वह फिर बोली, ''मेरा नाम सीता है, ... सीता फ़ातिमा।''

मैंने अपना नाम बताया, और सोचता रहा, ''इतना अच्छा कि सच्चा न लगे।''

मैंने अपना प्रोजैक्ट बताया। उसने ध्यान से सुना और बोली, ''यहाँ के थियेटर्स और नाटकों पर काम तो हुआ है मगर काफ़ी नहीं है, यहाँ के काम के हिसाब से बहुत कम काम हुआ है। दुनिया अधिकतर हमारे देश को केवल दुनिया के सबसे बड़े मुस्लिम देश के नाम से जानती है। यह तो सच है कि आबादी के हिसाब से इण्डोनेशिया दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम मुल्क है लेकिन यह सोचिए कि आपके देश भारत से अगर मुसलमानों की तुलना की जाए तो इतना बड़ा फ़र्क़ नहीं जितना कि माना जाता है। परन्तु आपका देश केवल धर्मों के नाम से ही नहीं पहचाना जाता है। उसका अपना कल्चर है, इतिहास है, कहानी है और यहाँ केवल हमारे देश को मुसलमानों की आबादी से ही पहचाना जाने लगा है।'' मैं ध्यान से सुनता रहा।

''तो हाँ, मैं कह रही थी कि दुनिया अधिकतर हमें इसी तरह पहचानती है। क्या दुनिया को मालूम है कि हम पुरानी परम्पराओं को किस तरह समेटे हुए, सजोए हुए बैठे हैं। हमारे देश में जो भी परम्पराएँ आईं यहीं की होकर रह गईं। जो ये आसमान को छूते हुए बड़े बड़े सुन्दर मन्दिर इस देश में जगह-जगह हैं, नवीं शताब्दी से यहाँ खड़े हैं। हम इनके गिरने का इन्तज़ार नहीं कर रहे बल्कि उनको सजा रहे हैं, संवार रहे हैं, उनपर हमें गर्व है।''

''यहाँ की थियेटर परम्परा भी उतनी ही पुरानी है जितने पुराने हैं ये मन्दिर। और शायद उन से भी पुरानी ये परम्पराएँ। अभी तक रंगमंच का वही ढंग और रंग है जो पहले था। इण्डोनेशिया में इस्लाम तो कल आया है यानी लगभग सोलहवीं शताब्दी में, पानी के जहाज़ों के द्वारा व्यापार के आदान-प्रदान के दौरान। अब लगभग नव्वे प्रतिशत इण्डोनेशिया के वासी मुस्लिम हैं। लेकिन इसका मतलब हरगिज़ नहीं कि वे पुराने मन्दिरों, या रामायण, या महाभारत का सम्मान नहीं करते। उन्होंने धर्म बदला है, समाज नहीं। धर्म तो हमारे मन में रहता है पर हम समाज में रहते हैं, समाज का इतिहास, उसकी परम्परा हमारा मान है।

मेरा मुँह खुला का खुला रह गया, बन्द होने का नाम ही नहीं ले रहा था।

वह बोले जा रही थी।

''आज आया है कोई थियेटर पर काम करने, बहुत दिनों के बाद...''

मैं बोल पड़ा, ''आप रामायण, महाभारत की बात कर रही थीं।''

वह खुलकर हँस पड़ी, अपना हिजाब सँभालते हुए बोली, ''जी, अब आप से बाक़ी कल बात होगी। आपका होटल आ चुका है। शाम होने को आई। आप आराम करें। कल जुमा है, जुमे की नमाज़ के बाद मैं आपको लेने आऊँगी। फिर ले चलूँगी एक ड्रामा दिखाने महाभारत पर शैडो पपिट प्ले या छाया नाटक।'' उसने मेरा सामान बड़े ढंग से उतरवाया, काऊण्टर तक साथ आई, जब चलने का समय आया, मेरे देश की तरह बड़े आदर से दोनों हाथ जोड़े, मुँह से निकला,''सलामत।''

वह जाते जाते रुकी और बोली, ''और हाँ, अगर आप यूँही घूमना चाहें, या कुछ खाना चाहें, तो होटल के उस पार एक मॉल है, कोई भी बता देगा। पूछ लीजिए, रामायण मॉल कहाँ है? बहुत बड़ी और मशहूर मॉल है। हर तरह की चीज़ें और खाना मिलेगा।''

मैं जाते हुए उसे देख रहा था और सोच रहा था, क्या नाम है, सीता फ़ातिमा। झूठ जैसा सच।

सोने से पहले टीवी खोला, कई चैनल्ज़ केवल थियेटर से जुड़े थे, गैमलान संगीत मानों मन्दिर में बड़ी-बड़ी घण्टियाँ बज रही हों। गायकी में कहीं-कहीं अज़ानों के से लहरे थे। उनका ज़मीन पर बैठकर बजाने का अन्दाज़ बिल्कुल भारतीय था। उनके संगीत में ढोलक भी शामिल होता है मगर थोड़ा और तरह से बजाया जाता है, पर देखने में वही ढोलक। वे उसे ढोलक नहीं कण्डाँग कहते हैं। मंजीरे भी हमारे जैसे। तहमद बाँधे, टोपी पहने, मंजीरे बजाते और रामायण या महाभारत के गीत गाते ये लोग बड़े भले मालूम होते हैं।

बहासा (भाषा) इण्डोनेशिया वहाँ की राष्ट्रीय भाषा है जो अरबी और संस्कृत शब्दावली का मिश्रण है जैसे वहाँ के लोग, वहाँ का कल्चर, वैसे ही वहाँ की भाषा। महाभारत, रामायण सब बहासा इण्डोनेशिया या जावा भाषा में हैं तथा इसी भाषा में मंच पर पेश की जाती हैं।

बड़ी प्यारी-प्यारी धुनों में उनकी रचनाएँ हैं। ये धुनें दिल को छू जाती हैं। उनके गायकी प्रदर्शन से जो समा बनता है उसके बारे बाद में बात करूँगा।

मैं कह रहा था कि ये दो महाकाव्य उनकी ही भाषा में पेश किए जाते हैं। भारत में छटी या सातवीं सदी में कवि भट्टी ने रामायण का पहला हिस्सा ''रावणवध'' के नाम से लिखा जो ''भट्टीकाव्य'' भी कहलाता है। सन् 870 ई. में इसी को जावा भाषा में अनुवाद किया गया। इसके बाद किसी और ने अपने ढंग से कहानी पूरी की।

पहले बहासा इण्डोनेशिया अरबी लिपी (नस्ख़) में लिखी जाती थी, अब ज़्यादातर अंग्रेज़ी लिपी (रोमन) में लिखी जाती है। इस से भाषा पर कोई असर नहीं पड़ा। उनका कहना है कि कोई भी भाषा किसी भी लिपी में लिखी जा सकती है। बिल्कुल ऐसा ही हुआ तुर्की भाषा के साथ। वह अब रोमन लिपी में लिखी जाती है। परन्तु अब भी टर्किश भाषा ही है। फिर पता नहीं क्यों हमारे यहाँ लिपी बदलने से लोग भाषा का नाम बदल देते हैं, ख़ैर, यह तो दूसरा मुद्दा है।

घण्टी बजने से आँख खुल गई। अख़बार

वाली थी या चाय वाली। टीवी अभी तक चल रहा था, सूर्य देवता अपने शबाब पर थे, पता भी न चला मैं कब सो गया, भूखा ही। सीता तो लगभग एक बजे के बाद आएगी मुझे लेने। सोचा चलो रामायण मॉल में जाकर देखा जाए, कुछ खाया जाए वग़ैरा।

बाहर चल दिया। पूछता पाछता मॉल की तरफ़। सड़कों के नाम बड़े रंग-बिरंगे और इतिहास की चुग़ली खा रहे थे जैसे सूर्योविजयन या रिंग रोड उत्तरा। जिस सड़क पर मैं खड़ा था उसका नाम था मार्गो मूल्यो, जिस पर रामायण मॉल थी। सड़कें बड़ी-बड़ी खुली-खुली साफ़- साफ़। ट्रैफ़िक के नियमों का पालन हो रहा था। औरत और मर्द दोनों बराबर ही कारें चलाते नज़र आ रहे थे। कहीं-कहीं मैंने देखा कि औरत गाड़ी चला रही है और मर्द बराबर की सीट पर बैठा है। मॉल आ चुकी थी। मॉल के एक तरफ़ मैंने एक बहुत बड़ा ट्रक खड़ा देखा और देखता रह गया। मेरी आँखों को यक़ीन नहीं आया। यह क्या लिखा था उस पर... क्या मैं भारत में हूँ?

ट्रक पर बड़ा बड़ा लिखा था तीर्त गंगा (तीर्थ गंगा)। पूछने पर पता लगा यह इस देश की पानी की सप्लाई कम्पनी का नाम है। मैं भावुक हो उठा। मेरे दिल ने चाहा मैं चीख़-चीख़ कर लोगों को बताऊँ कि मैं उस देश का वासी हूँ जिस देश में गंगा बहती है। मेरे क़स्बे से कुछ ही दूरी पर तो गंगा जी गुज़रती हैं और मैं ही हूँ छोरा गंगा किनारे वाला परन्तु मेरे देश में पानी की कम्पनी का नाम गंगा कोई कैसे रखे क्योंकि वहाँ बच्चे-बच्चे को पता है कि राम तेरी गंगा मैली। उसे सफ़ाई की बेहद आवश्यकता है।

सीता वादे के अनुसार सही समय पर मेरे कमरे पर मुझे लेने आई। इस बार वह अपनी गाड़ी लाई थी। मैं आगे उसके बराबर बैठा था ताकि ठीक से शहर देखता जाऊँ। वह बोली, ''सर, मैं आपको बराबर के एक शहर में ले जाना चाहती हूँ जहाँ छाया नाटक हो रहा है जिसको हम वयाँग कुलीत (shadow puppet show) कहते हैं। आज वहाँ महाभारत पेश की जाएगी, किसी बहुत बड़े इण्डोनेशियन कलाकार की याद में। क्या ख़्याल है?''

लोगों की इतनी माँगों के बाद भी माँग नहीं भर पाती, यहाँ तो बिना माँगे ही झोली भर गई। अन्धे को क्या चाहिए, दो आँखें। फ़ौरन कह उठा, '' अवश्य, क्यों नहीं, बहुत अच्छा ख़्याल है। क्या अभी...?''

''ज़रा आपको थोड़ा शहर के बीच से गुज़ारती हूँ ताकि आप इधर-उधर देख कर इस शहर के रंग -ढंग तथा मन भाव का अनुमान भी कर सकें।''

वह एक पुल के नीछे से गुज़री। मैंने देखा और मन खिंचता चला गया।

''क्या आप गाड़ी थोड़ा धीरे कर सकती हैं?''

इतनी सुन्दर चित्रकारी पुल के नीचे लंबी दीवार पर बनी थी कि आँखें न हटती थीं। वह अपनी गाड़ी धीरे करके मुझे बता रही थी,

''ये श्री राजा रामा की वानर सेना है, उनकी मदद के लिए, और ये हैं...''

शायद उसको पता न था कि मुझे सब पता है। वह बोली, ''हमारे यहाँ इस कथा को बड़ा मान दिया जाता है। आप देखेंगे जगह-जगह दीवारों पर, होटलों में, बाज़ारों में, मॉल्ज़ में, इस कथा के भिन्न-भिन्न प्रसंगों तथा घटनाओं पर मूर्तियों या चित्रों द्वारा रोशनी डाली गई है। यहाँ का बच्चा-बच्चा इन प्रसंगों की चित्रावली पहचानता है। यह सब इस लिए है ताकि लोगों को रामायण तथा महाभारत की महानता तथा महत्त्व का पल-पल, चलते-फिरते अहसास रहे।

मैंने अपने दाहिने हाथ की ओर बहुत बड़ी-बड़ी इमारतें देखीं। सीता फ़ातिमा ने बताया कि यह यहाँ की यूनिवर्सिटी है जिसका नाम विद्या मातृम है। देखते ही देखते एक बहुत बिज़ी चौराहा या छैराहा आ गया। हम एक बहुत बड़े गोल चक्कर से गुज़रे। चारों ओर तेज़ी से कारें गुज़र रही थीं। गोल चक्कर के बिल्कुल बीचों बीच बहुत बड़ी वीर घटोत्कच की मूर्ति विराजमान थी।

बिल्कुल सफ़ेद, शायद संगे मरमर की तराशी हुई थी। और इसी तरह अगले चौराहे पर गीता सार का, सफ़ेद पत्थर का तराशा हुआ दृश्य देखने को मिला। बहुत ही बड़े रथ पर अर्जुन और कृष्ण की बात करती हुई मुद्रा कितनी मोहक लग रही थी। अर्जुन, कृष्ण जी, तथा रथ, यह सब शायद एक ही पत्थर को काट कर बनाया गया था। इसके बाद जगह-जगह न जाने कितनी सुन्दर-सुन्दर मुर्तियाँ, छवियाँ, झाँकियाँ देखने को मिलीं कि आँखों को विश्वास न आता था....इतना प्यारा सच। इस जगह मुझे कहना पड़ेगा कि दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश जहाँ हिन्दू संस्कारों के नगीने बड़ी शानो शौकत से झिलमिला रहे हैं, यह एक आप अपनी ही मिसाल है। पुराने-पुराने मन्दिर तो नवीं सदी से खड़े ही हैं लेकिन जिन मुर्तियों का ज़िक्र मैंने अभी किया वे इतिहास के ज़माने की नहीं बल्कि आज के अधिकारियों ने सजवाई हैं। और लगातार सजाई जा रही हैं। ज़्यादातर ये देखने में बिल्कुल नई और आधुनिक हैं।

''आप क्या सोच रहे हैं?''

मैं चौंक पड़ा,''मैं... मैं यह सोच रहा था कि आपका नाम सीता फ़ातिमा क्यों है?''

''मैं समझी नहीं?

''मेरा मतलब है कि सीता और फ़ातिमा दो अलग अलग धर्मों के...''

''अलग-अलग धर्मों के हैं तो क्या हुआ? धर्म और इतिहास में उनका बराबर का महत्त्व है। दोनों ही पाक दामन हस्तियाँ हैं, दोनों ही ने अपने पति के प्रेम में कष्ट भोगे, दोनों ही अपने पिताओं की चहीती बेटियाँ थीं, दोनों ही के पिताओं ने अपनी इन बेटियों का आदर किया, दोनों ही के दो दो बेटे थे जिन्होंने बड़ा नाम किया। एक के बच्चे लव और कुश, दूसरी के बच्चे हसन और हुसैन। हज़रत फ़ातिमा और सीता जी दोनों ही हिजाब का प्रतीक थीं। हिजाब का

मतलब है लज्जा।''

मैं मन में सोचने लगा, ऐसा लगता है जैसे एक ही व्यक्ति की बात की जा रही है।

शाम होती जा रही थी, मैंने एक और अजीब बात देखी कि फ़ुटपाथ पर दोनों ओर लोग अपने परिवार सहित क़ालीनों पर बैठे, सामने छोटी-छोटी मेज़ पर रखे खाने खा रहे थे। लगभग सारी सड़कों के किनारे क़ालीनों से ढके थे। सीता बोली, ''और हाँ, मैं यह बताना भूल गई कि इण्डोनेशिया तथा मलेशिया की यह परम्परा है कि रात को जब दुकानें बंद होने लगती हैं, तो फ़ुटपाथों पर खाने के बाज़ार खुल जाते हैं। लोग अपने-अपने परिवार को लेकर खाने का समय होते ही निकल पड़ते हैं।''

मैंने देखा लोग बड़े सुकून और चाव से खाना ओर्डर कर रहे थे। कहीं-कहीं इन के मनोरंजन के लिए संगीत का प्रोग्राम भी चल रहा था। कहीं-कहीं लड़कियाँ भी पश्चिमी आर्केस्ट्रा के साथ हिजाब पहने इण्डोनेशिया और अंग्रेज़ी के गाने गा रही थीं। लगभग सभी महिलाएँ जहाँ जाओ हिजाब में नज़र आ रही थीं। लेकिन वहाँ हिजाब का अंदाज़ थोड़ा भिन्न है, पीछे अपने जूड़े से घुमाकर कपड़ा आगे लाती हैं और बड़े सुन्दर से चमकते ब्रोच के साथ उसे टाँक देती हैं। ब्रोच के डिज़ाइन भी अजीब -अजीब देखे। कहीं-कहीं ब्रोच पर नगीनों के कलश बने हुए थे, और कहीं कहीं ओम् का सा धोखा होता था। ये ब्रोच उनके व्यक्तित्व और गहनों का हिस्सा हैं।

रात के आठ बजने आए, मैंने अपने को एक बहुत बड़े टैंट के नीचे दूसरे सैंकड़ों लोगों के साथ बैठा पाया। यह वही जगह थी जहाँ हमें आज की रात महाभारत के कुछ ख़ास-ख़ास हिस्से शैडो पपिट नाटक के द्वारा दिखाए जाने वाले थे। नाटक के लिए उन्होंने अपने मोहल्ले के एक चौक में टैंट लगवाया हुआ था, जहाँ चारों ओर घर ही घर थे। सामने बहुत बड़ा मंच था जिस पर कोई पच्चीस संगीतकार हम से पीठ किए हुए बैठे थे, और मंच के बिल्कुल पीछे की दीवार एक बहुत बड़े सफ़ेद परदे की थी।

चारों ओर बेचैनी छाई हुई थी। सब अपनी-अपनी कुर्सियों पर पहलू बदल रहे थे। रात की नमाज़ पढ़-पढ़ कर लोग जल्दी-जल्दी अपनी सीटें ले रहे थे। वातावरण पर एक आध्यात्मिक रंग छाया हुआ था। पूरी रात छाया नाटक द्वारा महाभारत रचा जाएगा। शैडो पपिट को यहाँ की भाषा में वैयाँग कुलीत कहते हैं। आज की सारी रात लगभग दो हज़ार साल से भी पुरानी हिन्दू धार्मिक काव्य के नाम अर्पित की गई थी। संगीतकारों से रंगमंच भरा हुआ था, सब अपने-अपने साज़ मिलाने में लगे थे।

अचानक कोई मंच पर माइक्रोफ़ोन पर आया और कहा, ''हम बड़े अदब के साथ महाभारत के कुछ हिस्से प्रस्तुत करने जा रहे हैं।''

मेरे बराबर बैठी अनुवादक से बड़ी मदद मिल रही थी। फिर मंच पर किसी और को बुलाया गया और मेरी आँखों और कानों को यक़ीन न आया। मेरा मनचाहा सपना साकार हो रहा था। मेरी माँ अतीत की धुंध से निकल आती सी दिखाई दीं कहती हुई, देखा मैं कहती थी न? इतना सच कि झूठ लगे।

महाभारत को शुरू करने से पहले क़ुरान की कुछ आयतें माइक्रोफ़ोन पर पढ़ी जा रही थीं, औरतों ने अपने हिजाब सँभाले, बच्चे ख़ामोश हो गए, मर्दों ने अपनी टोपियाँ सँभालीं और मैं ख़ुद को न सँभाल सका।

इण्डोनेशिया, जनसंख्या के हिसाब से चीन, भारत, अमरीका के बाद दुनिया का चौथा मुल्क है, और साथ-साथ दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम राष्ट्र भी। इण्डोनेशिया का इतिहास बहुत पुराना और पेचीदा है। यह देश 13,000 से ज़्यादा द्वीपों से मिलकर बना है, जहाँ पानी के जहाज़ों का आवागमन दुनिया में सबसे ज़्यादा व्यस्त है। किसी ज़माने में जावा द्वीप बौध धर्म तथा हिन्दू धर्म के राज्यों का गहवारा था। आठवीं सदी से तेरहवीं सदी के दौरान धीरे-धीरे ये राज्य इस्लाम धर्म को अपनाने लगे। लेकिन जब तक हिन्दू धार्मिक पुस्तकें जैसे रामायण या

महाभारत जावा की संस्कृति और लोककथाओं में गहराई से समा चुकी थीं।

सोलहवीं शताब्दी तक लगभग सारा ही इण्डोनेशिया मुस्लिम देश बन गया परन्तु इन मुसिलमानों ने हिन्दू धार्मिक संस्कार को अपने अंदर बसाए रखा। बाद में ज़्यादातर इण्डोनेशिया डच राज्य के हाथों आ गया और इस के बाद जापान ने क़ब्ज़ा कर लिया। सन् 1945 ई. में दूसरे विश्व युद्ध के बाद इण्डोनेशिया को स्वतंत्रता मिली।

इस साँस्कृतिक मिश्रण के इतिहास के कारण अधुनिक इण्डोनेशिया ने अपनी राष्ट्रीय नीति को पाँच स्तंभों पर खड़ा किया है। जिसे वे ''पँचशील'' कहते हैं और ये पाँच स्तम्भ हैं धर्म, मानावता, प्रजातन्त्र, एकता, तथा न्याय।

स्टेज पर हम से दूर बिल्कुल मंच की सफ़ेद दीवार के सामने, हमसे पीठ किए हुए, शैडो पपिट शो चलाने वाला, जिसको यहाँ की भाषा में ''दालाँग'' कहा जाता है, बैठा था। और बिल्कुल उसके पीछे, एक और व्यक्ति लगभग उसकी कमर पकड़े बैठा था। उन दोनों के ऊपर ही बहुत बड़ा चमकता हुआ बिजली का लैम्प था जो मंच के परदे को और सफ़ेद कर रहा था। मंच पूरे समय खुला रहा। महाभारत के पात्र कृष्ण, अर्जुन, भीम, तथा द्रोपदी इत्यादि कहाँ थे, मालूम नहीं। हाँ, मगर दूर मंच के सफ़ेद परदे के बिल्कुल नीचे दोनों सेनाओं की रंग बिरंगी काग़ज़ी पुतलियाँ एक दूसरे के सामने युद्ध को तैयार क़रीने से लगी थीं। जब कभी नया पात्र मंच पर लाया जाता दालाँग (पपिट वाले) का सहायक जो पीछे बैठा होता लपक कर पीछे से वह पात्र उसके हाथ में पकड़ा देता। पूरी रात दालाँग ही सब के संवाद बिना रुके ज़बानी बोले जाता यानी कि उसके सीने में सारी महाभारत बसी हुई थी। पपिट वाले (दालाँग) का नाम था पाक पुर्बो (प्रभू)।

पपिट वाले, पाक प्रभू के दाईं ओर रंग बिरंगे सुन्दर कपड़े पहने चार महिलाएँ बैठी थीं। जैसे ही गैमलान संगीत का आलाप शुरू हुआ चारों महिलाएँ ऊँची सुरीली मद भरी आवाज़ में कोरस गा उठीं। पहले ही स्वर में माहौल पर नशा छा गया। सारे दर्शक देखते रह गये,और मैं उन्हें देखता रह गया। मैं दर्शकों की आयु की रेंज से काफ़ी प्रभावित हुआ। दर्शकों में, जिनको कई घण्टों पहले सो जाना चाहिए था, बच्चों से लेकर बुज़ुर्ग लोग, जो लगभग सौ साल तक के होंगे, अपनी पूरी आँखें खोले बिना हिले बैठे हुए थे। पपिट वाले के हाथ हवा में मशीन की तरह चल रहे थे। पल-पल में पात्र आते, चले जाते, पपिट वाला अपने दोनों हाथों से अलग-अलग दो, तीन, चार, कभी-कभी पाँच पात्रों को प्रस्तुत कर रहा था।

दर्शकों में सन्नाटा छाया हुआ था। पात्र परदे पर कभी बड़े हो जाते, कभी छोटे। उसके हिलाने और बोलने से पात्रों में जान पड़ जाती। मैंने देखा मेरे बराबर के बुज़ुर्ग पूरी रात एक ही मुद्रा में बैठे रहे, न हिले-डुले, न पहलू बदला, शायद वे आत्मविस्मृति में थे। बीच-बीच में दर्शकों को बीस से तीस साल तक की लड़कियाँ, लड़के चहरों पर मुस्कान लिए, हाथों में थालियाँ लिए, मिठाई या नमकीन बाँटते रहे, चाय, शर्बत या कॉफ़ी पिलाते रहे। पूरी रात यह जश्न चलता रहा। और आख़िरकार सुबह की नमाज़ की अज़ान चारों ओर गूँजने लगी और हमें सुबह का पता भी न चला, मेरे कानों में गूँज रहे थे गीता सार, अर्जुन और कृष्ण के संवाद, भीम और दुर्योधन की तकरार।

इण्टरव्यू के दौरान एक कलाकार ने भौंएँ चढ़ाकर मेरी बात का जवाब देते हुए कहा, ''आपकी यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि महाभारत से पहले क़ुरान सुन कर आप को आश्चर्य हुआ। अरे भाई, क्यों? क्या इस्लाम नहीं कहता कि कोई भी अच्छी बात को शुरू करने से पहले, ख़ुदा के फ़रमान को याद करो, उसका नाम लो। महाभारत तो अच्छी चीज़ों से भरी पड़ी है। क्या आपने भगवद्गीता पढ़ी है, क्या गीता सार नहीं पढ़ा? कितनी चीज़ें मिलती हैं क़ुरान और इन हिन्दू महाकाव्यों में। दोनों ही हमारे लिए कर्म, कर्तव्य, सही अमल, और अल्लाह से रज़ामंदी तथा धर्म का पथ प्रदर्शन करते हैं।''

ये महोदय बोलते चले गए, ''यह सब समय की बात है, यदि हम अपने पूर्वजों के समय में पैदा हुए होते, तो उनसे हमारी भावनाएँ जुड़ी होतीं। पर आज हम उनके नाम भी नहीं जानते। यदि श्री रामचंद्र आज होते तो क्या हज करने न जाते?''

मैंने मन में सोचा बात समझ में आती है, गुरू नानक जी भी तो हज करने गए थे।

फिर वे बोले, ''यदि पैग़म्बर मुहम्मद राम जी के ज़माने में होते तो क्या वे राम जी के चाहने वाले या मित्र न होते, यह सब समय की बात है, बोलो?''

मेरा मुँह सिल गया, आज के दौर में भी इतनी अच्छी बातें, वाह!

मैं सोचे जा रहा था कि हमारे देश में इस तरह की बातें एक ही समय में कुछ हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को नाराज़ कर सकती हैं। मगर यह कलाकार महोदय ये सब मुझे बड़े गर्व और आत्मविश्वास के साथ समझा रहे थे। हालाँकि मुझे भी यह लेख लिखते में चिन्ता है कि कहीं मैं किसी को नाराज़ न कर दूँ। लेकिन हाँ, मैं इतना अवश्य कहूँगा कि धर्मों के बीच में अनदीखी दीवार वहीं खिंची होती है, जहाँ दो धर्म अपने-अपने तरीक़े से रहना चाहते हैं पर साथ-साथ ही रहना चाहते हैं। इण्डोनेशिया में ज़्यादातर एक ही धर्म के लोग हैं तो वे क्यों हों असुरक्षित? दूसरी बात यह कि हमारे देश में धर्म को राजनैतिक रंग भी दिया जाता है।

मैं चौंक पड़ा, जिसका मैं यह इण्टरव्यू ले रहा, उसने स्वयं मुझसे सवाल पूछा, ''अब आप पूछेंगे कि मेरे पिता का नाम श्री राम हुसैन क्यों है।''

मेरा दिमाग़ चकरा गया।

''यह कैसे हो सकता है? ... सच?''

''इस में झूठ क्या है?'' वे बोले, ''राम और हुसैन दोनों ही सत्य के लिए लड़े। श्री

राम रावण से और इमाम हुसैन यज़ीद से। रावण लंका का राजा था तो यज़ीद सीरिया का। श्री राम की याद में दस दिन राम लीला और इमाम हुसैन की याद में दस दिन मजलिसें होती हैं। दोनों में ही वीरता और सच्चाई की कविताएँ पढ़ी जाती हैं। दसवें दिन को श्री राम के चाहने वाले दशहरा और इमाम हुसैन के चाहने वाले अशरा कहते हैं। दोनों समूह एक ही तरह से राम या हुसैन के दसवें दिन की याद में तलवारें लेकर जुलूस निकालते हैं। आप तो भारत के हैं। क्या आप नहीं जानते? क्या आप को ऐसा नहीं लगता कि राम और हुसैन एक ही व्यक्तित्व के दो रूप हैं।''

मुझे बचपन में अपनी लिखी एक कविता का शेर याद आ गया।

राम था भोला पंछी जिसने काँटों पे उमर गुज़ारी

अमन का पंछी था हुसैन जो ले गए मार शिकारी

बिना साँस लिए वे बोले जा रहे थे, ''हमारे नबी मुहम्मद साहब ने बताया है कि भगवान् ने एक लाख चौबीस हज़ार नबी या पैग़म्बर दुनिया में भेजे हैं। ये पैग़म्बर केवल हज़रत आदम से मुहम्मद साहब तक ही नहीं। क़ुरान में केवल पच्चीस पैग़म्बरों के नाम दिए हैं। बाक़ी वे कहाँ हैं, जिनको हम नहीं जानते। क़ुरान में कहीं नहीं लिखा है कि श्री राम, श्री कृष्ण, या श्री गणेश इत्यादि पैग़म्बर नहीं हैं या हैं। तो हम कौन हैं उनको अपने से अलग करने वाले?''

दालाँग पाक प्रभू या उनके साथी कलाकारों की तरह वहाँ के ज़्यादातर लोगों के विचार भी ऐसे ही थे। पाक प्रभू ने बताया, ''हमारे शहर का नाम सोलो है जो सूराकार्ता कहलाता था। हमारे शहर से एक घण्टे की दूरी पर हर शाम रामायण बैले होता है। उस शहर का नाम योग्याकार्ता है जो बाद में जोग्जाकार्ता हो गया। इस से हज़ारों

साल पहले इसी का नाम अयोध्या था। उनका कहना था कि लोग समझते हैं कि श्री रामचंद्र जी यहीं पैदा हुए थे, वैसे थाईलैंड में भी एक शहर का नाम अयूथाया है और वहाँ के लोग भी यही सोचते हैं।''

मैं सोचता हूँ राम का दुनिया में आना महत्त्वपूर्ण है, स्थान नहीं। मुझे याद आया मैंने थाईलैंड के शहर अयूथाया में भी बड़े-बड़े टूटे महल देखे जो आधे-आधे ज़मीन में गढ़े थे।

जोग्जाकार्ता जावा रंगमंच कला का एक और प्रसिद्ध केन्द्र है। जोग्जाकार्ता की एक बड़ी रंगशालाओं में हज़ारों लोगों के लिए राम कथा प्रस्तुत की जा रही थी। यह प्रम्बनन मन्दिर का इलाक़ा शिखरों से सजा हुआ था जहाँ हर शाम यह रामलीला होती है। मुझे बचपन की रामलीलाएँ याद आ गईं। वह बेशक और बात थी। नौटंकी के रूप में रामलीला खेलना अपने इतिहास से जुड़कर रहनेवाली बात है। पर आज समय बदल चुका है। टैक्नालौजी बदल चुकी है, तो क्यों नहीं हम अपने देश में रामलीलाओं को परिष्कृत बनाते। अब तो औरत भी स्टेज पर आ सकती है तो क्यों अभी लड़कों को सीता बनाने की प्रथा बाक़ी है। क्यों हम अभिनय स्तर को ऊपर नहीं उठाते। जब भारतीय सिनेमा का स्तर इतना ऊँचा हो चुका है तो क्यों नहीं रामलीलाओं को परम्पराओं से आगे ले जाया जाता। इन परम्पराओं को किताबों में सुरक्षित किया जा सकता है।

इण्डोनेशिया इन परम्पराओं से आगे निकल चुका है। रामायण बैले के अभिनय का स्तर बहुत ऊँचा हँ। एक-एक सीन दिल को छू जाता है। संगीत, लाइट, अभिनय तथा नृत्य मुझे बहुत प्रभावित कर रहे थे। पश्चिमी बैले की तरह से हर कलाकार बहुत अच्छा नृत्य भी जानता था।

मेरे बचपन की रामलीलाओं में हनुमान जी का अंगूठी लाने वाला दृश्य मुझे और मेरे दोस्तों को बड़ा हँसाया करता था क्योंकि हनुमान जी जोकर ज़्यादा, वफ़ादार सेवक कम दिखते थे।

इसी सीन को मैंने इण्डोनेशिया के रामायण बैले में देखा तो आँसू ही न रुकते थे, संगीत के साथ-साथ सीता की बेचैनी और अंगूठी देखते है सीता का तड़प उठना.... मेरी रोते-रोते आवाज़ निकल पड़ी। मैंने इधर-उधर देखा दर्शकों में सन्नाटा था औरतें चुपके-चुपके सिसक रही थीं और अपने हिजाब से आँसू पोंछती जाती थीं।

अन्तराल में सीता फ़ातिमा हमें स्टेज के पीछे ग्रीन रूम में ले गई जहाँ उसने हमें कलाकारों से मिलवाया वहाँ राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, रावण, सब एक-एक करके हम से मिले। लक्ष्मण का रोल करने वाला बड़ा प्रतिभाशाली अभिनेता था जो सदेव राम जी से अपनी आत्मा जोड़े हुआ था। उसके अभिनय में उसकी आत्मा उसके भाई श्री राम से साफ़ जुड़ी दिखती थी। उसने बताया हमारे परिवार में सभी पुरुष लक्ष्मण का अभिनय करते आए हैं, अलग-अलग शहरों में। उसका नाम विष्णु था, पुरा नाम मुहम्मद विष्णु।

मैंने देखा थोड़ी देर में सब पात्र साथ-साथ एक पंक्ति में खड़े हो गए, राम, लक्ष्मण, हनुमान, रावण तथा वानर सेना। हमारी गाईड सीता ने बताया कि ये लोग हर रात अन्तराल में ही रात की नमाज़ पढ़ते हैं। हमें जाना होगा। मैंने पूछा, ''क्या आप भी अपनी भाषा में इसे नमाज़ कहती हैं?''

''क्यों नहीं,'' वह बोली, ''वैसे यह भी तो संस्कृत भाषा से बना है। नमस का अर्थ है किसी के सामने झुकना या आदर करना, इसी से नमाज़ बन गया।''

मैं वानर सेना को नमाज़ पढ़ते देखता रहा।

वानर सेना पर निर्भर करता हुआ एक प्रकार का नाटक इण्डोनेशिया में और भी प्रसिद्ध है, ''केचक'' के नाम से। इस में अधिकतर कलाकार बंदर की भूमिका करते हैं, वही अपने मुँह से संगीत और ताल देते हैं, केवल लूँगी बाँधे, घेरा बनाए स्टेज पर रहते हैं।

एक सीन दिखाया गया जिस में हनुमान जी को लंका में पकड़ लिया जाता है और

लंका के लोग हनुमान जी की पूँछ में आग लगा देते हैं और यहीं ''backfire'' हो जाता है कि हनुमान जी इसी जली हुई पूँछ से रावण की लंका जला देते हैं।

अगले दिन मेरे जाने का समय आ चुका था। इण्डोनेशिया की एयरलाईन से मैं वापस आ रहा था, जिसका नाम गरुडा है। सीता फ़ातिमा मुझे एयरपोर्ट तक छोड़ेगी। उसका विनम्र स्वर, उसका आत्मविश्वास, उसकी आँखों में हया से भरी अपनाइयत, मन मन्दिर में घण्टियाँ सी बजाता उसके हिजाब के ब्रोच का घुँघरू बड़ा याद आएगा। मैंने सोचा टिप के साथ-साथ चलते-चलते उस से कुछ मन की बात कहता चलूँगा।

''कल मैं आपको लेने आ रही हूँ।'' कहकर उसने हाथ जोड़ कर सलामत कहा। मैंने उसकी ओर देखा, शायद उसने मेरी आँखें पढ़ ली थीं। कितनी समझदार थी वह! अगले दिन वह आई मुझे लेने। उसने कहा, ''मैंने सोचा चलते-चलते आपकी मुलाक़ात अपने पति और बच्ची से भी करवाती जाऊँ। वे नीचे खड़े हैं।''

आँखों में आँसू लिए हुए मैं यह कहे बिना न रहूँगा कि छाया नाटक, बैले और केचक, ये तीनों नाटकीय शैलियाँ ''पंचशील'' अर्थात् इण्डोनेशिया के पाँच बुनियादी सिद्धाँतों को प्रोत्साहित करने हेतु हिन्दू अनुश्रुति का प्रयोग करके शुभ-अशुभ के बीच के संघर्ष से परे, वे तीनों शैलियाँ अपनी नाटकीय सहायता से एकता के साँस्कृतिक मूल्य, सामाजिक न्याय तथा मानवतावाद का स्पष्टीकरण करती हैं जो अलग-अलग सम्भव धर्मों के बीच सहास्तित्व या पुल बनाती हैं, न केवल मंच पर ही बल्कि दैनिक जीवन में भी।

मैं तो सिर्फ़ नाटक की रिसर्च के लिए गया था यहाँ तो पीतल की तलाश में सोना मिल गया, इतना अच्छा कि सच्चा न लगे।

***

सुधियों के पन्नों से -माश्की काका

शशि पाधा

मन के किसी कोने में रखी पिटारी में कई छोटी-छोटी गुथलियाँ सँभाल के रखी हैं। हर गुथली में उन दिनों की मधुर स्मृतियाँ हैं जिन्हें बाँटने में संकोच भी होता है और कोई सुनने वाला भी नहीं मिलता। किन्तु मैं उन्हें कभी कभार अपने एकांत पलों में खोल लेती हूँ, उनसे बतियाती हूँ, उनसे खेलती हूँ और फिर बड़ी रीझ से उन्हें फिर से उनकी गुथली में बाँध के रख देती हूँ। यह मेरे बचपन की धरोहर है जिससे मुझे अपने होने का अहसास हो जाता है। मैं हूँ - यह मैं जानती हूँ पर जो मैं बचपन में थी मैं उसे भी खोना नहीं चाहती। इसीलिए वो पिटारी मेरी सब से प्रिय निधि है।

तब मैं छोटी थी ---बहुत ही छोटी। उन दिनों घर गली मोहल्लों में होते थे और हर बड़ी गली किसी बड़ी सड़क से जुड़ी होती थी। हमारी गली का नाम था -पंजतीर्थी। जम्मू शहर के बिलकुल उत्तर में 'तवी' नदी बहती है और इसी नदी के ऊँचे किनारे पर बनी चौड़ी सड़क के अंदर थी पंजतीर्थी। महाराजा हरी सिंह का राज महल इस सड़क के एक छोर पर था और दूसरे छोर पर थी 'मुबारक मंडी'। इसी मंडी में बड़ी शान से खड़े थे पुराने महल जो इस पीढ़ी के पुराने राजाओं के वैभव का प्रतीक था। मंडी के बीचों-बीच संगमरमर की सीढ़ियों वाला एक सुन्दर सा बाग़ था। इस बाग़ में कई तरह के फ़व्वारे लगे थे। चारों ओर खुश्बूदार पेड़ भी थे। इन सभी पेड़ों में से मुझे मौलश्री का पेड़ बहुत पसंद था ;क्यूँकि उसके फूलों की खुश्बू सब से अलग थी। इसकी खुश्बू के आगे मुझे सारे इत्र फीके लगते हैं। इस मंडी और राजमहल के आस- पास थे दो बाज़ार। एक का नाम था धौन्थली और दूसरा था पक्का डंगा। इन दोनों बाज़ारों की एक विशेषता थी। दोनों पत्थर के बने थे। यानी सड़कें तो तारकोल की थीं, किन्तु जम्मू के सारे बाज़ारों में पत्थर लगे हुए थे। गाड़ियाँ तो चलती नहीं थी इन बाज़ारों में और उन दिनों न तो स्कूटर थे न धुआँ छोड़ने वाले अन्य वाहन। फिर भी दिन में दो बार इन बाज़ारों के पत्थरों पर पानी का छिड़काव होता था और वो छिड़काव करने वाले थे हमारे प्यारे 'माश्की काका'। उनका नाम क्या था, मैं नहीं जानती। थोड़े से भारी शरीर वाले माश्की काका अपनी मश्क में पानी भर कर बाज़ार के बीचों -बीच चलते जाते

संपर्क:10804, Sunset Hills Rd, Reston VA, 20190, USA.
मोबाइल:2035896668
ईमेल : shashipadha@gmail.com

और दोनों और मश्क के मुँह से पानी फेंकते जाते। अमूमन उस समय हम या तो स्कूल जा रहे होते या आ रहे होते। मुझे याद है काका सब बच्चों के साथ खिलवाड़ भी करते रहते। इधर-उधर पानी छिड़कते-छिड़कते वो मश्क को इतनी जोर से गोल गोल घुमाते की बच्चों पर छींटे पड़ते। सारे बच्चे खिलखिला कर हँस देते और उनके पीछे-पीछे चलते हुए यही कहते, ''काका! पानी फेंको न और, अभी मज़ा नहीं आया।''

मुझे याद है कभी-कभी काका खड़े हो जाते बीच बाज़ार और हम बच्चों से कहते, ''देखो, पानी बहुत मूल्यवान है, इसे व्यर्थ में नहीं गंवाना चाहिए। नहीं तो बादल, नदिया और समन्दर सब हमसे रूठ जाएँगे और फिर सूख जाएँगे।'' हमें उनकी बातों की समझ तो आती नहीं थी। भला बादल या नदिया कैसे सूख सकते हैं? और समन्दर तो हमने देखा ही नहीं था तो उसके विषय में हम क्या निर्णय ले सकते थे। हाँ, उनकी बातों से एक बात झलकती थी कि उनको पानी से बहुत लगाव था। शायद वे शहर के उत्तरी किनारे में बहती 'तवी' नदी का पानी अपनी मश्क में भर कर लाते थे। और उस नदी तक पहुँचने के लिए नीचे ढल कर जाना पड़ता था। या वे हम सब को जल संकट के विषय से अवगत कराना चाहते थे।

जब मैं बहुत छोटी थी तो मश्क का आकार और मुँह देख कर थोड़ा डर सी जाती थी। एक बार भिश्ती काका से पूछ ही लिया था मैंने, ''काका आपने किस चीज़ का थैला बनाया है? (मुझे उनकी मश्क थैले जैसी ही लगती थी)

हँसते हुए काका ने बताया था कि जब कोई बकरी बूढ़ी होकर मर जाती है तो उसकी खाल से हम यह थैला बना लेते हैं। फिर इसमें पानी भर कर बाज़ार के पत्थरों पर छिड़काव करते हैं। उन दिनों यह बातें समझ नहीं आती थी। पर अब लगता है कि पत्थरों पर पड़ी धूल- मिट्टी न उड़े, इसी लिए छिड़काव होता होगा। राज महल से मंडी तक आने वाली बड़ी सड़क पर तो दिन में तीन- चार बार काका इधर से उधर आते-जाते अपनी मश्क से पानी छिड़कते रहते।

काका मुस्लिम थे, यह मेरे पिता ने मुझे बताया था। बहुत बाद में मुझे पता चला था कि उनकी कोई अपनी सन्तान नहीं थी। वो हम सब बच्चों के साथ ही खिलवाड़ करके अपना जी बहला लेते थे। कभी- कभी वो हम बच्चों में संतरी रंग की गोलियाँ (टॉफियाँ) बाँटते थे। शायद तब उनकी ईद होती थी। हाँ, एक बात और याद आती है कि बाज़ार के कृतज्ञ दुकानदार उन्हें कुछ पैसे देते थे जिसे आज के समय में 'टिप' कहा जा सकता है।

उनका नाम मुझे याद नहीं। वो मेरा नाम कैसे जानते थे, मुझे पता नहीं। पर जब भी वो मुझे देखते तो मुस्कुराते हुए कहते, ''गुड्डी! तुसाँ दूर उड्ड जाना, फेर असाँ नेई मिलना''। (गुड़िया! तूने बहुत दूर उड़ जाना और फिर हमने नहीं मिलना) शायद उन्हें पता था कि मेरे माता- पिता शहर से दूर एक नया घर बनवा रहे थे और वो हम से बिछुड़ने का दर्द कुछ इसी तरह ब्यान करते थे।

हम जम्मू का पुराना शहर छोड़ कर नई जगह 'गाँधीनगर' आकर बस गए। इस बीच वो बाज़ार भी तारकोल के बन गए। अब सड़कों पर पानी का छिड़काव शायद मयुन्स्पैलिटी की गाड़ियाँ करने लगीं। या इसकी आवश्यकता ही नहीं होती होगी। समय जो इतना बदल गया था। कुछ चीज़ों का कोई महत्त्व नहीं रह गया था।

मेरे बड़े होते-होते माश्की काका कहाँ खो गए, मुझे पता ही नहीं चला। लेकिन मेरी सुधियों की किसी पिटारी में वो सदा रहे। कभी-कभी मुझे लगता है कि मेरा और उनका संबंध भी रविन्द्र नाथ टैगोर की कहानी 'काबुली वाला' की 'मिनी' और 'काबुली वाला' की तरह था। वे ठीक ही तो कहते थे ---गुड्डी तुसाँ उड्ड जाना------ मैं तो हूँ, किन्तु मेरे माश्की काका समय के पंख लगा कर कहीं उड़ गए। अब कभी-कभी नभ में उड़ते बादलों में उनको देख लेती हूँ। वो वहीं होंगे, अपनी मश्क के साथ, धरती पर जल का छिड़काव करते हुए.....

***

(मैंने इस रचना में 'भिश्त' के स्थान पर 'मश्क' शब्द का प्रयोग किया है। जम्मू में हम सब लोक भाषा में 'भिश्त' को 'मश्क' ही कहते थे और भिश्ती को कहते थे 'माश्की'।)

लघु कथा

एक लाश-एक चेहरा

अमरेंद्र मिश्र

अमूमन इस चौराहे पर न तो कभी इतनी भीड़-भाड़ दिखी न ही यह शोरगुल। इस शहर का यह एक एकांत चौराहा है, जहाँ लगभग हर समय जून की दुपहरी-सा सन्नाटा बजता रहता है।

लगभग छ:महीने बाद इस चौराहे से गुज़रते हुए मैंने वही दृश्य देखा, जैसा एक बार त्यागी चौक पर देखा था। एक आदमी की लाश, खून से लथपथ और उसे घेरे हुए स्थाई निवासी।हो सकता है, इसे स्थाई लोग पहचानते हों, पर जब पुलिस ने इसका नाम पूछा, तो किसी ने जवाब नहीं दिया।

'लाश को लावारिस घोषित किया जाए।' इंस्पेक्टर ने अपने साथी को आदेश दिया।

इस बीच भीड़ को चीरता एक आदमी इंस्पेक्टर के सामने खड़ा होता बोला-'नहीं हुजूर, नहीं, यह लाश लावारिस नहीं। दरअसल यह वही नवयुवक है, जिसने सबके सामने यहाँ से चार किलोमीटर दूर धरसावाँ में हुए रेत माफियायों का नाम उजागर किया था। यह लावारिस नहीं। यह सबका भाई था। सब जानते थे इसे, पर पता नहीं क्यों, कोई भी इसे पहचान क्यों नहीं रहा?

जिसने यहाँ के स्थानीय लोगों को इतना निर्भीक बनाया, वही लोग डरपोक क्यों बन गए?

इंस्पेक्टर ने लाश को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया।

***

संपर्क: संपादक 'समहुत', 4/516 पार्क एवेन्यू, वैशाली, गाजियाबाद-201010
amarabhi019@gmail.com

13 जून1937 - 24 मई 2018

ग़ज़लकार प्राण शर्मा

उषा राजे सक्सेना

'देखती ही रह गईं आँखें ज़माने की राम जाने किस दिशा में उड़ गया पंक्षी।' ठीक अपने इस अशआर की तरह प्राण शर्मा ने 24 मई 2018 को शाम 5.15 को कॉवेन्ट्री के अस्पताल में देह त्याग दिया।

प्राण शर्मा उदार हृदय, समृद्ध एवं धनी व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनका जन्म 13 जून 1937 में वज़ीराबाद (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। बचपन में तुकबंदी करना और फिल्मी गीतों की तर्ज़ पर मज़ाकिया गीत बनाकर मित्रों और परिवारवालों को हँसाने में उन्हें खूब आनंद आता था। उनकी पत्नी पुष्पा जी बताती हैं, संभवत: इसीलिए प्राण जी के पिता जी उन्हें प्यार से 'प्रानो' बुलाते थें। प्राण जी की संगीत एवं सृजन में रुचि देख कर उनके पिता जी ने उन्हें शास्त्रीय संगीत की शिक्षा दिलवानी शुरू की परंतु वह अधूरी ही रही.....

भारत विभाजन के दौरान आपका परिवार दिल्ली आ गया फिर वहीं आपकी बाकी की शिक्षा-दीक्षा हुई। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. हिंदी और बी.एड किया। इसी बीच आप मुंबई अपने चचेरे भाई के पास फिल्मों में किस्मत आजमाने गए। वहाँ प्रवेश तो नहीं मिला पर वहीं किसी महफिल में सुनाई उनकी एक ग़ज़ल को मुंबई के एक शायर ने संगीतबद्ध कर नाम कमा लिया। मुंबई से लौटने के बाद इधर-उधर के चक्कर में न जाकर आपने शिक्षण कार्य के साथ अपना मन गंभीर पठन-पाठन और लेखन को समर्पित कर दिया।

सर्व प्रथम उन्होंने कहानी विधा अपनाई। उन्होंने 'नीच कहीं का' कहानी लिखी जो दिल्ली और पंजाब की पत्र-पत्रिकाओं में छपी और सराही गई। 1961 में आपको भाषा विभाग, पटियाला द्वारा आयोजित अखिल भारतीय टैगोर निबंध प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार मिला। 1965 में आप लंदन आ गए। यहाँ भी उन्होंने शिक्षण कार्य करना चाहा किंतु उन्हें शिक्षण कार्य नहीं मिला। अंत में उन्होंने कॉवेन्ट्री में बस कंडक्टर की नौकरी स्वीकार कर ली जिसका गहन अनुभव उन्होंने अपनी कहानी 'पराया देश' में बड़ी खूबसूरती से बुना है। यह कहानी प्राण जी की हस्ताक्षर कहानी है जिसे 1971 में भारत की साहित्यक पत्रिका कादम्बिनी ने कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत किया। बाद में यही कहानी 1999 में ब्रिटेन के प्रथम प्रवासी भारतवंशी संग्रह- 'मिट्टी की सुगंध' में संग्रहित हुई जो आज भी चर्चा का विषय है। 1986 में ईस्ट मिडलैंण्ड आर्टस, लेस्टर- यू.के के ग़ज़ल प्रतियोगिता में आपको प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भारत के लब्ध प्रतिष्ठित शायर बालस्वरूप राही लिखते हैं 'विदेशों में बसे ग़ज़ल के बेशुमार आशिक़ों में जनाब प्राण शर्मा का मुक़ाम बहुत उँचा है....हर देश का अपना माहौल होता है और वहाँ के निवासियों के अपने तजुर्बे। प्राण शर्मा ने अपने तजर्बात और जज़बात

संपर्क: 54, Hill Road, Mitcham.
Surrey CR 4 2 HQ, UK
ईमेल: usharajesaxena@gmail.com

आमफ़हम भाषा में इतनी ख़ूबसूरती से हिंदी ग़ज़लों में उतारे हैं कि वे हमारी अनुभूति और याददाश्त का हिस्सा बन जाते हैं।' कहना न होगा कि ऐसे कलमनवीस को सम्मानित कर कोई भी संस्था गर्व महसूस करेगी। अत: यू.के. हिंदी समिति ने 2003, नॉटिंघम की संस्था 'काव्य-रंग' ने 2013 और भारतीय उच्चायोग लंदन ने उन्हें 2017 में 'हरिवंशराय बच्चन' पुरस्कार से अलंकृत करके वस्तुत: स्वयं को सम्मानित किया।

प्राण शर्मा का पहला मुक्तक संग्रह 'सुराही' सोनांचल साहित्यकार परिषद-सोनभद्र (रॉबर्टस गंज) उत्तर प्रदेश से 1995 में छपा। 2004 के आस-पास उनकी ग़ज़लों की पाँडुलिपि तक़रीबन तैयार हो चुकी थी। प्राण जी की ज़बरदस्त ख़्वाहिश थी कि अब उनकी ग़ज़लों की किताब भी प्रकाशित हो जाए। पर वे यह भी जानते थें कि आज के बेरहम वक्त में कविता की पाँडुलिपि एक खूबसूरत लड़की तरह होती है जिसके छपने के लिए प्रकाशक रूपी पति को भारी दहेज भी देना पड़ता है। प्राण शर्मा एक खुद्दार इन्सान थे। किसी गुण-ग्राहक प्रकाशक के इंतज़ार में उन्होंने पाँडुलिपि तैयार कर के रखी हुई थी।कई प्रसंशकों ने उन्हें दिलासा दिलाई कि वे उनकी किताब छपवाएँगे परंतु वे दिलासाएँ सिर्फ़ दिलासाएँ ही रहीं। वे उदास हो चुके थे और उन्होंने फ़ोन पर एक दिन मुझे, 'दुनिया को समझना अपने बस में नहीं, दुनिया तो है अनबूझ पहेली....' नामक ग़ज़ल के कुछ अशआर सुनाए। मुझे उनके जद्दोजहद का पता था। अत: मैंने कोई देरी नही लगाई और उनकी पाडुलिपियाँ उनसे लेकर डॉ. कुँअर बेचैन से बात की। डॉ. कुअँर बेचैन ने अनुभव प्रकाशन से बात की और इधर मैंने मेधा बुक्स से और बात बन गई। पुस्तकें ऐसी थीं कि प्रकाशक छापने तैयार हो गए।कुँअर बेचैन ने सहर्ष ग़ज़ल की पुस्तक की विशिष्ट प्रस्तावना लिखी। इस तरह उनकी दो पुस्तकें उनकी ख्वाहिश के अनुसार छप गईं। इस बात पर उन्होंने एक शेर शाया किया, 'क्यों न होती पूरी उसकी आरज़ू वो था सूफ़ी की दुआ की तरह' और वे वास्तव में सूफी की दुआ की तरह थे। 'सुराही' जैसी रचना करने के बावजूद वे शराब और कबाब से दूर रहे।

यू.के से प्रकाशित होने वाली यू.के.हिंदी समिति की पत्रिका 'पुरवाई' में उनका विशेष स्तंभ होता था। 'खेल निराले हैं दुनिया के' जिसमें उनकी लघु कथाएँ छपती थीं। साथ ही उनकी ग़ज़लों से पुरवाई सदा सुशोभित रहती। सच बात तो ये है कि उनकी ग़ज़लें व ग़ज़ल संबंधी लेख, कहानियाँ आदि भारत ही नहीं यूरोप, अमेरिका, और खाड़ी आदि देशों की पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं।

'पुरवाई' और यू.के. हिंदी समिति को उनका विशेष स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त था। पूर्णिमा वर्मन ने जब नेट-पत्रिका अभिव्यक्ति और अनुभूति पर उनकी ग़ज़लें और ग़ज़ल विधा पर लेख सिरियालाइज़ किया तो वे पूरे विश्व हिंदी जगत् में 'सहज सम्पर्क ग़ज़ल-गुरू' के रूप में प्रसिद्ध हो गए और आए दिन देश-विदेश के उभरते लेखकों की ग़ज़लें इस्लाह के लिए उनके पास आने लगीं। अमेरिका के अनूप भार्गव लिखते है '...जब मैंने 'ई×कविता' समूह शुरू किया था तो वह उसके सबसे पहले सक्रिय सदस्यों में से थे। फिर कुछ वर्षों बाद जब मैंने ग़ज़ल लिखने की कोशिश की तो उन्होंने हाथ पकड़ा और ग़ज़ल की बारीकियों को समझाया।'

प्राण जी अपने नाम के अनुरूप देश-विदेश के हिंदी प्रेमियों के लिए प्राणवायु थे। विशेषरूप से वे ब्रिटेन के साहित्यकारों के सरपरस्त थे। ब्रिटेन का प्रत्येक छोटा बड़ा लेखक उनसे इस्लाह करा कर ही अपने लेखन को पत्र-पत्रिकाओं में छपने को भेजता था। मेरे तो वे मेंन्टोर थे। प्राण शर्मा के जाने से जो रिक्तता ब्रिटेन के साहित्य जगत् में आई है उसकी आपूर्ति क्या कभी नहीं हो सकेगी? ब्रिटेन का हिंदी साहित्य उनके अवदान का सदा ऋणी रहेगा।

आज संकुचित और स्वार्थी लेखकों और पत्रकारों को जब उभरते लेखकों को रौंदते या उनका शोषण करते हुए खुद को प्रमोट करते हुए देखती हूँ तो प्राण शर्मा जैसे कलमकार, गुरु, दोस्त और सलाहकार की बहुत याद आती है जो निस्वार्थ भाव से हर लेखक, कवि और ग़ज़लकार को उठाने, प्रोत्साहित और आत्मविश्वास से दीप्त करते रहते थे।

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2018

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कविताएँ

अनिल प्रभा कुमार की कविताएँ

प्रवासी

वह बहाना ढूँढ़ता है
घर आने का
बहाने तो बहुत मिले
फिर ठिकाना ढूँढ़ता है
आकर रहने का
ठिकाने भी पैसे देकर
मिल जाते
पर वह घर ढूँढ़ता है
जहाँ अपने हों।
ख़ून के रिश्ते हैं भी
कहने को।
उन अपनों की नज़रें
बदल चुकी हैं
उसी के घर में रहते हुए
जिसकी क़ीमत
करोड़ों में पहुँच चुकी है।
भौतिकतावादी देश से
आने वाले को
क्या मतलब यहाँ से
वहीं रहे तड़ी पार
डर है
कहीं आकर
कोर्ट- कचहरी न करे
हक़ न माँगे
हक़ तो वह माँगता है
ज़मीन और दौलत का नहीं
प्यार का,
विश्वास का
वह भी नहीं
तो ठगा खड़ा है
अब वह बहाना ढूँढ़ता है
अपने को बहलाने का।
***

औरत इन्तज़ार करती है

औरत इन्तज़ार करती है
अपने सपनों को
आँचल की तहों में छिपाए
औरत
इन्तज़ार करती है
कब उसका अपना घर हो
जहाँ वह अपनी मर्ज़ी से
उसे सजाए
पसन्द का पकाए
घूमें फिरे
अपनी पसन्द के साथी के साथ।
बच्चों, पति, ससुराल
उनकी पसन्द को सँभालते
वह भूल जाती है
उसे क्या पसन्द था।
वह फिर इन्तज़ार करती है
बच्चों के बड़े होने का
ज़िम्मेदारियों से
फ़ारिग होने का।
उनसे निबट कर
वह ढूँढ़ती है
अपनी पसन्द को
अपने जुनून को।
प्यार से सहलाती है
उस भूली हुई संदूकची को
जिसमें
उसके सपने
अभी भी
साँसे ले रहे हैं।
वह धीरे से छूती है
अब वक़्त आ गया है
उठो, सपनों
उड़ो खुले आसमान में
वह शिथिल से पड़े हैं
भूल गए हैं
सब कुछ
औरत इन्तज़ार करती है
शायद
फिर याद आ जाए
उन्हें उड़ने की आदत।
***

संपर्क : 119 Osage Road, Wayne.NJ 07470. USA
ईमेल: aksk414@hotmail.com
मोबाइल : 973 628 1324

डॉ. प्रदीप उपाध्याय की कविताएँ

स्वयं का होना

स्वयं का होना
पर्याप्त नहीं है
क्यों हैं किसके लिए हैं
इसमें नैराश्य का भाव है
अकेलेपन का अहसास है,
अपने उपयोगी होने पर सवाल है
अपने अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न है
स्वयं का कुछ होना
सकून देता है
स्वयं को भी
अपनों को भी
और दूसरों को भी
लेकिन यदि स्वयं कुछ नहीं हैं
तब किसी के लिए आप कुछ नहीं हैं
लेकिन कुछ होने के लिए
बहुत कुछ खोना पड़ता है
दूसरों की अपेक्षाओं पर
खरा उतरना पड़ता है
अपनों के लिए भी
स्वयं का कुछ होना
ज़रूरी है वरना
चाहे अपनों के या परायों के लिए
स्वयं का होना कोई मायने नहीं रखता
जब तक खुद का कुछ होना
साबित नहीं हो जाता।
***

मैं रूढ़िवादी हूँ

हाँ, ठीक है तुम कहते हो तो कहो
कि आधुनिक होने के लिए
सड़ी-गली परम्पराओं को छोड़ना ज़रूरी है
लेकिन विस्मित करता है
इस तरह सोचना तुम्हारा
क्योंकि तुम भी तो

पले-बढ़े हो इसी परिवेश में।

क्या बताओगे तुम
रीति-रिवाजों को मानना
तीज-त्यौहारों को मनाना
मूल स्वरूप में बिना तर्क-वितर्क
पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कार रूप में
संजोए रखना कैसे है रूढ़िवादिता !
और पिछड़ेपन की निशानियाँ।

क्या आधुनिक होने के लिए
छोड़ दिए जाने चाहिए
सभी रीति-रिवाज
और तीज-त्यौहार।

आधुनिक होने के लिए
क्या भूल जाएँ श्लील-अश्लील का अंतर
अपने ज़माने का पहनावा
और रहन-सहन की मूल आदतें
या कि अपना घरेलू खान-पान।

तुम ही बताओ कि आधुनिक
कहलाने कि लिए क्या
दिमाग का परिष्कृत होना ही काफी नहीं
तर्क की कसौटी पर रखकर
नए को स्वीकारना मुझे आता है।

नहीं स्वीकार है मुझे
बिना आधार अपने अतीत
और उसके गौरव को छोड़ना
इस बिना पर अगर तुम कहना चाहो
कह सकते हो कि मैं रूढ़वादी हूँ।
***

कभी था बरगद का पेड़ वहाँ

कभी था बरगद का पेड़ वहाँ
लगता जैसे काँपती सूरज की तपन
बच्वें-बूढ़े और युवाओं की मण्डली
जमाए रहती थीं चौपाल वहाँ
सुबह हो या फिर शाम
और देर रात तक
जमे रहते थे लोग जहाँ
करते गपशप और वार्तालाप
कभी था बरगद का पेड़ वहाँ
जिसके नीचे मौसी की दुकान
चाय पीते खाते चने परमल
आते हैं याद वे दिन
समय के क्रूर हाथों
दे दी गई बरगद की बलि
और तन गया वहाँ कांक्रीट का जंगल
अब नहीं वहाँ बरगद की छाँव
सूरज करता अट्टहास वहाँ
कैसे बचेंगे उसकी तपन से
आते हैं याद वे दिन जब
कभी था बरगद का पेड़ वहाँ।
छूट गए हैं कई संगी-साथी
बिछुड़ गए हैं अपने सारे
लगता है भला था अपना बचपन
और बेफिक्री की वह ज़िंदगी
अब तो रह गई हैं यादें ही शेष
और हम भी रह जाएँगे यादों में
ठीक उस बरगद की तरह।
***

संपर्क:16, अम्बिका भवन, बाबुजी की कोठी, उपाध्याय नगर, मेंढ़की रोड़, देवास, म.प्र
ईमेल: pradeepru21@gmail.com

प्रगति गुप्ता की कविताएँ

संग यादों के

चलो तुम्हें खुद के संग
सफ़र में ले चलूँ
कुछ तुम्हारी बातें
कुछ भूली बिसरी यादें
रख अटैची में
करीने से तह किए
कपड़ों के बीच.......
चलो तुम्हें खुद के संग
सफ़र में ले चलूँ
जब कुछ और नहीं हो करने को
संग हवा, पेड़ पौधें,
और उनकी छाँव तले,
तेरी यादों को बुनती चलूँ.....
देख तू भी कैसे
समय से तुझे चुरा, चुराकर
तुझे संवारती चलूँ.....
प्रिय चल
तुझे खुद के संग
सफ़र में ले चलूँ.........
***

महानगर

इन गगनचुंबी इमारतों में
सब ही तो
खोया रहता है......
उगते ढलते सूरज के बीच
गुज़री साँझ का भी
मन बहुत अकेला है........
नील गगन में
चाँद के
तारे ही साथी हैं.....
अब उसको
छत पर जाकर
निहारना
स्वपन हो चला है........
सड़कों पर लोग बहुत है
पर सब
अनजान अकेले है......
जितना शोर गाड़ियों का
सड़कों पर चल रहा
हर आदमी
उतने ही शोर की
बैचेनी
अन्दर ही अन्दर झेल रहा.....
अन्दर - बाहर की
अन्तहीन दौड़ में
गुमशुदा - सी सड़कों पर
गुमशुदा से आदमी हैं .....
रीते ख्वाब
रीती ख्वाहिशों से थके
इनके कुछ कहते लब
पर, सिले हुए है....
यही तो इन
महानगरों की
अजीब - सी त्रासदी है......
आदमी चोटिल है,
अन्दर ही अन्दर
हिला हुआ है.....
फिर भी

इस भागदौड़ का हिस्सा बन
खुद से ही भाग रहा है.....
***

लिखावट

आज सोशल साइट्स पर
लिखी चिट्ठियों में
पहले - सी जान नहीं होती....
जो उँगलियों से उतर
कलम तक पहुँच सके
वो दिल के भाव नहीं होते..
उतरते - चढ़ते भावों के साथ
जो लिखावट -
कभी ठहर, तो कभी काँप कर
पढ़ने वाले को
लिखने वाले के पास ले जाती थी
और जो अनकही बातें थी
उन्हें हस्ताक्षर में समेट,
कहीं अन्दर तक छू जाती थी,
अब वो बात नहीं होती
अब वो छुअन नहीं होती
आज सोशल साइट्स पर
लिखी चिट्ठियों में
पहले - सी जान नहीं होती..
पहले - सी जान नहीं होती.....
***

संपर्क: 58, सरदार क्लब स्कीम जोधपुर, (राजस्थान) 342001
ईमेल: Pragatigupta.raj@gmail.com
मोबाइल :09460248348

मालिनी गौतम की कविताएँ

सुर्ख़ लाल गुलाब पर
रात के झिलमिलाते आँसू
हर सुबह
दिलाते हैं अहसास
हमारी दूरियों का
दूर कहीं कोयल छेड़ती है
कोई अलबेली तान
और मैं
डायरी में सहेज लेती हूँ
लाल रंग
सुनो....
अब आ भी जाओ
कि पृष्ठों से बहने लगी है
एक नदी.....लाल-सी।
***

कोई चला जाता है छोड़कर
बस यूँ ही...अचानक
तोड़कर सारे.... नेह के अनुबन्ध
न जाने कौन-सी कशिश
खींचती है उस पार
कि नज़र नहीं आती
इस पार बिखरी मुस्कराहट
मीठी नज़र
और सीने से लगा लेने को आतुर बाँहें
कदम चल ही देते हैं
फिर कभी न लौटने के लिए
सुनो.....
अपनी राहों का पता तो दे जाते
कि मुझे भी गुज़रना होगा
उन्हीं रास्तों से
कभी न कभी...
***

आधे-अधूरे से कुछ शब्द
जब-जब पसर जाते हैं
हमारे बीच,
मैं रात भर करती रहती हूँ
निरर्थक-सा प्रयास
उन्हें पकड़-पकड़ कर
जमाने का क्रासवर्ड की तरह.....
कुछ फिट बैठते हैं चौखानों में
तो कुछ छिटक जाते हैं
सुनो....
बात पूरी कहा करो न
कि तुम्हारे अधूरे-अनकहे शब्द
बेधते हैं मन को ...
***

खामोशी के भँवर में
डूबती-उतराती मैं
कभी अनसुना कर देती हूँ
तुम्हारे शब्दों को,
तो कभी मेरे ही शब्द
रह जाते हैं अनकहे...
मेरे मौन का
एक सिरा थामकर
तुम क्यों नहीं छेड़ते ऐसी तान
कि दूसरे सिरे पर
खनकने लगें घुँघरू
सुनो....
कि मैं खनकना चाहती हूँ
तुम्हारे लिए...
***

संपर्क: 574, मंगल ज्योत सोसाइटी, संतरामपुर-389260, जिला- महीसागर, गुजरात
ईमेल: malini.gautam@yahoo.in
मोबाइल: 9427078711

प्रतिभा चौहान की कविताएँ

होना तो कुछ यूँ चाहिए था

हम जीवन नहीं काटते
बल्कि जीवन हमें काटता जाता है तिल-तिल...
हम अपने अंतिम दिनों की उड़ानों तक आते-आते
बहुत सारी उड़ाने तय कर चुके होते हैं
और हाशिए पर छोड़कर
अपनी सभी संवेदनाओं और अनुभवों को
हम आ जाते हैं किनारे की ओर अंतत:
अपने कपड़ों की आख़िरी गन्ध को भी झाड़कर
किसी दूसरी यात्रा के वास्ते तैयार करते हैं
नई कश्तियाँ...
पर होना तो कुछ यूँ चाहिए था
कि हर दिन हम कश्ती बनाते
और यात्राएँ निर्धारित करते-
पर तमाम बंधनों को नकारते हुए

अपने द्वीप में घूमते रहे
कई मंजिली इमारत के साथ
अनजाने अनदेखे तिलिस्म की चाह में
हर आकांक्षाओं से मुक्त होने की जद्दोजहद
और जीवन में सब कुछ पा लेने की ललक
इस दोराहे पर खड़े होकर
हर बार हम ने ईश्वर को दोष दिया है
होना तो कुछ यूँ चाहिए था
कि धरती को एक छोटे से चौखाने में भरते
तय करते छोटी-छोटी यात्राएँ
खुशियाँ बीनते दुखों के ढेर से भी
छोटे खिलौने से खुश होना भी जीवन की
एक कला है
जीवन कठिन है
जिसे आसान तरीकों से जिया जाना
एक अदद ज़रूरत।
***

कविता नम हो जाती है

नम कविताओं को
अधूरी लालसाएँ समझना...
जब साँस घुटती है बारुद के धुँएँ में
आवाज़े कलेजा चीर देती हैं
अपने खौफनाक रूप से
सुनती है सेंध में चुपचाप सिसकियाँ
तब मेरी कविता नम हो जाती है....
बच्चा रोता है सिकती हुई रोटियों से उँगली
जल जाने से
मरहम नहीं लगाता
मालिक के डर से
कोड़ों से छलनी हुए वस्त्रों की गंध
और फफोलों पर दहकता ब्रह्मांड
आधे कुएँ से उलटे आकाश सा
खाली पेट
गहराई में डूब कर
नहीं उबर पाता तब मेरी कविता नम हो
जाती है...
निर्दई हो चुके मनुष्य ने तोड़ दिया
चाँद का मिटल
ढक दी सूरज की गुनगुनी सुनहरी धूप
फैला दिया एक निर्दई अंतहीन कोहरा
उजाड़ दिया हरी-भरी बेलों का अस्तित्व
कुछ इसी तरह
जब गुज़र जाती हैं बातें अपनी हद से
तब मेरी कविता नम हो जाती है...
***

बातों में जीवन

बातों में जीवन है
जीवन में बातें हैं
कुछ बड़ी बेतकल्लुफी से
बर्बाद करते हैं बातें
कुछ इनका प्रयोग करते हैं
आँधियों के रूप में
कुछ गवा देते हैं बात और जीवन दोनों
कुछ बर्बाद करते हैं बातें
स्वयं से रहा सदा एक प्रश्न
हमने नहीं प्रयोग किया
कभी उन बातों का
जिनसे रोका जा सकता था
पृथ्वी पर बहता पानी
तेज़ाब की बारिशें
गर्म झुलसाने वाली कठिन हवाएँ
ग़लत पाँवों का चलन
नंगे पाँवों की जलन
क्योंकि जीवन में बातें हैं बातों में जीवन है।
***

संपर्क:
ईमेल: cjpratibha.singh@gmail.com
मोबाइल: 9470415802

डॉ. संगीता गाँधी की कविताएँ

दरवाज़े

तुम्हारी यादों के दरवाज़े
बहुत कस कर बन्द किए हैं
सुनो ! कभी आओ तो
बहुत ज़ोर से खटखटाना
शायद भावनाओं की चौखटें
जाम हो चुकी हों
या फिर
प्रेम की कुंडियाँ हीं
जंग खा चुकी हों !
***

धारा का अशेष

ठहरे हुए जमे पानी में
मारे गए कंकड़ सी
तुम्हारी स्मृतियाँ
हिचकोले खाती हैं।
सुनो !कभी आओ तो
हौले से पानी का पर्दा खींचना,
भीतर मधुर स्मृतियों पर जमी काई
आवाज़ से डर कर कहीं
सुन्न न हो जाए।
तुम्हारी आवाज़ सुने युग हुए
अब पहचान का संकट है।
धीरे से काई हटा कर देखना
शायद कोई प्रेम जन्तु
वेंटिलेटर पर शेष हो !
***

टँगी निगाहें

ठहरे रास्तों पर ठहरी निगाहें
प्रेम पिपासा में पगी निगाहें
रुक कर चलतीं चल कर रुकतीं
कहीं न पहुँचतीं
कहीं न थमती
आशाहस्त की रज्जु से लिपटीं
मुड़ते मोड़ों पर कदम पटकतीं
पलकों की कारा को तोड़
प्रतीक्षा द्वार पर ठिठकी निगाहें
सुनो, कभी आओ ! तो उतार लेना
निम्बू -मिर्ची सी खूँटी पर
टँगी निगाहें।
***

अंदर वाला बचपन

यूँ ही बहुत भीड़ वाले अकेलेपन के बीच !
आँखों के कोनों पर उमड़ी लकीरों पर,
लुढ़कते हुए चश्मे को खींच !
कुछ ठहरे कुछ भागते कदमों के साथ,
थके-थके से जीवन को पकड़ने की चाह में,
पहुँची कुछ युग पुराने मकान की थाह में !
बन्द किवाड़ के साँकल को छूते ही,
गुड़िया से खेलती एक लड़की पाई
मैं स्वयं की उस परछाईं को देख
कुछ चकित कुछ मुस्काई
पर भीतर ही भीतर

फिर से 'लड़की बन गुड़िया से खेलने'
की चाह पर बहुत शरमाई।
सुनो !कभी आओ तो,
एक गुड़िया लेते आना।
***

किताबी मुलाकात

उम्मीद लिखती है गीत
अहसास की कलम से
दर्द की स्याही में
डूबे जज़्बात अक्षर बन
अनुभवों के पन्नों पर
सितारों से चमक जाते हैं।
सुनो ! कभी आओ तो
मेरी तरह एक गीत
तुम भी पहन लेना
गीतों के कपड़े पहन
शायद किसी रोज़
किसी किताब के पन्नों पर
हम -तुम मिलें !
***

संपर्क:
ईमेल: rozybeta@gmail.com

नीलिमा शर्मा निविया की कविताएँ

खोखलापन

उधड़ गई है सीवन
मेरे लफ्ज़ों की
और दिखने लगी हैं
उनमें छिपी हुई
तल्खियाँ
चुप्पियाँ
और
नाराज़गियाँ.....

वक़्त की सुई
अरमानों का तागा
मिलकर भी
पक्की सिलाई नहीं लगा पाए
और मैं
देख कर
आस-पास
लोगों का हुजूम
नाकामयाब कोशिश करती हूँ
इस उधरी हुई सीवन
को छुपाने की

कुछ
लोग कैसे
जी लेते हैं उम्र भर
उधड़े लफ़्ज़ों की सीवन संग
सुकून से
मेरा तो दम घुटता हैं
एक टाँका भी टूटने से
तेरे मेरे बीच
संवाद का
***

चुपचाप !!

चीखें !!
चिल्लाहटें!!!
रूदन !!
कराहटें !!
मोहताज नही
किसी ध्वनि की
हृदय के किसी
अंदरूनी कोने में भी
घर बना लेती हैं ये कभी
चुपचाप !!
दर्द
वेदना
पीड़ा
हर बार बयाँ हो
संभव नहीं
चेतना भी
छिपा लेती हैं
इनको भीतर अपने
हर बार
कई बार कभी

आँखें अक्सर वोह कहती हैं
जो लब छिपा जाते हैं
लब अक्सर वोह कहते हैं
जो आँखें बहा ले जाती हैं
***

पुकार

सिर्फ एक पल को
अभी
आँगन में
अपनी उदास
अकेली
मायूस
नखरीली
ख़ामोशी को
पुकारा
पुचकारा
सहलाया
दुलराया
और फिर
आसमाँ को देख
चाँद तारों से भरा
गुफ्तगू करने लगी
खुद ही ख़ामोशी से
ख़ामोशी भी कितनी बातूनी हो जाती हैं
ना.....
***

सुबह की चाय

आज सुबह
फिर से दो कप
चाय बन गई
अदरक वाली
तुम भी अपने शहर में
हाथ में वही बड़ा वाला मग थामे
सोच रहे होगे ना
मेरे / अपने बारे में
मैं भी अक्सर
गुफ़्तगू करती हूँ
ख़्यालों में अक्सर तुमसे
आने वाले बरसों के बारे में
कुछ बीते बरसों की बाबत
और चाय का हर घूटँ
मुझे अहसास तुम्हारा दिलाता हैं
तुम दिन भर दूर रहते हो मुझसे
बस एक चाय का प्याला
और तुम मेरे पास
खुशबू से भरे

सोंधे-सोंधे से समाए रहते हो
अंतर्मन में ...
***

संपर्क: C2/133, जनकपुरी, नई दिल्ली 58
ईमेल: nea1441@gmail.com
मोबाइल: 9411547430

परितोष कुमार 'पीयूष' की कविताएँ

विदा लेते वक्त!

विदा लेते वक्त
हम लिखते हैं
होठों पर चुंबन

और रह जाती है
बोरी भर बातें
फिर, फिर अनकही!
***

उम्मीद!

तुम्हारी यादों को ओढ़ता हूँ
तुम्हारी यादों को बिछाता हूँ
अपनी लिहाफ में छोड़ रखता हूँ
तुम्हारे हिस्से की पूरी जगह

तुम्हारी चुप्पी टूटने की
टूटती उम्मीद में काट लेता हूँ मैं
इस सर्द मौसम में
अपने हिस्से की पूरी रात!
***

किताबें!

किताबें झाँकती है
अब बंद अलमारियों से

उन्हें भी चाहिए
थोड़ी सी हवा
थोड़ी सी धूप
थोड़ा सा प्यार
मुट्ठी भर पाठक

और एक प्रेमी
उनकी हिफाज़त के लिए!
***

बन्दूक!

उसे बलात्कार करना था
उसने बन्दूक नहीं निकाली
गोलियों की छर्रियाँ भी नहीं दिखाईं
नाहीं उसने लड़की को
चाकू दिखाकर भयभीत किया

उसने बड़े आराम से चखा
अलग-अलग अंगों का
अलग-अलग स्वाद
फिर किया बलात्कार

उसने पढ़ लिया था
एक लड़की के भीतर का कमज़ोर पक्ष
उसे मालूम था बलात्कार से पहले
प्रेम का सारा समीकरण!
***

इस कठिन समय में!

इस कठिन समय में
जब यहाँ समाज के शब्दकोश से
विश्वास, रिश्ते, संवेदनाएँ
और प्रेम नाम के तमाम शब्दों को
मिटा दिए जाने की मुहिम जोरों पर है।

तुम्हारे प्रति मैं
बड़े संदेह की स्थिति में हूँ
कि आख़िर तुम
अपनी हर बात
अपना हर पक्ष
मेरे सामने इतनी सरलता
और सहजता के साथ कैसे रखती हो।

हर रिश्ते को
निश्छलता के साथ जीती
इतनी संवेदनाएँ
कहाँ से लाती हो तुम।

बार-बार उठता है यह प्रश्न मन में
क्या तुम्हारे जैसे और भी लोग
अब भी शेष हैं इस दुनिया में
देखकर तुम्हें
थोड़ा आशान्वित होता हूँ।

खिलाफ मौसम के बावजूद
तुम्हारे प्रेम में
कभी उदास नहीं होता हूँ।
***

तुम्हारी याद!

हमेशा तो नहीं
पर हाँ जब भी कभी
तुम्हारी याद आती है

टटोलकर अपनी आलमीरा से
निकालता हूँ
पुरानी बंद पड़ी एक घड़ी
बिना जिल्द वाली डायरी
छूटे हुए तुम्हारे एकाध वस्त्र
टूटे हुए तुम्हारे कुछ बाल
जिसे अपनी किसी अल्साई सुबह
कमरे से उठा सहेज रखा था मैंने

मुट्ठी भर वक्त जीता हूँ
उन निशानियों के साथ
बीते दिनों में

हर बार की तरह
फिर थोड़ा पत्थर होता हूँ
अपने आप से वायदे करता हूँ
कि लौटा दूँगा
ये तमाम निशानियाँ तुम्हें

इस उम्मीद के साथ
कि कभी न कभी
वक्त के किसी न किसी
सिरे पर तो तुम मिलोगी।
***

संपर्क: s/o स्व. डॉ. उमेश चन्द्र चौरसिया, मुहल्ला- मुंगरौड़ा, पोस्ट- जमालपुर (बिहार) पिन- 811214
ईमेल: 842pari@gmail.com
मोबाइल: 7870786842

गौरव भारती की कविताएँ

आदमी

मैंने भी माँगी थी दुआएँ
मूँदकर अपनी पलकें
टुटते हुए सितारों से
कई दफ़ा

ऐसी बचकानी हरकतें अब नहीं करता
नहीं करता क्योंकि
अब बच्चा नहीं रहा 'मैं'
शायद एक उम्र होती है
जिसे लाँघ आया हूँ
थोड़ी तमीज़
थोड़ा अदब सीख आया हूँ

मैंने सीख ली है
चालाकियाँ
जो आदमी होने की पहली शर्त है
मैं लिबास भी आयोजन के हिसाब से पहनता हूँ
रंग भी उसी को ध्यान में रखकर चुनता हूँ
अपनी सहूलियत के हिसाब से
झंडा उठा लेता हूँ
नारेबाजी भी कर लेता हूँ
किरदार बदल लेता हूँ

समीकरण
जो अबतक गणित का हिस्सा था
जिंदगी में उसके माने समझने लगा हूँ
समझने लगा हूँ
झुकने का मतलब
बूझने लगा हूँ
हँसी के प्रकार
खोज लिया हूँ पैमाना
हाथ लिए चलता हूँ तराजू

तितलियों को छोड़
भीड़ की तरफ भागता हूँ
तलाशता हूँ मंच
ओढ़ता हूँ तमीज़
थोड़ा मुस्कुराता हूँ
आदमी हो जाता हूँ .....
***

मुक्ति-मार्ग

कल जो कुछ हुआ
शहर-दर-शहर
वह होते रहता है
वक़्त-वक़्त पर
क्योंकि जब इसकी बीज बोई जाती है
खुलेआम सार्वजनिक मंचों पर
तब हर उस आवाज़ को
जो ख़िलाफ़ हो उसके
दबा दिया जाता है
हर उस प्रतिरोध को
ठंडा कर दिया जाता है

आवरण चढ़ाकर जब होते अनावरण
तब पैदा होती है एक संस्कृति
जिसमें एक नशा होता है
इस संस्कृति में
हर चेले के कान फूँके जाते हैं
कुछ मंत्र पिघलाकर डाले जाते हैं उसके नरम कानों में
उसके बाद पैदा होता है
एक ऐसा किरदार
जो उन कान-फूँके चेलों का भगवान् कहलाता है

अब चूँकि वह भगवान् ठहरा
वह माया रचता है
उसका हर करतब-कृत्य
समाज कल्याण और धर्म हितार्थ होता है
वह ग़लत होकर भी सही होता है
कोई प्रश्न नहीं
कोई प्रतिरोध नहीं
देह का गणित वह
आत्मा-परमात्मा के संयोगात्मक फार्मूले से सुलझा लेता है
इस संयोग में गर हो जाए कोई हताहत
मुक्ति का मायावी आवरण उसे बचा लेता है
अब जब यह आवरण कमज़ोर पड़ता है
प्रतिरोध थोड़ा ज़ोर पकड़ता है
शहर-शहर के भगवान् उठ खड़े होते है
अपना डेरा बचाने के लिए
कान-फूँके भक्तों को तत्काल बुलाया जाता है
मंत्र को तोते की तरह बुलवाया जाता है
हाथ थोड़े गर्म किए जाते हैं
और मोर्चे पर भेज दिया जाता है
मानों वह मुक्ति का मार्ग हो

मुक्ति मार्ग में बाधक
हर कंटक पर हमला होता है
भक्त ऐसे टूट पड़ते है
मानों वह अपने भगवान् को बचा ले जाएगा
और तलाश लेगा इसी बहाने
खुद के लिए
मुक्ति-मार्ग.....
***

भोर

जब भोर पहर
सूरज की मीठी किरण
रोज़ हर रोज़
खिड़की के परदों से छनकर
बगैर इजाज़त लिए
मेरे छोटे से कमरे में दाखिल होती है
मुझे बहुत अच्छा लगता है

अच्छा लगता है
क्योंकि उसका यूँ दाखिल होना
मुझे उसके अपने होने का एहसास दिलाता है

जब उसकी मीठी किरण
मेरे बालों को सहलाते हुए
मेरे चेहरे को चूमती है
ऐसा लगता है
मानों मेरी प्रेमिका
हर सुबह
अपनी वफ़ा साबित करने
अपना प्रेम जताने
मेरे सिरहाने आ बैठती है

मैं .....
किसी अधखिले सुप्त फूल की माफ़िक
सोया रहता हूँ जानबूझकर कि
रोज़ मिलने वाले इस प्रेम की

उम्र थोड़ी लंबी हो
ये जो ख़ामोशी पसरी है
बंद कमरे में
वो थोड़ी लंबी हो
ये जो वक़्त का चलना सुन पा रहा हूँ
वो सुनता रहूँ
अँधेरा कैसे दूर होता है
उजास कैसे फैलता है
उसे बंद आँखों से
पलकों पर महसूस करता रहूँ....
***

संपर्क: झेलम छात्रावास, कमरा संख्या-108, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067
ईमेल: sam.gaura1013@gmail.com
मोबाइल- 9015326408

पूनम सिन्हा 'श्रेयसी' की कविताएँ

फिर मिलेंगे हम

फिर मिलेंगे हम
समुद्र की लहरों पर
समर्पण की नाव पर सवार
अपने-अपने आँसुओं को
सदा के लिए
विसर्जित करेंगे
विरह की अग्नि से
पिघलेगा सूरज
यादों के घनीभूत जलवाष्प
बादल बन बरसेंगे
होगी धरा सिंचित
बीज का अंकुरण
प्रेम पुष्प खिलेंगे
सुगन्धित पवन
उड़ा ले जाएगी
प्रेम का सन्देश
अनंत दिशाओं में
फूलों और तितलियों के
रंगों में घुलमिल
मनोरम छटा बिखेरेंगे
गायेंगे फिर हम
मिलन के गीत
जो पाया था
एक दूजे से
पूनम की रातों में
चाँदनी बन बाँटेंगे
और एक दिन
चमकते सितारे
बन जाएँगे हम
अपनी ही धुरियों पर घूमते
प्रेम मग्न में थिरकते
ब्रह्माण्ड का हिस्सा
बन जाएँगे हम।
***

चुप्पी

चुप वह है
जो सब कुछ जानता-
चुप वह भी
जो कुछ नहीं जानता-
कुछ ऐसे भी
-सब कुछ जान लिया
वहम पालते हैं
वे कभी चुप नहीं रहते
कुछ वे हैं
जो चुप्पी को
लबादा की तरह ओढ़ते
अजीब से मन:स्थिति है
न बोल सकते
न चुप रह सकते
कसमसाहट में जीते
बेबसी में मर जाते
किन्तु उनकी चुप्पी
व्यर्थ नहीं जाती
चुप रह कर भी
बहुत कुछ कह जाती
आँखों से
हाथ के इशारों से
पाँव की गतियों से
सम्पूर्ण शरीर से गुज़रती
एक से दूजे में
संक्रमित हो
कलम/तूलिका/मुद्राओं से
प्रदर्शित होती रहती
सृजित कला
बहुआयामी हो
नदी की धाराओं सी
अनेक विधाओं में
बँटती जाती
चुप्पी भेदने की कला का
ज्ञान प्राप्त कर
निकल पड़ता
पथिक चुपचाप
कहने न कहने की
विवशता से मुक्त
चुप्पी से
गहन मौन की यात्रा पर.....
***

अब क्या होगा?

सीपियों में नाग छुपे
मुक्ता को पहचाने कौन
चकाचौंध की दुनिया में
अपनों को सब भूल रहे
अब क्या होगा?
नीला थोथा आसमान
बादलों में घुलमिल जाए
अमृत की कैसी यह बारिश
ज़हरीली जब धरती हो जाए
अब क्या होगा?
ताज़ा खून है टपक रहा
नाखून के हर छोर से
भाई-भाई के बीच में
कैसा प्रेम पनप रहा
अब क्या होगा?
कोयल अब ख़ामोश है
कौओं के मीठे बोल हैं
बेसुरे सुरताल पर थिरके
जीवन यह अनमोल है
अब क्या होगा?
कछुओं ने लगाई दौड़
घोड़ों को लँगड़ी मार
भाग-दौड़ के रेस में
इन्सानियत रही पिछड़
अब क्या होगा?
***

संपर्क : द्वारा नरेन्द्र सिन्हा ए डी एम
कलेक्ट्रेट, अरवल
बिहार 804401
मोबाइल 8340484896

नवगीत

जगदीश पंकज के नवगीत

प्रकाशित कृतियाँ : 'सुनो मुझे भी' (नवगीत संग्रह), 'निषिद्धों की गली का नागरिक' (नवगीत संग्रह), 'समय है सम्भावना का' (नवगीत संग्रह), नवगीत के समवेत संकलन 'नवगीत का लोकधर्मी सौंदर्यबोध', 'गीत सिंदूरी गन्ध कपूरी' तथा 'सहयात्री समय के' में नवगीत संकलित एवं साझा संग्रह 'सारांश समय का' और 'शतदल' में कविताएँ प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं/ वेब पत्रिकाओं में गीत,नवगीत,समीक्षाएँ एवं कविताएँ प्रकाशित तथा आकाशवाणी दिल्ली से काव्य-पाठ का प्रसारण। 'देवराज वर्मा उत्कृष्ट साहित्य सृजन सम्मान', 'नटवर गीत साधना सम्मान' तथा 'नवगीतकार महेश अनघ सम्मान ' से सम्मानित।

जो कहा, जब भी, इशारों में कहा

जो कहा, जब भी, इशारों में कहा
इसलिए शब्दार्थ के हर
शव-परीक्षण से बचे
एक चादर ओढ़ कर वैराग्य की
सिर्फ कुछ उपदेश दुहराए गए
भोग की दुर्योग सत्ता के लिए
शब्द के आटोप फैलाए गए
सजा कर अध्यात्म की चौपाल पर
रख दिए निष्कामना के
गीत, जो खुद ही रचे
जो हुआ, संयोगवश होता रहा
भीरुता के दंडवत स्वीकार से
पारलौकिक छद्म को धोया गया
किसी भावुक
उक्ति के आभार से
पारदर्शी सत्य भी ओझल हुआ
भावना ने यों उड़ाए
तर्क के भी परखचे
सिर्फ अनुकृतियाँ बनाकर रीझते
गा विगत के गान की विरुदावली
अंध-श्रद्धा ने उठाकर रख दिए
प्रश्न शंकाकुल पड़े जो साँकली
सोच भी संकोच का बन्दी हुआ
मानकर आदेश चाहे
कुछ असंगत ही जँचे

***

मिल गए संयोग से वे पृष्ठ सारे

मिल गए संयोग से वे पृष्ठ सारे
जो लिखे थे, जब अपरिचित
थे शहर में।
ऊब-उकताहट
बिछाकर चाँदनी में
रात जब जम्भाईयाँ लेने लगी थीं
दिवस की अँगड़ाईयाँ फिर
याद से संवाद करके
और सिरहाने सुबह की
प्यास धर के
थपकियाँ फिर थकन को देने लगी थीं
भोर के अद्भुत सपन सोने लगे हैं
रात के अहिवात की
मादक लहर में।
विगत ने
अनगिन प्रलोभन फेंक डाले
आज तक आहत किया आकर्षणों ने
हम चले बचते-बचाते
हर सड़क पर
डाँट फिर भी मिल रहीं
हमको कड़क कर
कुछ जिए कुछ अनजिए घुटते क्षणों में
हम समझ पाए नहीं अपराध अपना
लक्ष्य क्यों बनते रहे हैं
हर कहर में।
जब न जी पाए कहीं मधुमास कोई
चाहते थे तब हमें
कोई पुकारे
गन्ध-सी मिलती रहे
मोहक सुमन से
प्यार की पुचकार आए
शुद्ध मन से
प्रीति के परितोष से कोई निहारे
बाँह फैलाकर मिले कोई नही, पर
छाँह सी मिलती रहे
हर दोपहर में।

***

कर दिए हस्ताक्षर हर बार मैंने

जो लिखा था पृष्ठ पर
वह बिन पढ़े ही
कर दिए हस्ताक्षर
हर बार मैंने
लेख भी हैं, कुछ असंगत
कुछ असहमत
किन्तु मैं विश्वास सब पर
कर रहा हूँ
उक्ति के चातुर्य में
क्या छल भरा है
यह न सोचा इसलिए ही
डर रहा हूँ
जान भी पाया नहीं
बहुरुपियापन
देखकर उसका असर
हर बार मैंने
जब उपेक्षा से
मिला छिछला सरोवर
वह नियति का खेल
माना ही गया है
जब बहिष्कृत ही रहा
संगोष्ठी से
दे दिया मुझको कभी
नारा नया है
द्वार पर लटकी हुई
चेतावनी से
फेर ली अपनी नज़र
हर बार मैंने
अंतड़ी की आग से
झुलसा हुआ तन
जीतकर भी भूख से
हारा हुआ है
विवशता को चयन का
अवसर नहीं है
इस तरह संचित अहम्
मारा हुआ है
साँस पर प्रतिबन्ध के
कोड़े सहन कर
पी लिया घुटकर ज़हर
हर बार मैंने

***

संपर्क: सोमसदन 5/41 सेक्टर -2, राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, ग़ाज़ियाबाद-201005
ईमेल: jagdishjend@gmail.com
मोबाइल: 08860446774, 8851979992

समाचार-सार

लघुकथा के अस्तित्व को वटवृक्ष करता, क्षितिज अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन

2-3 जून 2018 को इन्दौर मध्य प्रदेश में, संस्था क्षितिज द्वारा एक अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन का आयोजन किया गया। मंच पर श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर के प्रधानमंत्री प्रो. सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी की अध्यक्षता एवं वरिष्ठ कथाकार, प्रधान संपादक 'लोकायत' पाक्षिक, दिल्ली श्री बलराम के मुख्य आतिथ्य में, अतिथि श्री बलराम अग्रवाल, बी.एल. आच्छा, सतीशराज पुष्करणा, श्यामसुंदर दीप्ति, सूर्यकांत नागर की उपस्थिति में अत्यंत गरिमामय वातावरण निर्मित हुआ।

मंच से सर्वप्रथम विमोचित की गई स्मारिका 'क्षितिज सफर पैंतीस वर्षों का।'' इसमें संस्था क्षितिज के पैंतीस वर्षों की यात्रा को संजोया गया है। इसके पश्चात्, संस्था की गौरव पत्रिका क्षितिज का ताज़ा अंक सभी लघुकथा प्रेमियों के समक्ष उद्घाटित किया गया। क्षितिज के इस अंक में वर्ष 2011 से 2017 के मध्य की लघुकथाओं को स्थान दिया गया है।

इन दो प्रमुख विमोचनों के पश्चात् बलराम अग्रवाल की बहुचर्चित पुस्तक ''परिंदों के दरमियान'' के विमोचन का साक्षी यह सभागार बना। इसके आगे मंच को समृद्ध किया रामकुमार घोटड की पुस्तक 'स्मृति शेष लघुकथाकार' ने। यह पुस्तक लघुकथा विधा को समृद्ध कर चुके व अब हमारे बीच न रहने वाले लघुकथाकारों पर केन्द्रित है। अपना प्रकाशन भोपाल द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ठहराव में सुख कहाँ', लेखक विजय जोशी, यह विमोचन की कड़ी में अगला मोती रहा। इसके बाद विमोचन किया गया अपनी कृति से सम्मेलन में उपस्थित लेखक जॉन मार्टिन की 'सब खैरियत है'' लघुकथा संग्रह का व अगली कृति जो कि बाँगला भाषा में लघुकथा अनुवाद का एक अनुभव प्रयोग रही, शिप्रा से गंगा तक (बाँग्ला लघुकथा संग्रह: संपादक हीरालाल मिश्र)।

इसके पश्चात् सभी मंचासीन अतिथियों द्वारा कलाकार किशोर बागरे व युवा लघुकथाकार व कलाकर्मी अनघा जोगलेकर द्वारा सृजित किए गए लघुकथा पोस्टरों की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया गया। इसके आगे पुस्तक प्रदर्शनी व बिक्री के स्टॉल पर दीप प्रज्वलन करने के साथ इस रचना संसार को अपने प्रिय पाठकों तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त किया गया।

इसके तुरंत बाद क्षितिज और अनुध्वनि स्टूडियो की साझा दृश्य श्रव्य प्रस्तुति 'इन्दौर के क्षितिज पर लघुकथा' नामक वृत्तचित्र का प्रदर्शन किया गया। तैंतीस मिनट के इस वृत्तचित्र में इन्दौर शहर, यहाँ की सांस्कृतिक विरासत, खान-पान व पोषाक संबंधी चलन के साथ ही परंपरा व सामाजिक रीति रिवाज़ों, आतिथ्य व सौम्य स्नेह के माहौल का प्रभाव लघुकथा विधा व इसके पोषण में शहर की भूमिका के साथ जोड़कर दिखाया गया था। संस्था के सभी सदस्यों के अलावा अंतरा करवड़े द्वारा इसके निर्माण, लेखन और पार्श्व स्वर के रूप में विशेष सहयोग प्रदान किया गया, जिसे उचित सराहना मिली।

इसके पश्चात् कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रुप में विराजमान मुख्य अतिथि लोकायत पत्रिका के संपादक बलराम जी ने अपने वक्तव्य में यह कहते हुए खुशी जाहिर की, कि साहित्य अकादमी द्वारा लघुकथा विधा को मान्यता दी गई है और लघुकथा पाठ हेतु प्रमुख लघुकथाकारों को आमंत्रित किया गया है, यह लघुकथा विधा की स्वीकार्यता के लिए मील के पत्थर के समान है।

इस अवसर पर संबोधित करते हुए मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति के प्रधान मंत्री श्री सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी ने कहा कि कोई भी विधा छोटी नहीं होती। इसके रचनाकार ही इसे ऊँचाई तक ले जाते हैं। आपने सम्मेलन हेतु शुभकामनाएँ दी व इसके आयोजन पर प्रसन्नता व्यक्त की।

उद्घाटन सत्र में प्रसिद्ध आलोचक बी.एल. आच्छा द्वारा कहा गया, कि संस्था क्षितिज द्वारा सृजन का सम्मान किया गया है। लम्बे समय से लघुकथा विधा के लिए आवश्यक इस प्रकार का आयोजन करने में क्षितिज सफल हुआ है।

इस सफल सत्र के समापन पर सभी मंचासीन अतिथियों को स्मृति चिह्न से सम्मानित किया गया। इस सत्र हेतु आभार प्रदर्शन किया वसुधा गाड़गिल ने।

इस सत्र के पूर्ण होने के पश्चात् सम्मान सत्र का आयोजन था।

इस अवसर पर अध्यक्ष के रूप में मंचासीन रहे डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा (कुलानुशासक, विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन), मुख्य अतिथि के रूप में श्री बलराम (वरिष्ठ कथाकार, प्रधान संपादक 'लोकायत' पाक्षिक, दिल्ली), विशेष अतिथि के रुप में, श्री श्रीराम दवे (कार्यकारी संपादक 'समावर्तन', उज्जैन), व श्री राकेश शर्मा (संपादक 'वीणा', इंदौर)।

कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा 'क्षितिज लघुकथा शिखर सम्मान 2018' श्री बलराम अग्रवाल, दिल्ली को लघुकथा के क्षेत्र में उनके समग्र अवदान के लिए प्रदान किया।

'क्षितिज लघुकथा समालोचना सम्मान 2018' आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए श्री बी.एल. आच्छा, चेन्नई को प्रदान किया गया। इस सम्मान के दौरान जाने माने लघुकथाकार स्व. श्री सुरेश शर्मा के परिवार से सुश्री वर्षा शर्मा द्वारा मंच पर उपस्थिति दर्ज करवाई गई।

इसके पश्चात् श्री बलराम को 'क्षितिज लघुकथा विशिष्ट सम्मान' और 'क्षितिज नवलेखन पुरस्कार 2018' (डॉ. सतीश दुबे की स्मृति में) भोपाल के युवा लघुकथाकार श्री कपिल शास्त्री को प्रदान किया गया। मंच पर कपिलजी को नवलेखन पुरस्कार प्रदान किए जाने के दौरान, वरिष्ठ लघुकथाकार स्व. सतीश दुबे के सुपुत्र परेश दुबे भी मंच पर उपस्थित थे।

इसी के साथ 'क्षितिज लघुकथा कला सम्मान' श्री संदीप राशिनकर और श्री नंदकिशोर बर्वे को दिया गया। दैनिक भास्कर के पत्रकार श्री रवीन्द्र व्यास को उनके साहित्य में योगदान के लिए 'क्षितिज

साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान-2018' से नवाजा गया।

इस अवसर पर विशेष अतिथि श्री श्रीराम दवे, ने अपने वक्तव्य में कहा कि लघुकथाओं का निष्पक्ष आकलन होना आवश्यक है। इस सदी में लघुकथा विधा और आगे विकास करेगी। इस विधा का भविष्य उज्ज्वल होगा। लघुकथा अपनी सार्थकता सिद्ध करें।

विशेष अतिथि श्री राकेश शर्मा (संपादक 'वीणा', इंदौर) ने अपने वक्तव्य में कहा कि इंदौर लघुकथाकारों का शहर हैं। लिखना आसान काम नहीं हैं। आजकल नए लेखकों की पठनीयता समाप्त हो रही हैं। यदि उन्हें सार्थक लघुकथा लिखनी है तो उन्हें अधिक पढ़ना होगा।

इस सत्र के अन्त में श्री ब्रजेश कानूनगो ने आभार प्रदर्शन किया। इस सत्र का सफल संचालन किया अंतरा करवड़े ने।

इसके पश्चात् लघुकथाकारों द्वारा लघुकथा पाठ किया गया। इन लघुकथाओं की समीक्षा श्री सतीशराज पुष्करणा एवं श्रीमती ज्योति जैन द्वारा की गई। इस सत्र का सफल संचालन गरिमा दुबे ने किया।

इसके पश्चात् सम्मेलन का अंतिम सत्र आयोजित किया गया जिसका विषय था, ''हिन्दी लघुकथा : वैश्विक क्षितिज के साथ नई ज़मीन की तलाश।'' इस विषय पर बीज वक्तव्य प्रस्तुत किया श्री श्यामसुंदर दीप्ति ने।

इस सत्र के बाद संतोष सुपेकर द्वारा उज्जैन से संबद्ध साहित्यकारों के साथ मिलकर आयोजनकर्ता सतीश राठी का सम्मान किया गया। इस अवसर पर वामा क्लब द्वारा भी क्षितिज के साथ कदम मिलाकर चलने और आयोजन की सफलता के लिए संस्था को बधाई दी गई।

आयोजन के संपूर्ण स्वरुप में आने पर आभार व्यक्त किया श्री सुरेश बजाज ने।

यह अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन लघुकथा विधा का कद बढ़ाने वाला महत्त्वपूर्ण आयोजन साबित हुआ हैं। इसमें कुशल प्रबंध, आत्मीय आवभगत और आतिथ्य देखने को मिला। यह आयोजन देश के लघुकथा के इतिहास में एक मिसाल बन गया हैं।

***

मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का दस्तावेज है ''मोगरी''

जयपुर। युवा कथाकार मुरारी गुप्ता के पहले कहानी संग्रह-'मोगरी' का शनिवार को बोधि प्रकाशन सभागार में लोकार्पण किया गया। राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित कहानी संग्रह मोगरी का लोकार्पण प्रख्यात रुपांतरकार, नाट्यकर्मी और भारतीय पुलिस सेवा के वरिष्ठ अधिकारी सौरभ श्रीवास्तव, युवा साहित्यकार ओम नागर तथा युवा समीक्षक रेवंत दान ने किया। कार्यक्रम के शुरुआत में कथाकार मुरारी गुप्ता ने अपने संकलन - मोगरी- की कहानियों के कुछ अंशों का पाठ किया।

इस अवसर पर समारोह के मुख्य अतिथि सौरभ श्रीवास्तव ने कहा कि कहानी संग्रह -मोगरी मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर रोचक और दिलचस्प पड़ताल करती हुई आगे बढ़ती है और पाठकों को बाँधने में सफल सिद्ध होती है। उन्होंने कहानी की विकास यात्रा पर बात करते हुए मुरारी गुप्ता की कहानियों को समकालीन कहानी के स्वर को मुखरित करने वाली बताया। श्रीवास्तव ने गुप्ता की कहानियों को मानव जीवन के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं को उजागर करने में सफल भी बताया। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि डॉ. रेवंत दान ने कहा कि प्रस्तुत पुस्तक की कहानियों में स्त्री पुरुष संबंध, परंपरागत चरित्र आधारित नैतिकता, यौन शुचिता, तमाम वर्जनाएँ और स्त्री मुक्ति के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की पड़ताल है। खासतौर पर स्कूल बैग कहानी के बाल पात्र वासु को पढ़कर मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'ईदगाह' के हामिद की याद ताज़ा हो जाती है।

कार्यक्रम के अध्यक्ष ओम नागर ने कहा कि कहानी, उपन्यास या गद्य की कोई भी विधा हो, पाठक के लिए उसकी पठनीयता पहली ज़रूरत है। इस लिहाज से कहानी संग्रह 'मोगरी' की कहानियाँ पाठक को न केवल एक कहानी, बल्कि संग्रह की सभी कहानियाँ पढ़े जाने के लिए प्रेरित करती है। परंपराओं के घोर अंधियारे में मुक्ति के उजास के लिए, कसमसाते इन कहानियों के पात्र समाज को उद्वेलित करते हैं। कार्यक्रम में सभी श्रोताओं को स्मृति चिह्न और पुस्तक की प्रति भेंट की गई। कार्यक्रम संयोजक और बोधि प्रकाशन के निदेशक माया मृग ने कहा कि पुस्तकों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए संस्थान इस तरह के कार्यक्रम आयोजित कर साहित्य प्रेमियों को अच्छे साहित्य से रूबरू कराता रहेगा। कार्यक्रम का संचालन सालेहा गाजी ने किया।

***

डॉ.गोपाल राजगोपाल की ''छोटे बच्चे गोल-मटोल'' का लोकार्पण

डॉ.गोपाल राजगोपाल की बाल-कविताओं की कृति ''छोटे बच्चे गोल-मटोल'' का लोकार्पण राजस्थान प्रदेश के गृहमंत्री श्री गुलाब चन्द कटारिया के मुख्य आतिथ्य में नगर निगम सभागार उदयपुर में संपन्न हुआ। इस अवसर पर आर.एन.टी.मेडिकल कॉलेज उदयपुर के प्राचार्य एवं नियंत्रक डॉ.डी.पी.सिंह, महाराणा भूपाल चिकित्सालय के अधीक्षक डॉ.विनय जोशी, आई.एम.ए. के डॉ.सुनील चुघ एवं डॉ.आनंद गुप्ता सहित कई गणमान्य अतिथि एवं महाविद्यालय के छात्र उपस्थित थे।मुख्य अतिथि श्री कटारिया ने कहा कि बच्चों को संस्कारित करना तथा संस्कारित बनाए रखना आज के समय की महती आवश्यकता है जिसकी पूर्ति यह पुस्तक भली-भाँति करती है। गौर तलब है कि पुस्तक को राजस्थान साहित्य अकादमी से प्रकाशन सहयोग किया गया है।

***

अरुण अर्णव खरे के कहानी एवं व्यंग्य संग्रह का लोकार्पण

भोपाल: माध्यमिक साहित्यिक संस्थान एवं गया प्रसाद खरे स्मृति साहित्य, कला एवं खेल संवर्द्धन मंच, भोपाल के संयुक्त तत्वावधान में दो जून को भोपाल स्थित शहीद भवन सभागार में भोपाल के वरिष्ठ रचनाकार श्री अरुण अर्णव खरे की व्यंग्य कृति ''हैश, टैग और मैं'' तथा कहानी सँग्रह 'भास्कर राव इंजीनियर'' का लोकार्पण किया गया। इस गरिमामय समारोह की अध्यक्षता पद्म श्री डॉ. नरेंद्र कोहली ने की जबकि मुख्य अतिथि के रूप में पद्म श्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी उपस्थित थे। व्यंग्य श्री से सम्मानित गिरीश पंकज, अट्टहास शिखर सम्मान से सम्मानित वरिष्ठ व्यंग्यकार हरि जोशी, जनसंदेश टाइम्स के सम्पादक सुभाष राय, अट्टहास के सम्पादक अनूप श्रीवास्तव, वरिष्ठ रचनाकार राकेश पालीवाल समारोह में विशिष्ठ अतिथि के रूप में उपस्थित थे। इस अवसर पर सुपरिचित व्यंग्यकार श्री श्रवण कुमार उर्मलिया को शांति-गया स्मृति शिखर सम्मान से मंचस्थ अतिथियों पद्मश्री डॉ. नरेंद्र कोहली, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, श्री हरि जोशी, श्री अनूप श्रीवास्तव, श्री राकेश पालीवाल, श्री गिरीश पंकज, श्री सुभाष राय, श्री अरुण अर्णव खरे द्वारा सम्मान निधि, शॉल, श्रीफल एवं अभिनन्दन पत्र भेंट कर सम्मानित किया गया। उनके अतिरिक्त साहित्य, खेल और कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाओं के लिए 22 अन्य हस्तियों को सम्मानित किया गया, जिनमें 18 साहित्यकार, दो चित्रकार, एक खिलाड़ी और एक खेल लेखक सम्मिलित थे। इस अवसर पर ''शांति-गया स्मृति सम्मान'' से सर्व श्री सुलभ अग्निहोत्री (कन्नौज, उपन्यास), डॉ. गोपाल नारायण आवटे (सोहागपुर, कहानी), डॉ. स्नेहलता पाठक (रायपुर, व्यंग्य) एवं श्रीमती गीता कैथल (लखनऊ, कविता) को सम्मान-निधि, शाल, श्रीफल एवं सम्मान-पत्र देकर सम्मानित किया गया। ओलिम्पिक हाकी खिलाड़ी सैयद जलालुद्दीन रिज़वी एवं खेल लेखक बीजी जोशी तथा चित्रकार रेखा भटनागर (भोपाल) एवं परमात्मा प्रसाद श्रीवास्तव (लखनऊ) को सम्मान प्रदान किए गए। इंदौर के अनिल वर्मा को क्रांतिकारी बटुकेश्वर दत्त की जीवनी पर विशेष सम्मान दिया गया। इनके अतिरिक्त श्री सुरेंद्र नायक, श्री किशोर श्रीवास्तव, श्री सुरेश तन्मय, श्री रामकिशोर उपाध्याय, प्रीति अज्ञात, श्री विजय राठौर, श्री गोकुल सोनी तथा विनीता राहूरीकर को भी उनकी कृतियों के लिए सम्मानित किया गया। श्री देवी सहाय पाण्डे, संजीव वर्मा सलिल, सुरेश पाल वर्मा जसाला, कपिल शास्त्री तथा बबीता चौबे समारोह में उपस्थित नहीं हो सके।

* * *

हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा रामदरश मिश्र का सम्मान

20 मई, 2018। हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री विभूति मिश्र प्रभात शास्त्री सम्मान से वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र को सम्मानित करने के लिए मिश्रजी के आवास पर कई लोगों के साथ उपस्थित हुए। इस सम्मान के तहत उनको शाल, नारियल और प्रशस्तिपत्र के साथ 51000/- की राशि प्रदान की गई। इस अवसर पर बड़ा ही प्रिय साहित्यिक माहौल निर्मित हुआ। बड़े सहज भाव से इस अवसर ने कविता गोष्ठी का रूप ले लिया। मिश्र जी के साथ डॉ जसवीर त्यागी, डॉ ओम निश्चल, डॉ वेद मित्र शुक्ल, और श्रीमती प्रभा शर्मा भार्गव ने कविता पाठ किया।

* * *

डॉ. कमलकिशोर गोयनका प्रज्ञा सम्मान से समादृत

कोलकाता, 15 अप्रैल। 'साहित्य का स्वरूप सकारात्मक होना चाहिए। वादों में बंटा हुआ साहित्य राष्ट्रीय एकता का संदेश नहीं दे सकता।' ये उद्गार हैं पश्चिम बंगाल के महामहिम राज्यपाल श्री केशरीनाथ जी त्रिपाठी के, जो श्री बड़ाबाज़ार कुमारसभा पुस्तकालय के तत्त्वावधान में आयोजित 29 वें प्रज्ञा सम्मान में स्थानीय ओसवाल भवन सभागार में बतौर अध्यक्ष के बोल रहे थे। पुस्तकालय की ओर से डॉ. कमलकिशोर गोयनका, नई दिल्ली को सम्मान स्वरूप श्रीफल, शॉल तथा एक लाख रुपये की राशि एवं मानपत्र प्रदान किया गया।

राज्यपाल त्रिपाठी ने इस बात पर दु:ख व्यक्त किया कि साहित्य को जाति और वर्गों में बाँटा जा रहा है। उसे वादों के घेरे में सीमित किया जा रहा है। आलोचनात्मक विवेचना स्वागत योग्य है लेकिन विभाजित साहित्य घातक है।

प्रेमचंद विशेषज्ञ डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रज्ञा सम्मान ग्रहण करते हुए कुमारसभा पुस्तकालय का आभार व्यक्त किया एवं कोलकाता के साहित्यप्रेमी एवं साहित्यकारों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि स्वराज की प्राप्ति और भारत की आत्मा की रक्षा करना ही प्रेमचंद के साहित्य का उद्देश्य था। डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद को भारतीय विवेक, राष्ट्रीय अस्मिता के रक्षक, मानवीयता के संस्थापक, लोकमंगल के गायक भारतीय साहित्यकार के रूप में स्मरण किया तथा प्रेमचंद की कहानियों एवं रचनाओं द्वारा सप्रमाण विवेचन किया। उन्होंने वामपंथियों द्वारा प्रेमचंद की भ्रामक मूर्ति के प्रस्तुतिकरण को एकांगी बताते हुए उनके समग्र एवं वास्तविक स्वरूप के अध्ययन पर बल दिया। डॉ. गोयनका ने दृढ़ता के साथ कहा कि प्रेमचंद सही अर्थों में

भारतीय परम्परा के वाहक साहित्यकार थे।

अन्य वक्ता गण डॉ. अवनिजेश अवस्थी, डॉ. जिष्णु बसु, प्रो. ब्राजकिशोर शर्मा एवं श्री सज्जन कुमार तुल्स्यान ने भी डॉ. हेडगेवार के उदात्त जीवन के बारे में प्रकाश डाला। कार्यक्रम का कुशल संचालन किया कुमारसभा के अध्यक्ष डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन किया चयनसमिति के वरिष्ठ सदस्य श्री विमल लाठ ने।

***

अभी तुम इश्क़ में हो का लोकार्पण

ललित कलाओं के प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं शोध की अग्रणी संस्था स्पंदन द्वारा सुपरिचित कथाकार, उपन्यासकार, कवि पंकज सुबीर के बहुचर्चित ग़ज़ल संग्रह ''अभी तुम इश्क़ में हो'' पर विचार संगोष्ठी का आयोजन इकबाल लायब्रेरी सभागार में किया गया।

स्पंदन की संयोजक वरिष्ठ कथाकार डॉ. उर्मिला शिरीष ने बताया कि संगोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. अंजनी कौल ने की जबकि मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. बिलकीस जहाँ उपस्थित थीं। पुस्तक पर अतिथि वक्ता के रूप में एन. सी. ई. आर. टी. के पूर्व प्रोफ़ेसर प्रो. डॉ. मो. नोमान ख़ान तथा म.प्र. उर्दू अकादमी के पूर्व उप सचिव श्री इक़बाल मसूद ने अपना वक्तव्य प्रदान किया। इस अवसर पर ''अभी तुम इश्क़ में हो'' के पेपरबैक संस्करण का लोकार्पण भी किया गया।

इस अवसर पर बोलते हुए पंकज सुबीर ने कहा कि भाषाओं के माध्यम से आपसी सौहार्द और परस्पर विश्वास को फिर से जीवित किए जाने कि आज के समय में सबसे बड़ी आवश्यकता है और इसके लिए काम किया जाना चाहिए। डॉक्टर अख्तर नोमान ने पुस्तक पर टिप्पणी करते हुए कहा कि यह ग़ज़लें उर्दू की रवायती शायरी और पारंपरिक ग़ज़लों की परंपरा को निभाती हुई ग़ज़लें हैं इनकी भाषा बहुत नाजुक और दिल को छूने वाली है। इक़बाल मसूद ने कहा कि पंकज सुबीर मूलत: कहानीकार हैं लेकिन उनकी ग़ज़लों में भी वही भाव प्रवणता दिखाई देती देती है जो उनकी कहानियों में होती हैं उनकी ग़ज़लें उर्दू के छंद शास्त्र की रवायतों का पूरा पालन करती हैं। यह ग़ज़लें उर्दू तथा हिंदी दोनों भाषाओं के बीच पुल का काम करती हैं।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में एक मुशायरे का भी आयोजन किया गया जिसमें सैफ़ी सिरोंजी,हसीब सोज़, इक़बाल मसूद, अख़्तर वामिक़, ज़फ़र सहवाई, फ़ारूक़ अंजुम, परवीन कैफ़, पंकज सुबीर, दर्द सिरोंजी एवं कार्यक्रम सूत्रधार बद्र वास्ती ने अपनी ग़ज़लों का पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन वरिष्ठ शायर एवं सुप्रसिद्ध रंगकर्मी श्री बद्र वास्ती ने किया। अंत में आभार स्पंदन की संयोजक डॉ. उर्मिला ने किया उन्होंने कहा ने कहा कि यह दोनों भाषाओं के बीच एक सेतु बनाने का प्रयास है तथा इस सिलसिले को आगे भी जारी रखा जाएगा। उन्होंने प्रेमचंद जयंती का कार्यक्रम इकबाल लाइब्रेरी में ही किए जाने की घोषणा भी की तथा सभी अतिथियों का आभार व्यक्त किया। इससे पूर्व सभी अतिथियों का स्वागत स्पंदन की ओर से डॉक्टर शिरीष शर्मा ने किया तथा उन्होंने सभी अतिथियों को एवं आमंत्रित शायरों को स्मृति चिह्न प्रदान किए। इस अवसर पर बड़ी संख्या में प्रबुद्ध साहित्यकार सभागार में उपस्थित थे।

***

गोपालदास नीरज सम्मानित

पद्मश्री एवं पद्म भूषण से सम्मानित श्री गोपाल दास नीरज को मीडिया गौरव सम्मान-2018 से अलंकृत किया। श्री गोपाल दास नीरज हिन्दी साहित्यकार, शिक्षक एवं कवि सम्मेलनों के मंचों पर काव्य वाचक एवं फ़िल्मों के गीत लेखक हैं। वे पहले व्यक्ति हैं जिन्हें शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भारत सरकार ने दो-दो बार सम्मानित किया, पहले पद्मश्री से, उसके बाद पद्म भूषण से। यही नहीं, फ़िल्मों में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए उन्हें लगातार तीन बार फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिला।

***

अभिमन्यु अनत को श्रद्धांजलि

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था, बहराइच (उ.प्र.) के तत्वाधान में सम्पन्न मासिक-संगोष्ठी के प्रथम सत्र में 'मारीशस का प्रेमचंद' के रूप में सुविख्यात बहुसर्जक हिंदी विद्वान व कथाकार अभिमन्यु अनत की दिवंगत आत्मा की शांति की कामना करते हुए श्रद्धांजलि दी गई। इस अवसर पर उपस्थित दिल्ली विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग से जुड़े डॉ. वेद मित्र शुक्ल ने उन्हें हिंदी साहित्य में प्रवासी साहित्य को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने वाला एक शीर्षस्थ साहित्यकार बताते हुए कहा कि 1937 में मारीशस में जन्म लेकर तीस उपन्यासों सहित अनेक कहानी-संग्रह, नाटक, कविता-संग्रह, आत्मकथा आदि के इस रचनाकार ने पूरे विश्व में हिंदी की पताका को फहराया था। उन्होंने आगे कहा कि प्रवासी श्रमिकों के दर्द से अत्यंत सहजता के साथ हिंदी जगत् को परिचित कराने वाले अभिमन्यु अनत को भुलाया नहीं जा सकता। डॉ. राधेश्याम पाण्डेय ने मानवता के उत्थान के लिए ज्ञान-विज्ञान को विभेदक शक्तियों से ऊपर उठकर आदर और सम्मान देने की बात कही। संगोष्ठी में अभिमन्यु अनत के प्रसिद्ध उपन्यास 'लाल पसीना' के प्रमुख अंशों का वाचन करने के पश्चात उन पर चर्चा-परिचर्चा भी की गई।

***

शैलेंद्र शरण के कविता संग्रह ''सच, समय और साक्ष्य'' तथा ग़ज़ल संग्रह ''थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ो डर'' का लोकार्पण

साहित्यकार शैलेंद्र शरण की रचनाएँ सामयिक तपन के गर्भ से उत्पन्न हैं। वे अपनी भावनाओं को सीधे साधे ढंग से व्यक्त करते हैं उनकी कविताएँ प्रेम को अभिव्यक्ति करती हैं। प्रेम की अभिव्यक्ति के नए नवेले तरीके उनकी रचनाओं का एक अतिविशिष्ठ लक्षण है। प्रत्येक कविता के अंत में वे कुछ ऐसा कह जाते हैं जिसके बारे में आप सोच ही नहीं पाते और यहीं पर शरण के भीतर का कवि अतिविशिष्ठ हो जाता है। उनकी कविताओं का अप्रत्याशित अंत चौंकाता है, और पाठक को गंभीर चिंतन का विषय दे जाता है। उनका ग़ज़ल संग्रह भी विषय वस्तु के मार्फत ध्यान आकर्षित करता है। उनकी अधिकांश ग़ज़लें छोटी बहर की हैं जो ग़ज़ल विधा में बेहद कष्ट प्रद होता है। छोटी बहर में ग़ज़ल लिखने का खतरा बहुत कम शायर मोल लेते हैं किन्तु शैलेंद्र शरण ने इसे बखूबी निभाया है। यह बातें गौरी कुंज सभागृह में साहित्यकार शैलेंद्र शरण की कविता पुस्तक ''सच, समय और साक्ष्य'' तथा ग़ज़ल संग्रह ''थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा दर'' के लोकापर्ण के अवसर पर विशेष अतिथि व साहित्यकार डॉक्टर राम प्रकाश ने अपने वक्तव्य में कहीं।

सुबह सवेरे के वरिष्ठ संपादक श्री अजय बोकिल ने इस अवसर पर कहा कि शैलेंद्र शरण कि कविता इस लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण है कि वे नए ढंग से अपनी बात कहती हैं उनकी कविताओं के विषय अनुभवजन्य सत्य हैं। संग्रह की प्रतिनिधि कविता ''सच, समय और साक्ष्य'' इस बात की पुष्टि करती है। ग़ज़ल संग्रह भी विषय वस्तु के मार्फत ध्यान आकर्षित करता है। शैलेंद्र शरण की ग़ज़लों में एक बेहतर इंसान बनने के तड़प है। वे आदमी की सहजता में भरोसा करते है तथा ईमानदार और निश्छलता के आग्रही हैं। इंसानियत को ज़िंदा रखने की उम्मीद ही शैलेंद्र शरण की ग़ज़लों की ताक़त है।

लोकार्पण के इस अवसर पर डॉक्टर प्रताप राव कदम ने कहा के शैलेंद्र शरण संयत ढंग से अपनी बात कहते हैं। उनके पास हर एक के लिए स्पेस होता है। पिता पर कई कविताएँ लिखी गईं किन्तु शैलेंद्र शरण कि कविता ''परछाई'' अलग से रेखांकित की जा सकती हैं। इनकी ग़ज़लें इस मायने में उल्लेखनीय हैं कि उनमें संप्रेषणीयता है। परंपरागत विषयों से हटकर शैलेंद्र की ग़ज़लें समसामयिक विषयों को उठातीं हैं।

श्री राजेंद्र शर्मा ने बताया कि शैलेंद्र शरण का यह कविता संग्रह दूसरा है तथा ग़ज़ल संग्रह पहला। उनका यह कविता संग्रह उनकी विकास यात्रा दर्शाता है जो पहले से ज़्यादा परिपक्व है और उनकी बात कहने का तरीका पुरअसर है।

कार्यकम के मुख्य अतिथि श्री विजय वाते ने कहा कि मैं शैलेंद्र शरण की कविताएँ पढ़कर अभिभूत हो गया। मैं निर्णय नहीं कर पाया कि किस कविता को सबसे अच्छा कहूँ क्योंकि उनकी सारी कविताएँ ही अच्छी हैं। शैलेंद्र शरण कि ''चालाकी'' शीर्षक कविता जैसे हम सबको रंगे हाथों पकड़ती है। हमारे भीतर एक चालाक शख्स बैठा है जो गाहे-बगाहे अपनी कारस्तानी बताता है उसे पकड़कर कविता के मार्फत सामने लाना एक समर्थ कवि के बूते की बात है और यह काम शैलेंद्र अपनी कविता के माध्यम से करते हैं। कविता संग्रह में अनेक उल्लेखनीय कविताएँ हैं। ग़ज़ल संग्रह भी विशिष्ट स्थान रखता है। उनकी ग़ज़ल के शेर देर तक दिमाग में बने रहते हैं।

कविता संग्रह और ग़ज़ल संग्रह के लोकार्पण के पश्चात शैलेंद्र शरण ने अपनी कुछ कविताओं और ग़ज़लों का वाचन किया। जिनका करतल ध्वनि से स्वागत किया गया। आपने बताया कि दोनों ही पुस्तकों में प्रेम और सामाजिक विषय शामिल है। विदित हो कि शैलेंद्र शरण की एक कविता पुस्तक पूर्व में प्रकाशित हो चुकी है। शिवना प्रकाशन, सीहोर से आईं ये लोकार्पित पुस्तकें ऑनलाइन वेब साइट्स पर उपलब्ध हैं।

लोकार्पण समारोह का आकर्षण विशेष साज सज्जा और नवाचार से पुस्तकों का विमोचन रहा जिसे खूब सराहा गया। इस नवाचार का भार श्री संतोष शर्मा ने उठाया। गौरी कुंज सभाग्रह में आयोजित पुस्तक लोकार्पण समारोह के दौरान चित्रकार बैजनाथ सराफ़ द्वारा कविता आधारित रेखांकन प्रदर्शित किए गए। साहित्य और कला के इस अनूठे संगम को उपस्थितजनों के काफी सराहा। गोविंद शर्मा ने इस कार्यक्रम का संचालन कर इसे गरिमा प्रदान की। डॉक्टर नीरज दीक्षित ने अंत में आभार प्रदर्शन किया। साहित्य के इस इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में श्रोता उपस्थित रहे। इस अवसर पर विशेष तरह के स्मृति चिह्न अतिथियों को शैलेंद्र शरण द्वारा भेंट किए गए। खंडवा में इसे एक सफलतम साहित्यिक कार्यक्रम माना जा रहा है।

***

डॉ. लालित्य ललित को रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान

दिल्ली के हिंदी भवन में डॉ. लालित्य ललित को रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान से सम्मानित किया गया। यह सम्मान डॉ. कमल किशोर गोयनका, श्रीमती चित्रा मुदगल, प्रताप सहगल, प्रेम जनमेजय के हाथों प्रदान किया गया। इस सम्मान में नगद इक्यावन सौ रुपये की राशि व सात हज़ार मूल्य की रवींद्रनाथ त्यागी रचनावली शामिल थीं।

दिल्ली के इस आयोजन में कथाकार महेश दर्पण, बलराम, सुरेश उनियाल, अमरेंद्र मिश्र, प्रदीप पंत, अरविंद तिवारी, बलदेव त्रिपाठी, फारुख आफरीदी, राजकुमार गौतम, संजीव कुमार, देवेंद्र

मेवाड़ी, राजेन्द्र सहगल राकेश कुमार, सुनील जैन राही सहित दिल्ली के अनेक गण्यमान्य लेखक, बुद्धिजीवी मौजूद थे।

चित्रा मुदगल ने कहा–लालित्य ललित के पास विशिष्ठ शैली है जिसके पास व्यंग्य की एक तीखी भाषा है,हमें उम्मीद है कि इनका तेवर एक व्यंग्य उपन्यास को जन्म देगा।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने कहा–लालित्य ललित मेरा विद्यार्थी है,आज वह बहुत आगे निकल गए है,एक अध्यापक के लिए यह एक बड़ी खुशी का दिन है।

ललित को और ज़िम्मेदारी से लिखना होगा। इस समारोह में श्रीमती शारदा त्यागी भी अपने परिजनों के साथ मौजूद रहीं।

समारोह का संचालन डॉ. रणविजय राव ने किया।

***

डॉ. कर्नावट द्वारा रचित पुस्तक को राष्ट्रीय पुरस्कार

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्यरत संस्था अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) प्रतिवर्ष तकनीकी पाठ्य पुस्तकों के लेखकों को पुरस्कृत करती है। इस योजना के अंतर्गत डॉ. जवाहर कर्नावट एवं श्री देवेन्द्र खरे द्वारा लिखी गई पुस्तक 'आधुनिक भारतीय बैंकिंग : सिद्धांत एवं व्यवहार' को दिल्ली में परिषद के सभागार में आयोजित समारोह में मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री डॉ. सत्यपाल सिंह ने पुरस्कृत किया। इस पुरस्कार के अंतर्गत डॉ. कर्नावट एवं श्री खरे को सम्मान पत्र, रुपये 31,000 की राशि, अंगवस्त्र एवं पुस्तकें प्रदान कर सम्मानित किया गया।

इस अवसर पर परिषद के अध्यक्ष श्री अनिल सहस्त्रबुद्धे एवं देश के गणमान्य नागरिक भी उपस्थित रहे।

***

ध्रुपद कार्यशाला

पिछले दिनों वेलकम पब्लिक स्कूल, बरकत नगर,जयपुर में 20 मई से तीन जून 2018 तक ध्रुपद कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला कलाओं के आन्तरानुशासिक समन्वय पर केन्द्रित थी। स्वर, रंग और शब्द की त्रिवेणी को इसमें शामिल किया गया। कार्यशाला में संगीत और चित्रकला के बीच एक अन्तरानुशासिक समन्वय, इन विधाओं के बीच आपसी रिश्तों की महत्ता और इसमें सृजन के विविध आयामों पर प्रख्यात कलाकारों द्वारा गहरी पड़ताल की गई।

उद्घाटन सत्र में दिनेशचन्द्र गोस्वामी (शास्त्रीय गायन/वाद्यवादन) के साथ ही ध्रुपद घराने की बीसवीं पीढ़ी के प्रतिनिधि तथा पद्मश्री सईदुद्दीन डागर के शिष्य उस्ताद सैयद नफीसुद्दीन डागर और सैयद अनीसुद्दीन डागर, मिनिएचर पेंटिग्स के ख्यातनाम आर्टिस्ट पद्मश्री शाकिर अली, पद्मश्री तिलक गीताई, कला समीक्षक और आर्टिस्ट इक़बाल खान, ध्रुपद साधिका डॉ गायत्री शर्मा ने कलाओं के अंतर्संबंधों पर अपने विचार व्यक्त किए। उस्ताद सईद नफीसुद्दीन डागर और सईद अनीसुद्दीन डागर ने डागर घराने की एक विशेष बंदिश जयति- जयति श्रीगणेश प्रस्तुत करते करने के साथ ही ध्रुपद के विभिन्न पक्षों की नाद के साथ विस्तृत व्याख्या की। प्रारम्भ में कला, साहित्य, संगीत, चित्रकला और फिल्म क्षेत्र के ख्यातनाम विशेषज्ञ और कार्यशाला संयोजक अशोक आत्रेय ने इस आयोजन की रूपरेखा प्रस्तुत की और सुप्रतिष्ठ साहित्यकार एवं कला पारखी हेमन्त शेष ने बीज वक्तव्य दिया।

राजस्थान ललित कला अकादमी के अध्यक्ष अश्विन दलवी ने 'कलाओं में अन्तरानुशासिक सम्बन्ध' की चर्चा करते हुए कहा कि वे वादन की जिस गुरु परंपरा से जुड़े हैं, उसमें हिंदुस्तानी शास्त्रीय शैली ध्रुपद को बड़ा महत्त्व दिया जाता रहा है और उसे शास्त्रीय संगीत की एक आवश्यक बुनियादी विधा का दर्जा भी प्राप्त है।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि उस्ताद सैयद नफीसुद्दीन डागर ने कहा कि जिस तरह से इस कार्यशाला की रूपरेखा बनाई गई उससे कई मौलिक स्थापनाएँ उजागर हुई हैं। डागर अनीसुद्दीन ने कार्यशाला को ना केवल अकादमिक दृष्टि से बल्कि व्यवहारिक दृष्टि से भी नए सृजन की संभावनाओं के परिपरेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण बताया। कार्यशाला प्रभारी डॉ. गायत्री शर्मा ने पिछले दस दिन की कार्यविधि का विस्तार से उल्लेख करते हुए इसे नई संभावनाओं को उजागर करने वाला सार्थक प्रयोग बताया।

मिनिएचर पेंटिंग से जुड़े कलाकार पद्मश्री सैयद शाकिर अली ने अपने व्याख्यान में बताया कि रागमाला की परंपरा बहुत पुरानी और महत्त्वपूर्ण है। वे इस पर लगातार काम भी कर रहे हैं। उनका अनुभव है कि चाहे मुग़ल पेंटिंग हो या यूरोपीय दोनों में समय समय पर बदलाव देखने को मिलते हैं। इसके मौलिक स्वरुप को लेकर गंभीर चुनौती है। बहुत से लोगों ने इसको विकृत भी किया है। ये मानसिकता कदोश भी हो सकता है और नासमझी भी इसका कारण रहा होगा। मिनिएचर पेंटिंग धैर्य की माँग करती है। व्यवसायिकता ने भी इसे क्षति पहुँचाई है।

इसी तरह पद्मश्री तिलक गीतई ने भी अपनी बात रखते हुए बताया कि उन्होंने रागमाला परम्परा को हूबहू चले आ रहे त्रुटिपूर्ण तरीकों से चित्रण नहीं किया बल्कि एक विशुद्ध नई रागमाला का आविष्कारणूर्ण चित्रण किया। उन्होंने अपनी मेरी किताब ''रागमाला दि मिसिंग लिंक'' का हवाला देते हुए बताया कि उसमेंउन सभी कमियों का विवेकपर्ण निवारण कर चित्रण किया गया है। ऐसा पहले नहीं हुआ। उन्होंने अपनीअथक मेहनत और अध्ययन के बाद एक 36 रागरागिनियों का चित्रण भी किया है।

संगीत एवं कला समीक्षक इकबाल खान का कहना था कि डागर परंपरा से जुड़ी यह कार्यशाला भविष्य में आगे आने वाले संगीतकारों और कलाकारों के लिए बहुत

उपयोगी सिद्ध होगी और नई प्रतिभाएँ पुष्पित पल्लवित होंगी। कार्यशाला संयोजक कलाविद अशोक आत्रेय ने कार्यशाला के अनुभवों को साझा करते हुए बताया कि ऐसे आयोजनों का महानगरों से बाहर ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तार करने और लोक-संगीत को इससे जोड़ने की योजना पर विचार किया जा रहा है। कार्यशाला में दस दिनों के प्रशिक्षण के दौरान कलागुरुओं के मार्गदर्शन में नवोदित कलाकारों द्वारा तैयार की गई सभी कलाकृतियों का प्रदर्शन भी किया गया। कार्यशाला में डॉ. गायत्री शर्मा, अशोक आत्रेय, जयशंकर वीरेन बन्नू अमित कल्ला, ताराचंद,प्रसिद्ध रंगकर्मी ईश्वरदत्त माथुर, महेंद्र सिसोदिया, डॉ. अमिता सिह, अविनाश अरविन्द, अमित कल्ला, ताराचंद, मूर्ति शिल्पी हंसराज, पूजा भार्गव, जयशंकर, वेदप्रकाश छाबड़ा, विजय छाबड़ा, वेलकम मॉडल स्कूल और अबेकस टीम और सुदेश सिंघल आदि ने अपनी पूरी सहभागिता निभाई।

चन्दन-माटी उपन्यास का विमोचन

जमशेदपुर शहर की वरिष्ठ लेखिका पद्मा मिश्रा का पहला उपन्यास ''चन्दन-माटी'' का आज आदित्यपुर स्थित आदित्य इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी में विमोचन हुआ। आदित्यपुर साहित्यकार संघ व सहयोग संस्था के संयुक्त तत्वावधान में प्रकाशित इस उपन्यास के विमोचन कार्यक्रम की अध्यक्षता सहयोग संस्था की अध्यक्षा सह अमलतास कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन के प्राचार्या डॉ. जूही समर्पिता ने की। मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार व एबीएम कॉलेज के प्राचार्या डॉ. मुदिता चंद्रा व विशिष्ट अतिथि के रूप में पत्रकार व कवि श्री अखिलेश्वर पाण्डेय उपस्थित थे।

डॉ. जूही समर्पिता ने चन्दन माटी उपन्यास को प्रेमचंद को याद दिलाने वाला उपन्यास बताया। डॉ. मुदिता चंद्रा ने उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पद्मा मिश्रा ने उपन्यास विधा से न्याय किया है। अखिलेश्वर पांडेय ने उपन्यास की बारीकियों पर चर्चा करते हुए कहा कि उपन्यास चंदन-माटी ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखित एक सुंदर दस्तावेज़ है....

***

पटना में सम्पन्न हुआ लघुकथा विमर्श कार्यक्रम

दिनांक 10 जून को बिहार की राजधानी पटना में ''लेख्य-मंजूषा'' संस्था द्वारा 'लघुकथा विमर्श' पर केंद्रित कार्यक्रम का आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम ''दि इन्स्टीच्युशन ऑफ़ इंजिनियर्स (इंडिया)'' पटना के भवन में किया गया।

इस कार्यक्रम का केन्द्र-बिन्दु लघुकथा लेखन पर चर्चा के साथ नवोदित लघुकथाकारों के उत्साहवर्धन हेतु लगभग छत्तीस लघुकथाकारों द्वारा किए गए लघुकथा पाठ पर विस्तारपुर्वक चर्चा करना था। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री महेन्द्र मिश्र (वरिष्ट साहित्यकार, नेपाल) थे। कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण दिल्ली से पधारे वरिष्ठ साहित्यकार संदीप तोमर रहे। उपस्थित अन्य विद्वतजन में डॉ. सतीशराज पुष्करणा (वरिष्ठ लघुकथाकार), श्री भगवती प्रसाद द्विवेद्वी (वरिष्ठ सहित्य-सेवी) थे।

कार्यक्रम सुबह साढ़े आठ बजे शुरू होकर संध्या काल तक चला। कार्यक्रम को मुख्यत: तीन सत्रों में विभाजित किया गया। प्रथम सत्र में अतिथियों का स्वागत तथा वरिष्ठ साहित्यकारों श्री सतीश राज पुष्करणा तथा भगवती प्रसाद द्विवेदी जी ने लघुकथा पर आलेख पढ़ा। द्वितीय सत्र में विभिन्न नवोदित व पहले से लिख रहे लघुकथाकारों द्वारा लघुकथा वाचन किया गया, जिसमें पाँच -पाँच वरिष्ठ लघुकथाकारों/ समीक्षकों/ आलोचकों की टिप्पणियाँ प्रमुख रहीं। तृतीय सत्र पढ़े गए आलेखों पर चर्चा और धन्यवाद ज्ञापन के लिए केन्दित था।

सर्वश्री अवधेश प्रीत (चर्चित कथाकर), डॉ. अनिता राकेश(ख्यतिलब्ध आलोचक), डॉ. ध्रुव कुमार (पत्रकार और शिक्षाविद) की भी कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण उपस्थिति रही।

कार्यक्रम में श्रीमती विभा रानी श्रीवास्तव जी द्वारा सम्पादित तीन पुस्तकों का विमोचन किया गया। जिन पर श्री सतीश राज पुष्करणा जी ने विस्तार से प्रकाश डाला।

कार्यक्रम का संचालन पम्मी सिंह और नंदा पांडेय ने तथा धन्यवाद ज्ञापन अनिता मिश्रा द्वारा किया गया।

***

साहित्य की गंगा बही पश्चिमी दिल्ली में

शिक्षा, साहित्य एवं पारम्परिक भारतीय मूल्यों को समर्पित संस्था 'हिंदी लेखक संघ तथा नवोदित प्रकाशन' के संयुक्त तत्त्वाधान में 'दिल्ली/राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र' के जीवन पार्क उत्तम नगर, नई दिल्ली में दिनांक 30 मई 2018 की शाम साहित्य के नाम समर्पित रही। पटना से उदीयमान ग़ज़लकारा सुश्री ज्योति स्पर्श के दिल्ली आगमन के मौके पर ''काव्य-संध्या'' का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के आयोजक वरिष्ठ साहित्यकार श्री संदीप तोमर तथा परामर्शदाता श्री अनिल शूर आज़ाद थे। ग़ज़लकारा सुश्री ज्योति स्पर्श के सम्मान में बहुविध साहित्यिक हस्ती श्री संदीप तोमर द्वारा पश्चिमी दिल्ली के जीवनपार्क में, शाम पाँच बजे साहित्य-संगोष्ठी रखी गई, जिसमें गीत, ग़ज़ल, कविता, नज्मों का लम्बा दौर चला।कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री अशोक वर्मा जी ने बहुत ही सरल शब्दों में ग़ज़लें सुनाकर काव्य संध्या को मुकाम तक पहुँचाया।

***

मोर्रिस्विल्ल में साहित्यिक गोष्ठी

नौ मई का दिन नॉर्थ कैरोलाइना के साहित्यकारों के लिए बहुत सौभाग्यशाली रहा। इसके शहर मोर्रिस्विल्ल में एक साहित्यिक गोष्ठी हुई और इस गोष्ठी की सूचना दो दिन पहले ही मिली थी। फ़ोन पर सूचना मिली और सूचना सुधा ओम ढींगरा ने दी थी और उन्होंने बताया कि भारत से दो साहित्यकार आए हैं, उनके सम्मान में यह गोष्ठी रखी गई है और साथ ही लंच भी होगा। सुधा जी का बुलावा इसी तरह आता है, और हम सब हिन्दी प्रेमी उनके यहाँ पहुँच जाते हैं। बहुत से लिखने वाले शहर से बाहर थे और फिर सुधा जी 19 मई को बहुत बड़ा कवि सम्मलेन करवा रहीं थीं; जो वे हर वर्ष करवातीं हैं, जिससे हिन्दी शिक्षण के लिए धन इकठ्ठा किया जाता है। उनके निवास की तरफ जाते हुए सोच रही थी, ज़रूर कोई कारण होगा जो उन्होंने कवि सम्मलेन की व्यस्तता के बावजूद और बहुत से साथियों के शहर से बाहर होने पर भी यह गोष्ठी रखी।

जब उनके निवास पर पहुँचे तो पता चला कि 'नया प्रतिमान' पत्रिका के संपादक श्री श्याम किशोर अपनी पत्नी मधु सेठ के साथ भारत से आए हुए थे। वे अपने बेटे की ग्रेजुएशन पर आए थे। उन्होंने जल्दी ही वापिस चले जाना था। उन्हें उनका बेटा और बहू चैपल हिल से सुधा जी के यहाँ लाए थे, जो मोर्रिस्विल्ल के पास का शहर है। यह यूनिवर्सिटी टॉउन है। दूसरी साहित्यकार गुजरात की श्रीमती मंजु महिमा अपने पति श्री सुनील भटनागर के साथ आई हुई थीं। वे कैरी में अपनी बेटी के पास कुछ दिन पहले ही भारत से पहुँची थीं। डॉ. अफ़रोज़ ताज, जॉन काल्डवेल कैरी से, डरहम से उषा देव, मीरा गोयल और उनके पति मदन गोयल, हिन्दी विकास मंडल की अध्यक्षा श्रीमती सरोज शर्मा और मोर्रिस्विल्ल से मैं अदिति मजूमदार सब इकट्ठे हो गए। डरहम और कैरी भी मोर्रिस्विल्ल के साथ के शहर हैं। सुधा जी ने स्वादिष्ट लंच बनाया हुआ था। उसे शुरू करने से पहले सुधा जी ने सबका परिचय करवाया और बस कुछ ही क्षणों में सब घुलमिल गए। लंच करते समय अनौपचारिक बातचीत शुरू हो गई, जिसमें अमेरिका के बारे में फैली ग़लत धारणाएँ, अमेरिका में हिन्दी का काम, नॉर्थ कैरोलाइना की रामलीला और रावण दहन के बारे में, कई विषयों पर लम्बी बात हुई। श्री श्याम किशोर, श्रीमती मधु, श्रीमती मंजु महिमा और उनके पति श्री सुनील भटनागर बहुत चकित हुए जब इन्हें पता चला कि सुधा जी की गेराज में रावण बनाया जाता है और उसे बनाने वाले डॉक्टर, साइन्टिस्ट और इंजीनियर हैं और उन्हीं की गेराज में रामलीला की प्रैक्टिस होती है और डॉ. अफ़रोज़ ताज रावण बनते हैं, जॉन काल्डवेल (अमेरिकन) हनुमान जी बनते हैं।

लंच के बाद शुरू हुआ सुनने सुनाने का दौर। अफ़रोज़ ताज ने दोहे और ग़ज़लें सुनाईं। उषा देव ने हास्य और एक गंम्भीर कविता। मंजु महिमा जी ने 'काव्य व्यंजन' सुनाया, जो हम सबको बड़ा भिन्न लगा।

पूछा एक सखी ने मुझसे
कि कैसे बना लेती हो कविता?
कहा मैंने,
बस चपाती की ही तरह
बनती हूँ कविता
लिख लो तरीका।
विचारों के आटे को,
भावों के जल से
गूँधती हूँ,
डायरी के चकले पर,
विवेक के बेलन से
बेलती हूँ।
ऐसी दो तीन कविताएँ सुनाईं।

श्याम किशोर जी ने कई भाव प्रणव कविताएँ सुनाईं। मधु जी ने बताया कि उन्हें पढ़ने का बहुत शौक है और उनके घर में 3000 के करीब किताबें हैं। बातचीत में पता चला, नया पुराना कोई ऐसा लेखक नहीं जो उन्होंने न पढ़ा हो।

मीरा जी कवयित्री और पेंटर हैं। उन्होंने उस दिन कविताएँ नहीं सुनाईं, उनकी पेंटिग्ज़ देखीं गईं। मैंने दो गीत सुनाए। सुधा जी मेहमान नवाज़ी में लगी रहीं, और उनके पति डॉ. ओम ढींगरा ने मसालेदार चाय बना कर पिलाई। एक अनौपचारिक सुनने-सुनाने की महफ़िल जो दोपहर को शुरू हुई और शाम ढलने तक चलती रही, उसका आनंद मैं अभी लिखते हुए भी ले रही हूँ। सब एक दूसरे से स्नेहपूर्वक फिर से कहीं मिलने का वायदा कर वहाँ से चल दिए।

-अदिति मजूमदार

***

गुफ़्तगू ने अदीबों का किया सम्मान

'गुफ़्तगू' द्वारा इलाहाबाद अदब घर में आयोजित सम्मान समारोह में उत्तर प्रदेश उर्दू एकेडेमी एवार्ड प्राप्त अदीबों असरार गांधी, फ़ाज़िल हाशमी, शाइस्ता फ़ाख़री, ज़फ़रउल्ला अंसारी, नौशाद कामरान, डॉ. ताहिरा परवीन, डॉ. सालेहा सिद्दीक़ी और रूझान पब्लिकेशन का सम्मान किया गया। दूसरे दौर में मुशायरा आयोजित किया गया।

***

हम न पढ़िहें काहू को, हम को पढ़िहें सब कोय

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

यह समय बहुत मज़ेदार है, जिस पीढ़ी ने यह समय देखा है, उसे यह समय जीवन भर याद रहेगा। स्व. राज कपूर की फ़िल्म 'राम तेरी गंगा मैली' में सुरेश वाडकर की आवाज़ में एक गाना था 'मुझको देखोगे जहाँ तक, मुझको पाओगे वहाँ तक, रास्तों से कारवाँ तक, इस ज़मीं से आसमाँ तक, मैं ही मैं हूँ, मैं ही मैं हूँ, दूसरा कोई नहीं....'। गाना आजकल इसलिए याद आ रहा है कि हिन्दी के इस छीजते समय में हिन्दी का हर लेखक बस और बस यह कामना कर रहा है कि पृथ्वी का हर इन्सान पाठक हो जाए, केवल और केवल पाठक, और पृथ्वी पर केवल एक ही लेखक बचे, वह स्वयं। सारी दुनिया बस और बस उसका लिखा हुआ पढ़े, पढ़ती रहे, पढ़ती रहे। लेकिन वह स्वयं किसी को नहीं पढ़ेगा, वह तो स्वयं ही लेखक है, वह क्यों पढ़ेगा। और सबसे मज़े की बात है कि यह कामना उस समय में कर रहा है, जब हिन्दी के पास शुद्ध पाठक जैसा कोई जीव है ही नहीं, जो हैं सब लेखक ही हैं। और उस लेखकीय भीड़ में हर लेखक की यह कामना है, कि वह किसी को नहीं पढ़े, मगर सब उसको ज़रूर पढ़ें। इसीलिए मैंने बुंदेलखंडी गीत भी कोट किया 'हम न पढ़िहें काहू को, हम को पढ़िहें सब कोय'। हालाँकि असल गीत कुछ यूँ है 'हम न बोलें काहू से, हम से न बोले कोय'। यहाँ तक भी बात ठीक है, कि भाई चलो यह तो हर कलाकार की इच्छा होती है कि उसकी कला सबके सामने आए। मगर लेखक की दूसरी कामना यह हो गई है कि पाठक, पाठक होने के साथ-साथ समीक्षक भी हो जाए। उसने पढ़ लिया, तो उससे क्या हुआ, वह बताए भी तो सही कि उसने यह पढ़ लिया है। और बताए सारी दुनिया को लिखकर। लिखे, मगर प्यार से। दुर्भावना से नहीं लिखे। यह जो प्यार और दुर्भावना है यह हम सब समझते हैं। प्यार का अर्थ सकारात्मक और दुर्भावना का अर्थ नकारात्मक। आपने पढ़ लिया तो अब सोशल मीडिया की इत्ती बड़ी दुनिया है, कहीं तो कुछ लिखो आलसीनंदन घासीराम। टिप्पणी, समीक्षा, आलोचना, व्हाट्सअप, फ़ेसबुक, ब्लॉग, कितनी सारी विधाएँ आवाज़ दे-देकर बुला रही हैं, और आप पढ़कर साँप सूँघी अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। लेखक 'अ' जब लेखक 'ब' को अपनी पुस्तक भेजता है पढ़ने हेतु, तो वह यह भूल जाता है कि लेखक 'ब' ने भी उसे अपनी पुस्तक भेजी थी। वह पुस्तक पिछली बरसात में खिड़की की चौखट पर रखी होने के कारण, स्नान करती रही, और शर्म से खिड़की की चौखट की लकड़ी से इस प्रकार चिपक गई थी, कि 'अ' को दीपावली की सफाई के समय चौखट पर फिर से पेंट करवाना पड़ा था। और किताब...? महोदय खिड़की के पेंट और किताब में से किसका अधिक मूल्य है, यह अपनी बुद्धि से सोचिए। असल में हिन्दी का लेखक इन दिनों बहुत डरा हुआ है, उसे लग रहा है कि वह और उसकी रचनाएँ कहीं अपठित न रह जाएँ। इसीलिए वह दिन रात लिख रहा है कि कहीं न कहीं, कोई न कोई, कुछ न कुछ तो पढ़ेगा उसका लिखा हुआ। भले ही पोहे के काग़ज़ पर पोहा खाते-खाते पढ़े, वह भी मंज़ूर है। इस दिन-रात लिखने के चक्कर में लेखक के पास समय ही कहाँ बचता है कि वह दूसरों का लिखा हुआ पढ़े। और यह भी तो है कि दूसरे आख़िर लिख ही क्यों रहे हैं ? वह लिख तो रहा है सबके हिस्से का। अपने से पूर्व के लेखकों और साथ के लेखकों को ही पढ़ने का समय नहीं है, तो अपने से बाद वालों को पढ़ना और उनको हौसला देना, यह तो बहुत मुश्किल है भाई, हम लेखक हैं, हम कोई गायक या डांसर थोड़े ही हैं, जो टीवी शो पर अपने से बाद वाली पीढ़ी को बढ़ावा देते हैं, तैयार करते हैं, हौसला देते हैं, बारीकियाँ समझाते हैं। हिन्दी लेखन में मेण्टोर नहीं होते यहाँ तो मठ होते हैं, और हर मठाधीश चाहता है, कि सारे नए लोग केवल और केवल बस इसी पर बात करें कि उसने क्या लिखा।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

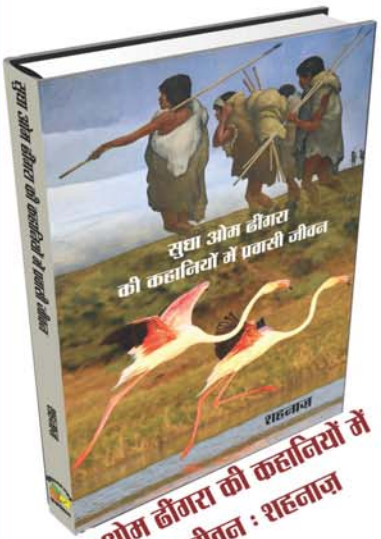

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में
प्रवासी जीवन : शहनाज़

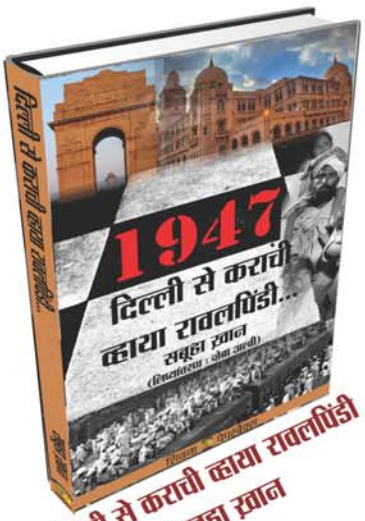

दिल्ली से कराची छाया रावलपिंडी
सबूहा ख़ान

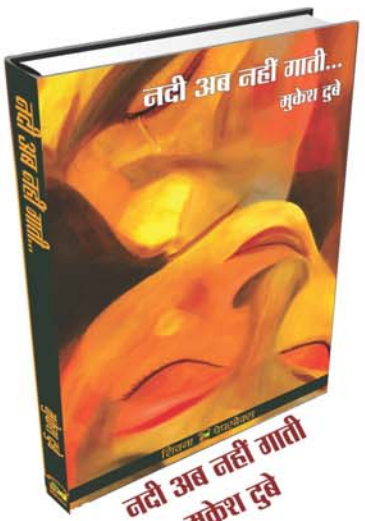

नदी अब नहीं माती
मुकेश दुबे

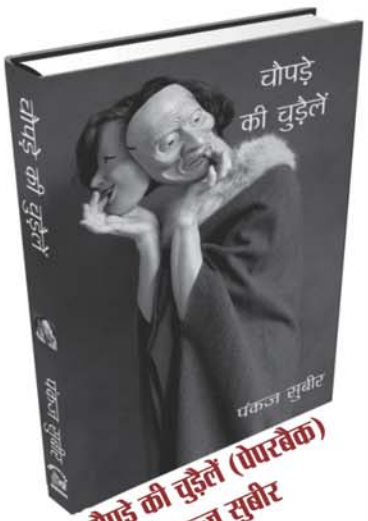

चौपड़े की चुड़ैलें (पेपरबैक)
पंकज सुबीर

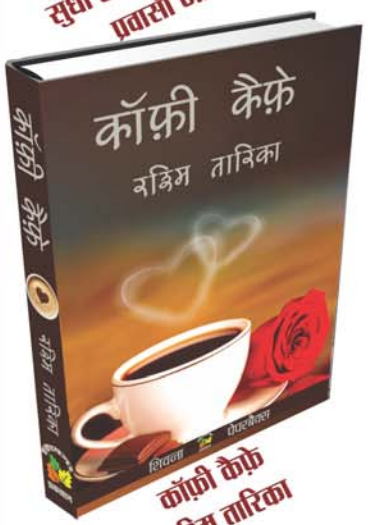

कॉफ़ी कैफ़े
रश्मि तारिका

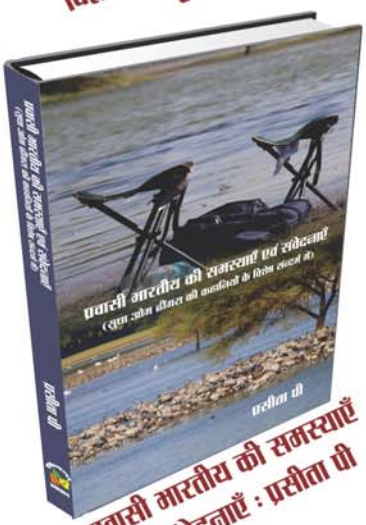

प्रवासी भारतीय की समस्याएँ
एवं संवेदनाएँ : प्रसीता पी

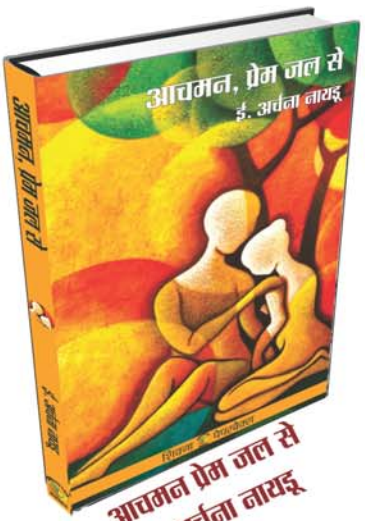

आचमन प्रेम जल से
ई. अर्चना नायडू

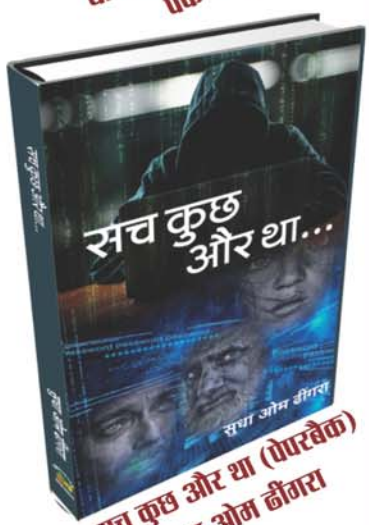

सच कुछ और था (पेपरबैक)
सुधा ओम ढींगरा

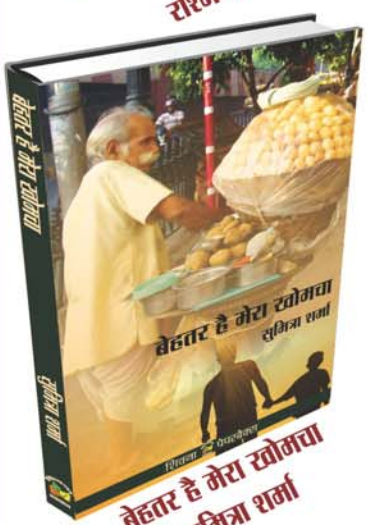

बेहतर है मेरा खोमचा
सुमित्रा शर्मा

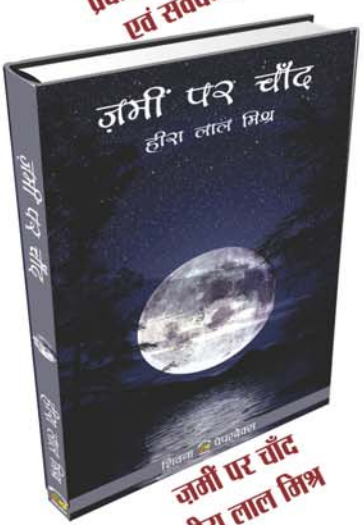

ज़मीं पर चाँद
हीरा लाल मिश्र

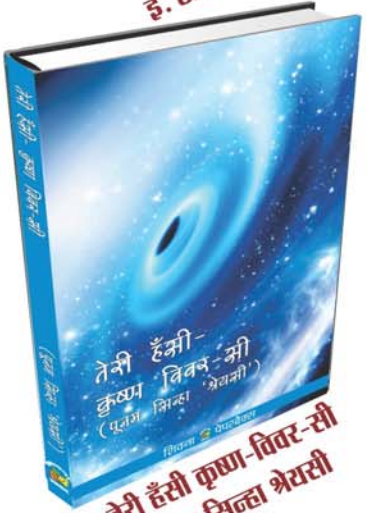

तेरी हँसी कृष्ण-विवर-सी
पूनम सिन्हा श्रेयसी

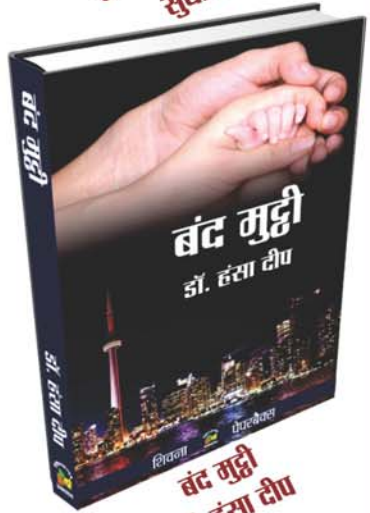

बंद मुट्ठी
डॉ. हंसा दीप

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

शोध दृष्टि - सुधा ओम ढींगरा का साहित्य
(शोध-आलेख संग्रह)
बलबीर सिंह, प्रकाश चंद बैरवा

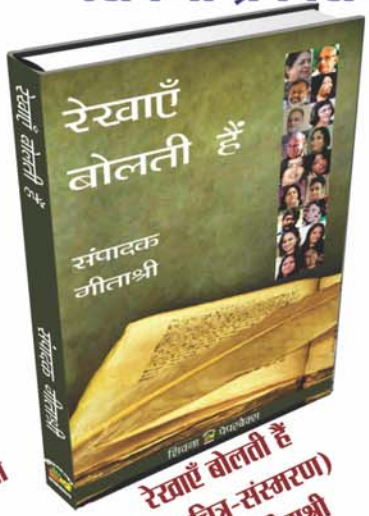

रेखाएँ बोलती हैं
(रेखाचित्र-संस्मरण)
संपादक गीताश्री

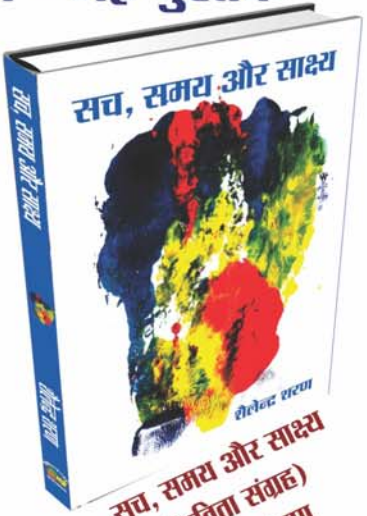

सच, समय और साक्ष्य
(कविता संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

ख़ामोश आवाज़ें
(उर्दू कहानी संग्रह)
सैयद असद मेहदी

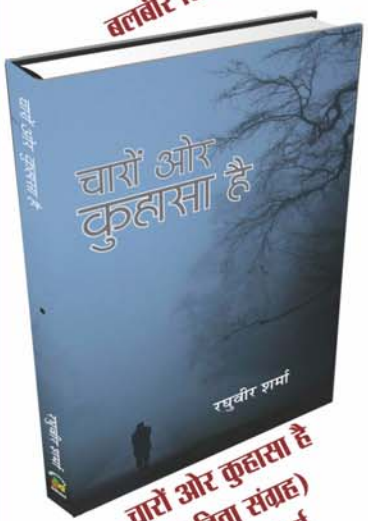

चारों ओर कुहासा है
(कविता संग्रह)
रघुवीर शर्मा

संकल्प और सपने
(लघुकथा संग्रह)
सदाशिव कौतुक

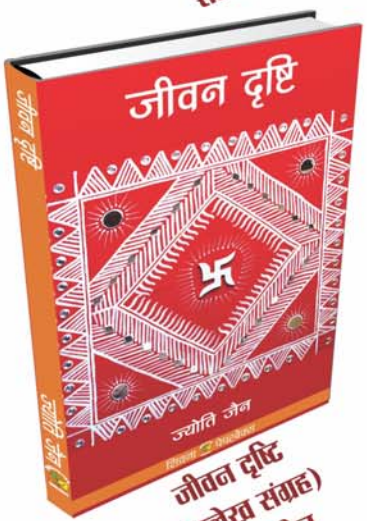

जीवन दृष्टि
(आलेख संग्रह)
ज्योति जैन

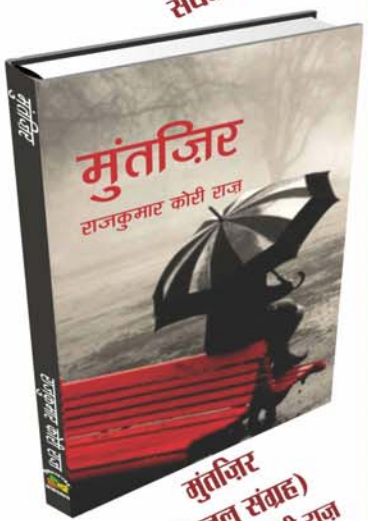

मुंतज़िर
(ग़ज़ल संग्रह)
राजकुमार कोरी राज़

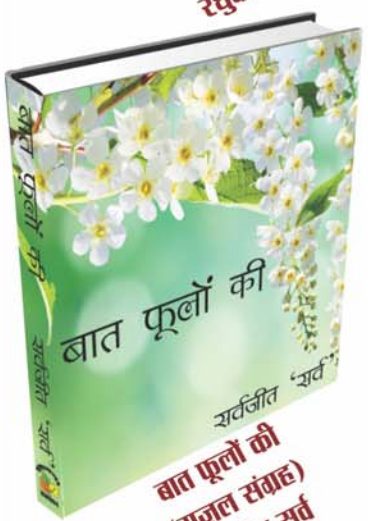

बात फूलों की
(ग़ज़ल संग्रह)
सर्वजीत सर्व

अभी तुम इश्क़ में हो...(पेपरबैक)
(ग़ज़ल संग्रह)
पंकज सुबीर

थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर
(ग़ज़ल संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

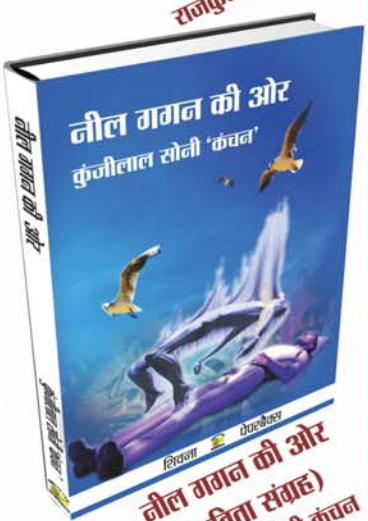

नील गगन की ओर
(कविता संग्रह)
कुंजीलाल सोनी कंचन

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।